वार्षिकांक 12

वर्ष 2019–20

कृषि किरण

भाकृअनुप
ICAR

ISO : 9001-2015

भाकृअनुप–केन्द्रीय मृदा लवणता अनुसंधान संस्थान
करनाल–132 001 (हरियाणा)

कृषि किरण

भाकृअनुप-केन्द्रीय मृदा लवणता अनुसंधान संस्थान
करनाल-132 001 (हरियाणा)

संपादक मंडल

अध्यक्ष

प्रबोध चन्द्र शर्मा (निदेशक)

संपादक

रामेश्वर लाल मीणा (प्रधान वैज्ञानिक)
कैलाश प्रजापत (वैज्ञानिक)

सदस्य

मदन सिंह
सुनील कुमार त्यागी

आवश्यक नोट

इस अंक में प्रकाशित रचनाओं में व्यक्त विचारों/आंकड़ों आदि के लिए लेखक स्वयं उत्तरदायी है।

प्रकाशक

निदेशक, भाकृअनुप–केन्द्रीय मृदा लवणता अनुसंधान संस्थान करनाल–132 001
दूरभाषः 91–1842290501, ई–मेलः director.cssri@icar.gov.in, वेबसाईट : www.cssri.res.in

मुद्रक

एरोन मीडिया
यू.जी. 17, सुपर मॉल, सैक्टर–12, करनाल, हरियाणा, भारत
मो. 0184–4043026, 98964–33225
ईमेल : aaronmedia1@gmail.com

प्राक्कथन

भारत जैव विविधताओं से भरा प्रकृति प्रदत्त संसाधन सम्पन्न देश है। विश्व के अन्य देशों की तुलना में तेजी से बढ़ रही जनसंख्या के लिए खाद्यान्न जुटाना एक चुनौती बन गई है। कृषि से संबंधित प्राकृतिक संसाधनों जैसे भूमि, पानी, जलवायु तथा जैव विविधता आदि की गुणवत्ता में दिनोंदिन गिरावट आती जा रही है। भारत की जनसंख्या 1951 में 36 करोड से बढकर 2019 तक लगभग 3.7 प्रतिशत वृद्धि के साथ 130 करोड से अधिक हो गई है। जबकि खाद्यान्न उत्पादन 1951 में 48 मिलियन टन से कृषि की उन्नत तकनीकों को अपनाने से लगभग 6 प्रतिशत बढकर 2017–18 में 284 मिलियन टन, दूध उत्पादन 17 मिलियन टन से 176 मिलियन टन पहुंच गया है साथ ही खाद्यान्न की आयात 4.8 मिलियन टन से घटकर 2016 तक –2.7 रह गया है। इसलिए हम कह सकते हैं कि उन्नत कृषि तकनीकों के सहारे खाद्यान्नों की पैदावार को बढ़ाने की दिशा में आवश्यक तकनीकों का किसान उपयोग कर रहा है। इसके फलस्वरूप अनाज की उत्पादकता 1990–91 में 1380 किलोग्राम/हैक्टेयर से बढकर 2018–19 में 2292 किलोग्राम/हैक्टेयर हो गई है। कृषि की उचित वैज्ञानिक तकनीकों के इस्तेमाल को बढाने तथा संसाधनों का अत्यधिक दोहन रोकना भी आवश्यक है। देश की बढ़ती जनसंख्या को ध्यान में रखते हुये जरूरी खाद्यान्न एवं पोषण सुरक्षा के लिए कृषि अनुसंधान तथा तकनीकी विकास के हमारे वर्तमान दृष्टिकोण में एक व्यापक बदलाव लाने की जरूरत है। भारतीय कृषि में सिंचित कृषि ने महत्वपूर्ण योगदान दिया है, परन्तु देश के दूसरे क्षेत्रों में पानी की बढ़ती मांग के कारण कृषि के लिए सिंचाई जल की उपलब्धता में निरन्तर कमी होती जा रही है। ऐसे क्षेत्रों में निम्न गुणवत्ता जल को उचित तकनीकी हस्तक्षेप द्वारा सिंचाई हेतु उपयोग में लाकर फसल उत्पादन बढ़ा सकते हैं। जलभराव वाले क्षेत्रों से उचित जलनिकास तकनीक अपनाकर फसलोत्पादन का दायरा बढ़ाना, जलमग्नता तथा लवणता जैसी समस्याओं को नियंत्रित करनें में सार्थक होगा।

जलवायु परिवर्तन के परिणामस्वरूप होने वाले अप्रत्याशित बदलाव से फसलों व सब्जियों को बचाने के लिए उपलब्ध आधुनिक तकनीकों का इस्तेमाल करना होगा। हमें कृषि में ऐसी पर्यावरण संवेदी तकनीकों को अपनाना होगा जिससे मृदा व जल संसाधनों की उत्पादकता को बरकरार रखते हुये किसानों के जीवन स्तर में सुधार कर सकें। विभिन्न राज्यों के विश्वविद्यालयों के साथ मिलकर भाकृअनुप–केन्द्रीय मृदा लवणता अनुसंधान संस्थान करनाल द्वारा प्रभावी सुधार एवं प्रबंधन तकनीकें विकसित की गई हैं। परीक्षणों से ज्ञात होता है कि निम्न गुणवत्ता मृदा व जल संसाधनों का उपयोग कर खाद्यान्न उत्पादन बढ़ाकर देशवासियों की आजीविका सुरक्षा सुनिश्चित करने की अच्छी संभावनाएं हैं।

भाकृअनुप–केन्द्रीय मृदा लवणता अनुसंधान संस्थान, किसानों एवं प्रसार कार्यकर्ताओं के लिए कृषि किरण पत्रिका का वार्षिकांक 12 वर्ष 2019–20 प्रकाशित कर रहा है जिसमें विभिन्न तकनीकी आलेख तथा विषय विशेषज्ञों द्वारा प्रदत्त अन्य किसानोपयोगी जानकारी सम्मिलित की गई है। मैं उन संस्थानों, वैज्ञानिकों एवं विशेषज्ञों का आभारी हूँ जिनके अनुसंधान कार्यों एवं अनुभवों को इस पत्रिका में प्रकाशित किया जा रहा है।

मुझे पूर्ण विश्वास है कि यह पत्रिका सफल कृषि उत्पादन हेतु संबंधित वैज्ञानिकों द्वारा विकसित महत्त्वपूर्ण तकनीकों को हिन्दी माध्यम से कृषि से जुड़े लोगों तक पहुँचा कर देश के खाद्यान्न भण्डार में वृद्धि करने में महत्त्वपूर्ण योगदान करेगी। कृषि किरण के संपादक मण्डल को राष्ट्रभाषा में किये इस प्रकाशन के लिए मैं हार्दिक बधाई देता हूँ और कृषि किरण के अनवरत् 12वें अंक के प्रकाशन की सफलता की कामना करता हूँ।

(प्रबोध चन्द्र शर्मा)

निदेशक

भाकृअनुप–केन्द्रीय मृदा लवणता अनुसंधान संस्थान, करनाल

संपादकीय

भारत एक कृषि प्रधान देश है। हमारे देश की लगभग 70 प्रतिशत जनसंख्या कृषि पर निर्भर है। यद्यपि भारतीय कृषि की पिछले 62 वर्षों की यात्रा के दौरान खाद्यान्नों का उत्पादन लगभग छ गुणा बढ़ा है। देश की बढती आबादी को देखते हुये आधुनिक तकनीकों का इस्तेमाल कर इसे और बढाने की आवश्यकता है। कृषि के लिए मृदा एवं जल आधारभूत संसाधन है। देश की बढ़ती जनसंख्या के लिए खाद्य एवं पोषण सुरक्षा हेतु आवश्यक जरूरतों को पूरा करने लिए निरन्तर सीमित हो रहे कृषि क्षेत्र एवं गुणवत्ता जल की उपलब्धता बडी चुनौतियाँ है। औद्योगिकीकरण एवं शहरीकरण के कारण उपजाऊ भूमि कृषि के लिए कम होती जा रही है साथ ही साथ अच्छे जल की भी कमी होती जा रही है। निरन्तर घटती कृषि भूमि एवं अप्रत्याशित जलवायु परिवर्तन की स्थिति में आधुनिक तकनीकों का उपयोग करते हुये जल की हर बूँद से अधिक जल उत्पादन द्वारा दूसरी हरित क्रान्ति लाने की दिशा में अथक प्रयास की आवश्यकता है।

हमारे देश का खाद्यान्न भण्डार एक सुरक्षित स्तर पर है और हम आत्मनिर्भरता की ओर अग्रसर हैं, परन्तु सीमित संसाधनों को ध्यान में रखते हुये इसमें बढ़ोत्तरी करने की दिशा में किये जा रहे प्रयास उचित तकनीकी व वैज्ञानिक कृषि द्वारा ही संभव है। समाज के समुचित विकास के साथ–साथ सामाजिक विषमता दूर करना भी हम सबका कर्तव्य है, हमें ऐसे समाज की रचना करनी है जो किसी भी प्रकार की विसंगति से परे हो और जहाँ सभी को समृद्धि के समान अवसर प्राप्त हों। किसी भी देश की प्रगति में महत्त्वपूर्ण योगदान उसकी सहज व सरल भाषा में उपलब्ध तकनीकी, व्यवहारिक, सामाजिक ज्ञान है। एक प्रगतिशील समाज के लिए उसकी भाषा में उपलब्ध संदर्भ ही अभिव्यक्ति व ज्ञान ग्रहण करने का सशक्त माध्यम है, जिससे श्रेष्ठ विचारों का आदान–प्रदान होने से व्यक्तिगत विकास के साथ समाज व देश की प्रगति का मार्ग प्रशस्त होता है। अपनी भाषा में प्रकाशित सरल व सहज साहित्य द्वारा नवप्रवर्तक ज्ञान को हम रूचि एवं जागरूकता के साथ सीखने की कोशिश करते हैं।

हम अपने संस्थान की राजभाषा पत्रिका कृषि किरण के माध्यम से इन्हीं दायित्वों को पूरा करने की दिशा में प्रयत्नशील हैं। कृषि किरण का 12वां अंक वर्ष 2019–20 प्रकाशित करते हुये हमें प्रसन्नता हो रही है। इस अंक में वैज्ञानिकों व विषय विशेषज्ञों द्वारा राष्ट्रभाषा में लिखे आलेख सम्मिलित किये गये हैं। इसके अतिरिक्त पत्रिका में संस्थान में आयोजित राजभाषा संबंधी कार्यक्रमों की विस्तृत जानकारी भी प्रस्तुत की गई है।

हम भाकृअनुप–केन्द्रीय मृदा लवणता अनुसंधान संस्थान तथा सभी संस्थाओं के वैज्ञानिकों, विशेषज्ञों और लेखकों के आभारी हैं जिनके सहयोग से वैज्ञानिक एवं तकनीकी लेख और ज्ञानवर्धक साम्रगी इस अंक में प्रकाशित की गई है। हम संस्थान के निदेशक डा॰ प्रबोध चन्द्र शर्मा का सहर्ष आभार प्रकट करते हैं जिनके कुशल मार्गदर्शन में कृषि किरण के 12वें अंक का सफल प्रकाशन संभव हो सका है।

हम आशा करतें हैं कि यह अंक किसानों, प्रसार कार्यकर्ताओं और हिन्दी से लगाव रखने वाले पाठकों के लिए ज्ञान की बढोत्तरी में सहायक सिद्ध होगा।

संपादक

अनुक्रमणिका

क्र. सं.	आलेख	पृष्ठ संख्या
1.	**उपसतही जलनिकास तकनीक द्वारा जलमग्न लवणीय मृदाओं का सुधार एवं प्रबंधन** देवेन्द्र सिंह बुन्देला एवं रामेश्वर लाल मीणा	1
2.	**वर्षा जल पुनर्भरण द्वारा फ्लोराइड प्रभावित भूजल गुणवत्ता का सुधार** छेदी लाल वर्मा, सुनील कुमार झा एवं विनय कुमार मिश्र	07
3.	**रोजगार एवं पोषण हेतु सोया दूध पर आधारित डेयरी खाद्य उत्पादों के लिए उद्यम** ललन के॰ सिन्हा एवं नीरजा ललन	16
4.	**बुन्देलखण्ड के असिंचित कृषि परिस्थितिकी तंत्र में टिकाऊ उत्पादकता हेतु जैविक कृषि प्रणाली** नरेन्द्र सिंह	20
5.	**लवण प्रभावित क्षेत्रों में जौ उत्पादन की वैज्ञानिक तकनीकियाँ** जोगेन्द्र सिंह, राजेन्द्र कुमार, संतोष कुमार बिश्नोई एवं अजित सिंह खरब	24
6.	**धान की सीधी बिजाई तकनीक में खरपतवार नियंत्रण** रणबीर सिंह, राजेन्द्र कुमार यादव, अजय सिंह एवं सोनिया रानी	27
7.	**ग्राम विकास में सब्जी उत्पादन की भूमिका** एल॰एम॰ यादव	31
8.	**मानसून की विभिन्न परिस्थितियों में फसल प्रबंधन की सिफारिशें** पुलकित श्रीवास्तव, यशपाल सिंह एवं रविन्द्र कुमार गुप्ता	36
9.	**बदलते परिवेश में सस्यविज्ञान की नवतकनीकों द्वारा किसानों की आय वृद्धि** रविन्द्र कुमार गुप्ता, यशपाल सिंह एवं पुलकित श्रीवास्तव	39
10.	**लवणग्रस्त भूमि में आलू की खेती की संभावनाएं** सुशील कुमार एवं वी॰के॰ दुआ	41
11.	**ऊसर भूमियों में समन्वित खाद प्रयोग से धान–गेहूँ की उत्पादकता में वृद्धि** यशपाल सिंह, विनय कुमार मिश्र, संजय अरोड़ा एवं पुलकित श्रीवास्तव	48
12.	**बीजीय मसाला फसल मेथी में एकीकृत पोषक तत्व प्रबंधन** कालूराम कुमावत, गजेन्द्र, मधु चौधरी, देवेन्द्र दम्बीवाल एवं कौशल कुमार	51
13.	**भावी पीढियों के लिए प्राकृतिक संसाधनों का संरक्षण व संचालन** मीना लूथरा	54
14.	**सूकर पालन द्वारा न्यूनतम निवेश में अधिकतम लाभ के अवसर** भारती देशमुख एवं नीरज कश्यप	57
15.	**संतति परीक्षण के माध्यम से दुधारू पशुओं का आनुवंशिक सुधार** नीरज कश्यप, भारती देशमुख एवं बी॰के॰ बंसल	61
16.	**जैविक खाद उपयोग द्वारा कृषि में टिकाऊ उत्पादन** प्रदीप कुमार मिश्रा, प्रदीप कुमार, एस॰एन॰ सिंह, मिथलेष कुमार पाण्डेय एवं डी॰पी॰ सिंह	65

अनुक्रमणिका

17. **संकर सब्जी बीज उत्पादन – समस्याएं एवं तकनीकी समाधान** 69
सतीश कुमार सनवाल, अनीता मान, अश्वनी कुमार एवं गुरप्रीत कौर

18. **पौधों में वृद्धि तथा लवण सहनशीलता बढ़ाने के लिए माइकोराइजा की भूमिका** 74
प्रियंका चंद्रा, अवतार सिंह, कैलाश प्रजापत, मधु चौधरी, पूजा वर्मा एवं राजेन्द्र कुमार यादव,

19. **क्षारीय मृदाओं का फसलोत्पादन एवं आय बढ़ाने हेतु उचित प्रबंधन** 77
अरविन्द कुमार राय, पारुल सुन्धा, निर्मलेंदु बसाक, पूजा गुप्ता सोनी एवं सूबेदार पटेल

22. **सोयाबीन की उन्नत खेती** 83
विजयता सिंह, जीतेन्द्र सिंह, जोगेन्द्र सिंह, जसवंत सिंह, धीरज कुमार, सतीश कुमार सनवाल एवं पी॰सी॰ शर्मा

23. **चने की उन्नत खेती** 87
जीतेन्द्र सिंह, विजयता सिंह, जोगेन्द्र सिंह, जसवंत सिंह, धीरज कुमार, सतीश कुमार सनवाल एवं पी॰सी॰ शर्मा

24. **प्रेसमड – क्षारीय भूमि सुधार हेतु वैकल्पिक जैविक स्त्रोत** 93
रमन शर्मा, कैलाश प्रजापत एवं प्रवेन्द्र श्योराण

25. **आधुनिक उपकरणों का मृदा लवणता के शीघ्र सर्वेक्षण में उपयोग** 96
भास्कर नरजरी, राम किशोर फगोडिया, मुरलीधर मीना, गजेन्द्र एवं सत्येन्द्र कुमार

26. **जलवायु परिवर्तन का कृषि पर प्रभाव और अनुकूलन के लिए विभिन्न प्रौद्योगिकियाँ** 99
राम किशोर फगोडिया, कैलाश प्रजापत, भास्कर नरजरी, राज मुखोपाध्याय, डार जाफर युसुफ एवं बाबूलाल मीना

27. **करौंदे के स्वास्थ्य लाभ व प्रसंस्करण** 105
हरसिमरत कौर बोंस एवं गुरप्रीत कौर ढिल्लों

28. **गाय आधारित प्राकृतिक खेती के लाभ एवं महत्त्व** 108
नेहा एवं गजेन्द्र

29. **जैव अभियांत्रिकी द्वारा मिट्टी एवं जल संरक्षण प्रणाली** 113
प्रवीण जाखड़, कर्मबीर, धुर्व चरण साहू, ज्योतिप्रभा दास, अजित कुमार एवं जी॰बी॰ नायक

30. **चारा फसलों में धूरिन एवं नाइट्रेट विषाक्तता प्रतिपोषकों का प्रबंधन** 117
दिनेश कुमार, मगन सिंह, तारामणि यादव एवं सौरभ कुमार

31. **कविताएँ** 121
वतन के शहीदों को नमन – मीना लूथरा 122
छोडों लीक पुरानी – मीना लूथरा 123
मिट्टी ही पहचान – अनिल कुमार सिंह 124

32. **संस्थान के कृषि अनुसंधान एवं क्रियाकलापों में राजभाषा हिन्दी** 126

देवेन्द्र सिंह बुन्देला एवं रामेश्वर लाल मीणा
भाकृअनुप–केन्द्रीय मृदा लवणता अनुसंधान संस्थान, करनाल–132001 (हरियाणा)
E-mail: ds.bundela@icar.gov.in

उपसतही जलनिकास तकनीक द्वारा जलमग्न लवणीय मृदाओं का सुधार एवं प्रबंधन

देश की सिंचित कृषि में जलमग्नता एवं मृदा लवणता मुख्यतयाः जुड़वां समस्याएं हैं। सिंचित कमांड क्षेत्रों में नहरी सिंचाई नेटवर्क से जल रिसाव एवं अनुचित फ़ार्म जल प्रबंधन से भूजल स्तर का बढ़ना जलग्रस्तता (सेम) की समस्या उत्पन्न करते हैं। फसल जड़ क्षेत्र में अधिक जल संचयन होने से सतही वाष्पीकरण द्वारा घुलनशील या विनिमेय लवणों की मात्रा में अप्रत्याशित वृद्धि होती है जिससे पौधों को जलग्रस्तता के साथ ही मृदा लवणता के दबाव का सामना करना पड़ता है। इन दोनों समस्याओं ने शुष्क, अर्द्ध–शुष्क एवं अर्द्ध–आद्र क्षेत्रों के अधिकांश वृहद, मध्यम और लघु सिंचाई परियोजनाओं की उपयोगी सिंचाई क्षमता एवं फसल उत्पादकता पर प्रतिकूल प्रभाव डाला है जिससे प्रमुख फसलों की उत्पादकता में 40–50 प्रतिशत हानि हुई है। देश में लवणीय एवं क्षारीय मृदाएं 15 राज्यों में फैली हुई है जिनका क्षेत्रफल क्रमशः 29.5 व 37.8 लाख हैक्टर है। लवणीय मृदाएं सिंचित कमांड क्षेत्रों में दो प्रकार की पाई जाती है – जलग्रस्त लवणीय मृदा व लवणीय मृदा। लवणीय मृदा मुख्यतयाः लवणीय या लवणीय–क्षारीय भूजल से सिंचाई के कारण विकसित होती है। इन लवणीय मृदाओं को मानसून वर्षा या सिंचाई जल का उपयोग कर लवण निक्षालन (लीचिंग) प्रक्रिया द्वारा सुधारा जाता है जबकि जलग्रस्त लवणीय मृदाओं को सुधारने के लिए लवण निक्षालन के साथ ही उपसतही जल निकासी की आवश्यकता होती है जिसके लिए उपसतही जलनिकास (एसएसडी) तकनीक को विकसित एवं मानकीकृत किया गया जिसके कार्यान्वयन से फसल उत्पादकता को बनाए रखने में सफलता मिली है। इस प्रौद्योगिकी द्वारा जलग्रस्त लवणीय दोमट, काली मृदाओं के क्षेत्रों और तटीय एवं डेल्टा क्षेत्रों की कृषि भूमि को 2–3 साल की अवधि में सुधारने से मृदा लवणता (ईसीई) 10–42 से घटकर 2–5 डेसी./मीटर हो जाती है जिससे फसल उत्पादकता में प्रभावी वृद्धि होती है। अभी तक देश में इस प्रौद्योगिकी द्वारा लगभग 70000 हैक्टर जलग्रस्त लवणीय मृदाओं का सुधार किया जा चुका है जिससे फसल उत्पादकता में 30–120 प्रतिशत वृद्धि व किसानों की आमदनी दोगुनी करने में उल्लेखनीय योगदान मिला है। इस लेख का उद्देश्य जलग्रस्त लवणीय मृदाओं की जानकारी और संबंधित खाद्यान्न एवं आर्थिक नुकसान, उपसतही जलनिकास प्रौद्योगिकी एवं कार्यान्वयन बाधाओं की वर्तमान स्थिति और देश की खाद्य सुरक्षा को स्थायित्व प्रदान करने के लिए इस प्रौद्योगिकी के बड़े पैमाने पर कार्यान्वयन के लिए मौजूदा राष्ट्रीय नीतियां, संस्थान और समयबद्ध वित्तपोषण में कमियां और सुधार को विस्तार से वर्णित करने का प्रयास किया गया है।

लवणीय मृदाएं

देश में लवण प्रभावित मृदाओं का क्षेत्रफल 6.74 मिलियन हैक्टर है जिसमें लवणीय एवं क्षारीय मृदाओं का क्षेत्रफल क्रमशः 2.95 व 3.78 मिलियन हैक्टर है। लवणीय मृदाओं के आंकलन में दोनों जलग्रस्त लवणीय मृदा एवं लवणीय मृदा को जोड़ कर देखा गया है। लवणीय मृदाओं का राज्यवार विस्तार दर्शाता है कि यह देश के 15 राज्यों (पंजाब, हरियाणा, राजस्थान, मध्य प्रदेश, गुजरात, महाराष्ट्र, गोवा, कर्नाटक, तेलंगाना, आंध्र प्रदेश, पश्चिम बंगाल, ओडिशा, तमिलनाडु, केरल एवं अण्डमान व निकोबार) में एक गंभीर समस्या है। गुजरात में लवणीय मृदाओं का सर्वाधिक क्षेत्रफल 16.8 लाख हैक्टर है जो राष्ट्रीय क्षेत्रफल का 56.84 प्रतिशत है। इसके पश्चात् पश्चिम बंगाल (14.92 प्रतिशत), राजस्थान (6.61 प्रतिशत) एवं महाराष्ट्र (6.23 प्रतिशत) का स्थान है।

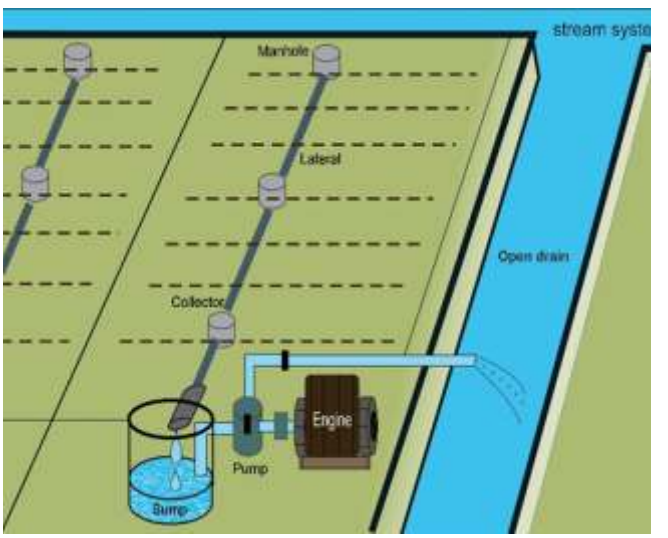

चित्र 1. उपसतही जलनिकास प्रणाली का अभिन्यास

जलमग्न लवणीय मृदाओं में भूजल स्तर भूमि सतह से 2.0 मीटर नीचे या कम पर होता है। इन मृदाओं में संतृप्त घोल की वैद्युत चालकता 25 डिग्री सेल्सियस के तापमान पर 4 डेसीसीमन्स प्रति मीटर से अधिक, पीएच मान 8.2 से कम एवं विनिमयशील सोडियम प्रतिशतता 15 से कम होती है। इस प्रकार की मृदाएं प्रायः शुष्क, अर्द्धशुष्क एवं अर्द्ध–आद्र क्षेत्रों के सिंचित कमांड़ क्षेत्रों में पाई जाती है। जलभराव वाली लवणीय मृदाओं के अतिरिक्त ऐसी भी लवणीय मृदाएं पायी जाती है जिनमें जलग्रस्तता (सेम) की समस्या नहीं होती है। ऐसी लवणीय मृदाओं में भू–जल स्तर प्रायः 3 मीटर से नीचे होता है। इन मृदाओं में सोडियम, कैल्शियम एवं मैग्नीशियम के क्लोराइड एवं सल्फेट लवणों की प्रचुर मात्रा होती है। इन मृदाओं में संरचना गिरावट के लक्षण प्रायः नहीं देखे जाते हैं। यद्यपि इन मृदाओं में जल प्रवेश/प्रवाहकता दर सामान्य मृदाओं के समतुल्य होती है फिर भी परासरणी तनाव के कारण पौधे पर्याप्त जल अवशोषण नहीं कर पाते जिससे सूखे का तनाव उत्पन्न होता है और पादप कार्यिकी पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। अधिक लवण पादप पोषक तत्वों की उपलब्धता घटा देते हैं व कुछ तत्व विषाक्त सांद्रता में भी उपस्थित होते हैं। इन कारणों से सामान्य मृदाओं की तुलना में लवणीय मृदाओं में फसलोत्पादकता में प्रभावी कमी देखी जाती है।

मृदा लवणता से खाद्यान्न एवं आर्थिक नुकसान

भाकृअनुप–केन्द्रीय मृदा लवणता अनुसंधान संस्थान के अनुमान अनुसार वर्ष 2015 में मुख्य फसलों के न्यूनतम समर्थन मूल्य के आधार से राष्ट्रीय स्तर पर लवणता के कारण लगभग 56.6 लाख टन उत्पादन की हानि हुई है जो आर्थिक दृष्टि से रुपये 8000 करोड़ के समतुल्य है। राज्यवार आंकड़ों के अनुसार गुजरात में सर्वाधिक उत्पादन हानि (27.2 लाख टन) हुई जिसके पश्चात् महाराष्ट्र (9.2 लाख टन), पश्चिम बंगाल (8.9 लाख टन) एवं आंध्र प्रदेश (4.0 लाख टन) का स्थान है। तदनुसार, गुजरात में सर्वाधिक रुपये 4,900 करोड की आर्थिक क्षति हुई जिसके बाद पश्चिमी बंगाल में रुपये 1,200 करोड़, महाराष्ट्र रुपये 500 करोड़, आंध्र प्रदेश रुपये 500 करोड, राजस्थान रुपये 400 करोड, ओडिशा रुपये 300 करोड एवं हरियाणा रुपये 100 करोड़ की आर्थिक हानि हुई। दलहनी फसलों में होने वाली उत्पादन हानि गुजरात में सर्वाधिक (0.8 लाख टन) है जिसके पश्चात् राजस्थान (0.6 लाख टन), पश्चिम बंगाल (0.4 लाख टन), महाराष्ट्र (0.3 लाख टन) एवं आंध्र प्रदेश (0.1 लाख टन) का स्थान है। तिलहनी फसलों में भी गुजरात में सर्वाधिक (5.2 लाख टन) उत्पादन क्षति हुई जिसके पश्चात् पश्चिम बंगाल (0.3 लाख टन), राजस्थान, महाराष्ट्र एवं आंध्र प्रदेश (0.1 लाख टन) की हानि हुई।

फसलवार विश्लेषण दर्शाता है कि नकदी एवं अनाज फसलों में लवणता के कारण होने वाली कुल हानि क्रमशः 24.8 लाख एवं 23.5 लाख टन थी जो कि लगभग 85 प्रतिशत है। इसी प्रकार तिलहनी (5.9 लाख टन) एवं दलहनी फसलों (2.4 लाख टन) में कुल उत्पादन की 15 प्रतिशत हानि देखी गई। मुख्य फसलों में गन्ना एवं धान में सर्वाधिक उत्पादन हानि क्रमशः 17,910 एवं 14.1 लाख टन हुई। आर्थिक दृष्टि से अनाज फसलों में सर्वाधिक आर्थिक क्षति (रुपये 3,023 करोड़) हुई जो कुल आर्थिक हानि का 38 प्रतिशत है। अनाज फसलों में धान में सर्वाधिक आर्थिक हानि रुपये 1,700 करोड़ (21 प्रतिशत) हुई। उसके पश्चात् गेहूँ में रुपये 700 करोड़ एवं मक्का में रुपये 100 करोड़ की आर्थिक हानि हुई। कुल आर्थिक नुकसान में तिलहनी फसलों का योगदान रुपये 2,300 करोड़ (29 प्रतिशत) था जिसमें मात्र मूंगफली में ही रुपये 2,000 करोड़ की हानि हुई जिसके पश्चात् राई एवं सरसों का नुकसान रुपये 200 करोड था। कुल आर्थिक हानि में नकदी फसलों का भाग 25 प्रतिशत (रुपये 2,000 करोड) था। नकदी फसलों में कपास में सर्वाधिक क्षति रुपये 1,000 करोड की हुई जो कि नकदी फसलों में होने वाले कुछ नुकसान का 13 प्रतिशत था। इसके पश्चात् गन्ना क्षति में (रुपये 500 करोड़) एवं आलू (रुपये 500 करोड़) का स्थान आता है। कुल आर्थिक नुकसान में दलहनी फसलों का हिस्सा 9 प्रतिशत (रुपये 700 करोड) था जिसमें अन्य दलहनों में रुपये 300 करोड़ (3.66 प्रतिशत) की क्षति हुई जिसके बाद चना (रुपये 186 करोड), मूंग (रुपये 149 करोड़), अरहर (रुपये 31 करोड़) एवं उड़द (रुपये 28 करोड) का स्थान आता है। विभिन्न फसलों में लवणता के कारण सर्वाधिक आर्थिक नुकसान मूँगफली, धान एवं कपास में हुआ। ऐसा अनुमान है कि सम्पूर्ण लवण प्रभावित क्षेत्र के सुधार द्वारा देश में प्रतिवर्ष खाद्यान्न उत्पादन में अतिरिक्त 56.6 लाख टन की वृद्धि की जा सकती है।

उपसतही जलनिकास तकनीक

संस्थान द्वारा 1980 के दशक से नीदरलैंड के सहयोग से देश के 5 कृषि–जलवायु क्षेत्रों, 3 प्रकार की मृदाओं, 7 सिंचाई परियोजनाओं एवं 5 राज्यों में प्रक्षेत्र प्रयोगों और पायलट स्तरीय परियोजनाओं के अध्ययन से जलग्रस्त लवणीय मृदाओं के सुधार के लिए उपसतही जलनिकास तकनीक को विकसित एवं मानकीकृत किया गया। इस प्रणाली में लहरदार छिद्रयुक्त

पीवीसी पाईप का एक नेटवर्क जमीन में बिछाया जाता है। मृदा के महीन कणों को रोकने हेतु इन पाइपों के ऊपर एक कृत्रिम छन्निका (फिल्टर) आवरण लगाया जाता है। तदुपरांत, सेमी–यंत्रीकृत या लेजर नियंत्रित नाली खोदने व पाईप बिछाने वाली ट्रेन्चर मशीन द्वारा भूमि सतह के नीचे वांछित गहराई और पाईप अंतराल पर इन पाईप/नालियों को बिछा देते है (चित्र 1)। इस प्रकार का जलनिकास तंत्र भूजल स्तर को फसल जड़–क्षेत्र के नीचे रखने एवं फसल उत्पादकता की वृद्धि में सहायक सिद्ध होता है और अधिक जल व घुलनशील लवणों को प्रभावित क्षेत्र से गुरूत्वाकर्षण अथवा पम्पिंग द्वारा निकाल दिया जाता है। पम्प निकास की स्थिति में अपवाह लवणीय जल को होदी (कुण्ड) में एकत्रित कर पम्पिंग करने की व्यवस्था करनी होती है। अतः यह स्पष्ट है कि गुरूत्वाकर्षण आधारित प्रणाली स्वतः ही जलनिकास करती है जबकि पम्पिंग निकास स्थिति में अतिरिक्त डीजल या बिजली की लागत आती है। जलनिकास प्रणाली की पाईप गहराई एवं अंतराल का निर्धारण जलनिकास गुणांक के आधार पर किया जाता है। जलनिकास गुणांक का आशय जल की उस गहराई (मिमी) से है जिसका प्रभावित क्षेत्र से प्रतिदिन निक्षालन किया जाना है। जलनिकास गुणांक के निर्धारण में वर्षा, सिंचाई, नहर की समीपता, फसल चक्र, मृदा गठन, भूजल–प्रवाह, मृदा लवणता एवं निकास द्वार की दशाओं जैसे कारकों को ध्यान में रखते हैं। संस्थान के समग्र अनुभवों के आधार पर विभिन्न क्षेत्रों हेतु यंत्रीकृत तरीके से उपसतही जलनिकास के प्रारूप मापदंडों का मानकीकरण किया जा चुका है (चित्र 2, तालिका 1)। इनके अतिरिक्त 80–355 मिमी. व्यास की पार्श्व एवं संग्राहक जलनिकास नालियों के लिए न्यूनतम झुकाव के अनुशंसित मान 0.1 से 0.05 प्रतिशत के मध्य होता है। जलनिकास गुणांक, पाइप गहराई, पाइप अंतराल, निर्गम प्रकार, गुरूत्वाकर्षण, पम्पिंग, मृदा गठन, हल्की, मध्यम, भारी/काली मृदाओं, शुष्क, अर्द्ध–शुष्क, अर्द्ध–आर्द जलवायु, सरकारी योजनाओं के अंतर्गत हरियाणा की दोमट मृदाओं में क्रियान्वित वृहद जलनिकास परियोजनाओं के लिए नाली अंतराल (प्रक्षेत्र सीमा के समानांतर) व औसत पार्श्व गहराई के अनुशंसित मान क्रमशः 60 व 67 मीटर एवं 1.5 मीटर है। जबकि देश की काली मृदाओं/वर्टिसोल के लिए 30 मीटर नाली अंतराल एवं 1.2 मीटर औसत गहराई सामान्य हैं। सामान्यतः संग्राहक जलनिकास नालियों की गहराई 3.0 मीटर तक होती है।

तालिका 1. देश के विभिन्न जलवायु क्षेत्रों हेतु उपसतही जलनिकास के प्रारूप मापदंड

जलवायु	जल निकास गुणांक(मिमी./दिन)		निर्गम द्वार	जल निकास की गहराई (मी.)	मृदा गठन	पाइप अंतराल (मी.)
	सीमा	औसत				
शुष्क	1–2	1	गुरूत्वाकर्षण	0.9–1.2	हल्की	100–150
अर्द्ध–शुष्क	1–3	2	पम्पिंग	1.2–1.8	मध्यम	50–100
अर्द्ध–आर्द्र	2–5	3			भारी(काली)	30–50

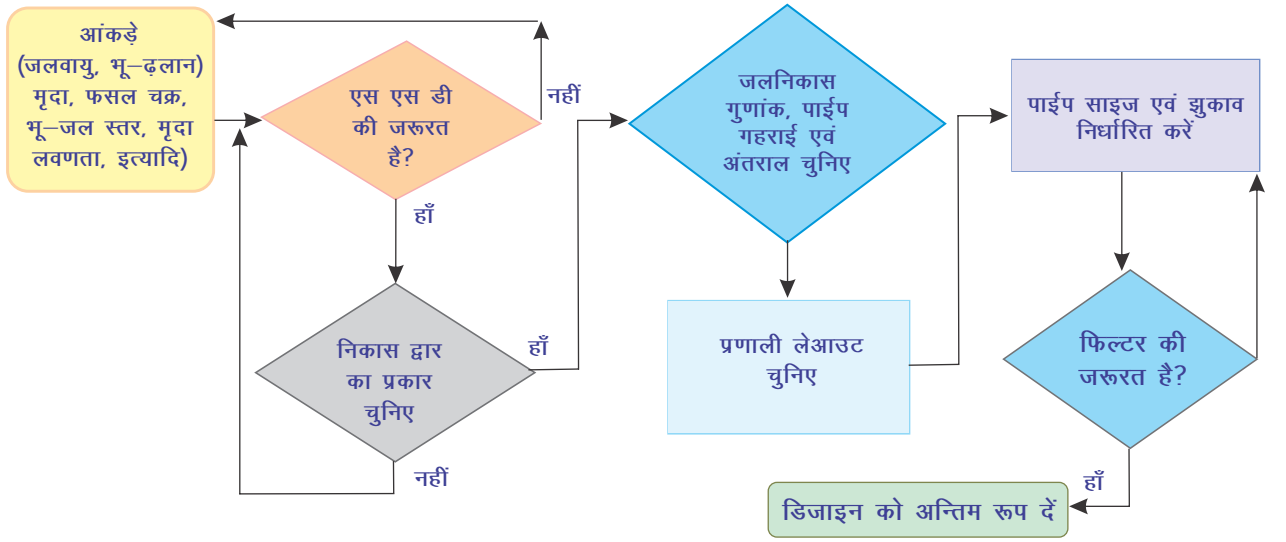

चित्र 2. उपसतही जलनिकास प्रणाली का डिजाइन चार्ट

जलनिकास तकनीक की लागत

जलनिकास प्रणाली की नालियों की गहराई एवं अंतराल संयोजनों के साथ ही मृदा प्रकार एवं निर्गम द्वार दशा भी जलनिकास तकनीक की लागत को प्रभावित करते हैं जो एक राज्य से दूसरे राज्य में अलग–अलग होती है। वर्ष 2016 के मूल्य स्तर पर सरकारी योजनाओं के अंतर्गत हरियाणा, पंजाब एवं राजस्थान की दोमट मृदाओं के लिए पम्पिंग आधारित उपसतही जलनिकास तकनीक की अनुमानित लागत रुपये 72,000–74,000 प्रति हैक्टर है। जबकि भारी मृदाओं (वर्टिसोल) के लिए गुरूत्वाकर्षण आधारित जलनिकास तकनीक की अनुमानित लागत रुपये 109,500 प्रति हैक्टर और तटीय एवं डेल्टा क्षेत्रों के लिए पम्पिंग आधारित जलनिकास तकनीक की अनुमानित लागत रुपये 129,000 प्रति हैक्टर आती है। दोमट मृदाओं में कुल खर्च का 50–55 प्रतिशत सामग्री लागत व 30–32 प्रतिशत मशीन लागत पर खर्च होता है जबकि वर्टिसोल और तटीय व डेल्टा क्षेत्रों में कुल खर्च का 60–65 प्रतिशत सामग्री लागत पर व 20–25 प्रतिशत मशीन लागत पर खर्च होता है। प्रभावित क्षेत्र में विकास लागत (10–20 प्रतिशत) लवणता व जलभराव समस्याओं की स्थिति पर निर्भर करती है। अत्यधिक लवणता प्रभावित क्षेत्रों में भूमि विकास लागत प्रायः अधिक होती है जिसका मुख्य कारण अवांछित विलायती बबूल, कीकर एवं अन्य झाड़ियों की सफाई व भूमि समतलीकरण पर होने वाले खर्च हैं। वृहद स्तर की जलनिकास परियोजनाओं पर विविध खर्चों में सर्वेक्षण व जलनिकास अन्वेषण, विस्तृत परियोजना रिपोर्ट, पहुंच–मार्ग व मुख्य नाली का निर्माण, हितधारकों का प्रशिक्षण, जल निष्कासन व अन्य गतिविधियों पर होने वाले व्यय भी सम्मिलित होते हैं।

जलनिकास तकनीक पैकेज

जलग्रस्त लवणीय मृदाओं के सुधार के लिए जलनिकास तकनीक पैकेज में आठ घटक सम्मिलित हैं – मुख्य ड्रेन की सफाई, झाड़ियों की कटाई व भूमि समतलीकरण, जलनिकास प्रणाली का निर्माण, लवण निक्षालन, बेहतर संचालन, रखरखाव, सहिष्णु फसलें एवं फसल अनुक्रमों का चयन, बेहतर सिंचाई प्रबंधन, कृषि क्रियाएं और हितधारकों का प्रशिक्षण। उपसतही जलनिकास प्रणाली लगाने के साथ–साथ सातों घटकों का बेहतर समन्वय कर फसल उत्पादकता में प्रभावशाली वृद्धि एवं किसानों की आमदनी को दोगुना किया जा सकता है।

जलनिकास प्रौद्योगिकी के लाभ

आठ राज्यों में एसएसडी द्वारा सुधारी गई जलग्रस्त लवणीय मृदाओं में फसल उत्पादकता में प्रभावी वृद्धि हुई जैसे धान में उपज वृद्धि 50 प्रतिशत से अधिक, गेहूँ व कपास में 100 प्रतिशत से अधिक तथा गन्ना में 100–200 प्रतिशत से अधिक हुई। सुधार के पश्चात् फसल सघनता में भी 40 प्रतिशत की वृद्धि हुई जिससे किसानों की आय में 2–3 गुणा बढ़ोत्तरी हुई। साथ ही 2–3 साल की अवधि में मृदा लवणता (ईसीई) घटकर 2–5 डेसी./मीटर तक कम हो गई। आठ राज्यों में क्रियान्वित उपसतही जलनिकास परियोजनाओं के आर्थिक विश्लेषण ने इंगित किया कि लाभ–लागत अनुपात की सीमा 1.5 से 3.2 के मध्य है। जबकि आंतरिक प्राप्ति दर 17 से 58 प्रतिशत के साथ–साथ ऋण वापसी की अवधि 3 से 5 वर्ष है।

लवणीय मृदाओं का सुधार

संस्थान ने देश में अनेक पायलट स्तरीय उपसतही जलनिकास परियोजनाओं का क्रियान्वयन एवं वृहद् स्तरीय स्वचालित यंत्रीकृत उपसतही जलनिकास प्रणाली को मानकीकृत किया गया है। इसके बाद स्वचालित यंत्रीकृत परियोजनाओं के कार्यान्वयन का मार्ग प्रशस्त हुआ और हरियाणा, राजस्थान, पंजाब, महाराष्ट्र, कर्नाटक, गुजरात, आंध्र प्रदेश एवं तेलंगाना में उपसतही जलनिकास परियोजनाएं लगाई गयी। पिछले पन्द्रह वर्षों में राष्ट्रीय योजनाओं–ग्रामीण विकास मंत्रालय की प्रौद्योगिकी विकास, विस्तार एवं प्रशिक्षण (टीडीईटी), जल संसाधन मंत्रालय की नहरी क्षेत्र विकास एवं जल प्रबन्धन (सीएडीडब्ल्यूएम), कृषि और किसान कल्याण मंत्रालय की राष्ट्रीय कृषि विकास योजना (आरकेवीवाई) एवं अन्य राज्य योजनाओं के माध्यम से सरकारी निवेश ने कई वृहद् उपसतही जलनिकास परियोजनाओं को महत्वपूर्ण गति प्रदान की है। अभी तक उपसतही जलनिकास तकनीक द्वारा देश में लगभग 70,384 हैक्टर जलग्रस्त एवं लवणीय मृदाओं का सुधार किया जा चुका है (तालिका 2) जिससे फसल उत्पादकता में काफी प्रभावी वृद्धि व किसानों की आमदनी में दोगुनी वृद्धि हुई है।

जलग्रस्त लवणीय दोमट मृदाओं का सुधार व प्रबंधन

हरियाणा राज्य में कृषि एवं किसान कल्याण विभाग के अंतर्गत हरियाणा आपरेशनल पायलट प्रोजेक्ट (एचओपीपी) और पंजाब में सिंचाई और जल संसाधन विभाग द्वारा संस्थान के तकनीकी सहयोग से दोनों प्रदेशों में उपसतही जलनिकास

तकनीक का क्रियान्वयन किया जा रहा है। हरियाणा राज्य में रोहतक, झज्जर, भिवानी, चरखी दादरी, सोनीपत, जींद, कैथल, फतेहाबाद, सिरसा एवं पलवल जिलों में जून 2018 तक लगभग 10884 हैक्टर जलग्रस्त लवणीय मृदाओं में उपसतही जलनिकास प्रणाली लगाई जा चुकी है जबकि पंजाब राज्य में मुक्तसर, फाजिलका और फरीदकोट जिलों में लगभग 4000 हैक्टर में यह प्रणाली लगाई जा चुकी है। संस्थान ने इस प्रोजेक्ट द्वारा क्रियान्वित वृहद् स्तरीय उपसतही जलनिकास परियोजनाओं के प्रभाव का आंकलन किया है। सोनीपत जिले के गोहाना में क्रियान्वित प्रथम वृहद् परियोजना में उपलब्ध आंकड़ों के विश्लेषण से पता चलता है कि सुधारी गयी भूमियों में भूजल स्तर 1.07 मीटर था जबकि समीप की बिना सुधारी भूमियों में भूजल स्तर 0.63 मीटर पर था। इसी प्रकार सुधारी गई भूमियों में जड़ क्षेत्र में मृदा लवणता में प्रभावी रूप से गिरावट देखी गई। सुधारे गये प्रक्षेत्रों में निक्षालन द्वारा अनुकूल लवण संतुलन बनाए रखने हेतु वर्षा ऋतु में पर्याप्त जल उपलब्ध होता है। जलनिकास द्वारा प्राप्त उत्प्रवाही जल की लवणता में सुधार देखा गया और यह विभिन्न स्थानों पर 1.23 से 3.03 डेसी./मीटर की सीमा में थी। इस जल का उपयोग रबी फसलों की सिंचाई हेतु सुरक्षित पुर्नचक्रित प्रयोग संभव है। मृदा लवणता में कमी आने से फसल उत्पादकता में बढ़ोत्तरी हुई। गेहूँ में 41 प्रतिशत उत्पादकता वृद्धि व बाजरे में 64 प्रतिशत थी। बिना सुधारी मृदाओं की तुलना (गेहूँ उपज 2.4 टन/हैक्टर) में सुधारी गयी मृदाओं में गेहूँ की उपज में प्रभावी वृद्धि (3.6 टन/हैक्टर) देखी गई जिसने उपसतही जलनिकास प्रणाली के महत्व को रेखांकित किया। उपसतही जलनिकास प्रणाली का प्रभाव खरीफ फसलों तक ही सीमित नहीं था बल्कि यह कृषि यंत्रों के सुचारू आवागमन में सहायक सिद्ध हुई जिससे रबी फसलों की शीघ्र बुवाई समय से हुई।

तालिका 2. विभिन्न प्रदेशों में उपसतही जलनिकास तकनीक द्वारा सुधारा गया अनुमानित क्षेत्र

मृदा प्रकार/राज्य	सिंचाई नहर/कमाण्ड क्षेत्र	क्षेत्रफल (हैक्टेयर)
दोमट मृदाएं		
हरियाणा	पश्चिमी यमुना नहर, भाखड़ा नहर, गुडगाँव नहर, आगरा नहर	10,884
पंजाब	सरहिन्द नहर, सरहिन्द फीडर नहर	4,000
राजस्थान	इंदिरा गांधी नहर परियोजना	500
काली मृदाएं		
राजस्थान	चम्बल नहर	16,000
महाराष्ट्र	नीरा नहर, कृष्णा नदी की लिफ्ट सिंचाई परियोजना, मुला कमांड, गोदावरी कमांड	5,500
कर्नाटक	तुंगभद्रा नहर, ऊपरी कृष्णा परियोजना, कृष्णा नदी की लिफ्ट परियोजना,	30,000
तेलंगाना	मालप्रभा नहर, घाटप्रभा नहर नागार्जुन सागर	300
गुजरात	माही–कड़ाणा, उकाई और काकरापार परियोजनाएं	1300
मध्य प्रदेश	तवा कमांड, वर्णा कमांड, चम्बल नहर	950
तटीय मृदाएं		
आंध्र प्रदेश	कृष्णा पश्चिमी डेल्टा, नागार्जुन सागर,	850
केरल	समुद्र तटीय मृदाएं, अम्लीय सल्फेट मृदाएं	100
कुल		**70,384**

इन सरकारी वित्तपोषित परियोजनाओं के अलावा, महाराष्ट्र और कर्नाटक प्रदेशों में स्थानीय किसानों द्वारा बिना सरकारी सहायता के 12,000 हैक्टर लवणीय भूमियों का सुधार उपसतही जलनिकास द्वारा किया जा चुका है।

जलग्रस्त लवणीय काली मृदाओं का सुधार व प्रबंधन

अभी तक महाराष्ट्र व कर्नाटक राज्य में जलनिकास प्रणाली क्रमशः 5,500 एवं 30,000 हैक्टेयर क्षेत्र में लगायी गयी। केन्द्रीय सरकार के ग्रामीण विकास मंत्रालय द्वारा वित्तपोषित परियोजना के अंतर्गत महाराष्ट्र के सांगली जिले की कृष्णा नदी घाटी में काली मृदाओं की लिफ्ट सिंचाई परियोजनाओं में क्रियान्वित दो पायलट जलनिकास परियोजनाएं 1,692 हैक्टर क्षेत्र में पूर्ण कर ली गई है। संस्थान के तकनीकी देखरेख में राज्य जल संसाधन विभाग की ओर से एक निजी कम्पनी, रेक्स पोलीएक्सट्रयूजन लिमिटेड, सांगली, महाराष्ट्र द्वारा इन दोनों परियोजनाओं का क्रियान्वयन किया गया। कर्नाटक के बेलगाम जिले के लगभग 1,000 हैक्टर क्षेत्र में भी केन्द्रीय सरकार के ग्रामीण विकास मंत्रालय द्वारा वित्तपोषित एक परियोजना का क्रियान्वयन इसी कम्पनी द्वारा सार्वजनिक–निजी भागीदारी (3 पी) रीति द्वारा किया गया। उपसतही नालियों को 30 मीटर के अंतराल पर व पार्श्व तथा संग्राहक नालियों को क्रमशः 1–1.2 मी. व 2.0 मी. की गहराई पर लगाया गया।

चित्र 2. उपसतही जलनिकास प्रणाली का योजनाबद्ध चित्रण

यहाँ पर जल निष्कासन के लिए प्रयुक्त निर्गम तरीका मुख्यतया गुरूत्वाकर्षण आधारित है जिससे पम्पिंग पर कोई व्यय नहीं होता है। महाराष्ट्र व कर्नाटक में एक हैक्टर क्षेत्र में उपसतही जलनिकास प्रणाली की लागत दर लगभग 110,000 रुपये आती है जिसे केन्द्र, राज्य व लाभार्थी द्वारा 60:20:20 के अनुपात में वहन किया जाता है। इसी प्रकार सतही मुख्य नाली के निर्माण एवं रख रखाव का शत प्रतिशत खर्च राज्य सरकार द्वारा वहन किया जाता है। इन क्षेत्रों में उपसतही जलनिकास प्रणाली का निष्पादन आशाजनक रहा है क्योंकि सुधारी गई मृदाओं में किसानों द्वारा अन्य फसलों के साथ ही नकदी फसलों जैसे गन्ना, कपास और हल्दी की खेती की जा रही है।

भूजल स्तर एवं मृदा लवणता के नियंत्रण के साथ–साथ फसलोत्पादक्ता में होने वाली वृद्धि से त्वरित लाभों को ध्यान में रखकर कई किसान शत प्रतिशत व्यक्तिगत निवेश द्वारा अपने खेतों पर जलनिकास प्रणाली लगा रहे हैं। पिछले 5 वर्षों में महाराष्ट्र और कर्नाटक राज्यों की भारी बनावट वाली मृदाओं में उपसतही जलनिकास प्रणाली के क्रियान्वयन (चित्र 2) में प्रभावशाली वृद्धि हुई है। लगाने के उपरांत जलनिकास प्रणाली की संचालन लागत लगभग शून्य होती है क्योंकि निक्षालित जल खुली सतही नालियों में गुरूत्वाकर्षण प्रभाव द्वारा डाल दिया जाता है। यह कई अध्ययनों में उपसतही जलनिकास प्रणाली द्वारा प्रक्षेत्र आय में होने वाली कुल वृद्धि में निर्णायक रूप से सिद्ध होती है। प्रक्षेत्र आय में वृद्धि मुख्यतः निम्नलिखित कारणों (क) फसल सघनता में वृद्धि, (ख) फसल प्रणाली में अधिक लाभप्रद फसलों का समावेश, (ग) फसल उपज में वृद्धि, (घ) रोजगार में वृद्धि, (च) मध्यम एवं सीमांत भूमियों का उपजाऊ कृषि भूमि में परिवर्तन एवं (छ) अवयव उपयोग दक्षता में वृद्धि से होती है। अच्छे तरीके से स्थापित एवं दक्षतापूर्ण प्रबंधित उपसतही जलनिकास प्रणालियां राष्ट्रीय विकास में अप्रत्यक्ष योगदान करती हैं।

तटीय एवं डेल्टीय मृदाओं का सुधार एवं प्रबंधन

तटीय एवं डेल्टा क्षेत्रों में कृषि भूमि की अधिकांश ऊंचाई समुद्र तल से कुछ मीटर अधिक है इसलिये समुद्री ज्वार द्वारा खारे पानी की सीधी पहुंच के कारण मृदा लवणता बढ़ने के कारण दोनों खरीफ एवं रबी मौसम में धान की खेती को काफी नुकसान होता है और धान की उत्पादकता कम होती है। मानसून (खरीफ) के मौसम में बारिश से अच्छे पानी की बड़ी मात्रा से मृदा लवणता में काफी कमी आती है। जबकि रबी मौसम के दौरान उच्च वाष्पीकरण और अच्छे पानी की पर्याप्त कमी के कारण मृदा लवणता की समस्या काफी बढ़ जाती है। उधर केरल के तटीय कुट्टानाद इलाके (अलप्पुझा और कोट्टायम जिले) एवं पश्चिम बंगाल के सुंदर बन डेल्टा क्षेत्र (दक्षिणी 24 परगना और उत्तरी 24 परगना जिले) में अम्लीय सल्फेट मृदा पायी जाती है जहाँ धान के खेत की ऊंचाई औसत समुद्र तल से 2 मीटर तक नीचे है इसे अंग्रेजी में 'पोल्डर' और केरल में 'कारी भूमि' कहा जाता है। कारी भूमि में अम्लीयता और लवणता का सहअस्तित्व एक विशेषता है। कारी भूमि की लवणता की समस्या समुद्री खारे पानी की सीधी पहुंच के कारण है जबकि अम्लीयता की समस्या मिट्टी की अम्लीय मूल प्रकृति के कारण है। कारी मिट्टी के रासायनिक विश्लेषण से पता चलता है कि गर्मी के मौसम में कारी मिट्टी बेहद अम्लीय होती है जिसमें पीएच मान 3.0 से 4.5 के बीच और ईसी 6 डेसी./मीटर से अधिक होती है।

कुट्टानाद इलाके की अम्लीय–सल्फेट (कारी) भूमि के सुधार के लिए पम्पिंग आधारित उपसतही जलनिकास परियोजना स्थापित की गयी है। जिसमें पार्श्व पाइप अंतराल 30 मीटर तक एवं गहराई 1.0 मीटर तक उपयोगी साबित हुई और फसल प्रदर्शन पर जलनिकासी के प्रभाव का मूल्यांकन करने पर पाया गया कि धान उत्पादकता में वृद्धि 50 प्रतिशत से अधिक हुई और किसानों की आमदनी में उल्लेखनीय सुधार हुआ। जलनिकास प्रणाली वाले क्षेत्र में पूरे मौसम के दौरान मृदा अम्लीयता हमेशा कम रही और मृदा लवणता को काफी हद तक नियंत्रित किया गया इसलिए यह निष्कर्ष निकलता है कि उपसतही जलनिकास प्रणाली अम्लता, लवणता और दोनों आयनों की विषाक्त सांद्रता के हानिकारक प्रभाव को कम करने में बहुत प्रभावी सिद्ध हुई और इसके परिणामस्वरूप कुट्टानाद की कारी मिट्टी में धान के उत्पादन में प्रभावशाली वृद्धि हुई। पम्पिंग आधारित उपसतही जलनिकास प्रणाली की लागत दर एक हैक्टर क्षेत्र में लगभग 1,29,000 रुपये आती है।

चित्र 3. काली मृदाओं में उपसतही जलनिकास परियोजना का चरणबद्ध क्रियान्वयन

राष्ट्रीय नीति, संस्थागत ढांचा एवं वित्त पोषण

इस प्रौद्योगिकी को राष्ट्रीय स्तर पर तेज गति प्रदान करने के लिए उपयुक्त राष्ट्रीय नीतियों, उचित संस्थानों और दीर्घकालीन वित्त पोषण की आवश्यकता होती है। पिछले 20 वर्षों में प्रौद्योगिकी ने वर्तमान नीतियों, योजनाओं वित्त पोषण और संस्थानों के पूर्ण समन्वय के साथ देश में कुल जलग्रस्त लवणीय मृदाओं के क्षेत्रफल का केवल 5 प्रतिशत ही सुधार किया है। राष्ट्रीय स्तर पर यह कमजोर प्रगति वर्तमान राष्ट्रीय नीतियों, संस्थानों और विकास कार्यक्रमों के माध्यम से बड़े पैमाने पर कार्यान्वयन के लिए समयबद्ध वित्त पोषण के साथ हुई जटिल बाधाओं को दर्शाती है। इसके विपरीत, जिप्सम प्रौद्योगिकी ने वर्तमान राष्ट्रीय नीतियों, समयबद्ध वित्त पोषण एवं राज्य भूमि विकास एवं सुधार निगमों के साथ लगभग 45 वर्षों में देश में कुल क्षारीय भूमि के क्षेत्रफल का 55 प्रतिशत सुधार किया है। इस प्रकार जलग्रस्त लवणीय मृदाओं के समयबद्ध सुधार के लिए एकल राष्ट्रीय नीतियों, और संस्थानों के समन्वय की कमी है। जैसे ग्रामीण विकास मंत्रालय की प्रौद्योगिकी विकास, विस्तार एवं प्रशिक्षण (टीडीईटी) योजना, जल संसाधन मंत्रालय की नहरी क्षेत्र विकास एवं जल प्रबन्धन (सीएडीडब्ल्यूएम) योजना, कृषि और किसान कल्याण मंत्रालय की राष्ट्रीय कृषि विकास योजना (आरकेवीवाई) एवं अन्य राज्य योजनाओं में जलग्रस्त लवणीय मृदाओं के सुधार के लिए उपसतही जलनिकास परियोजना के लिए कोई निधि का निश्चित आवंटन नहीं होता है। साथ ही उपसतही जलनिकास परियोजना का कार्यान्वयन अत्यधिक कुशल कार्य है। राज्यों में कोई एक कुशल विभाग जिम्मेदार नहीं है जैसे हरियाणा राज्य में कृषि एवं किसान कल्याण विभाग के अंतर्गत हरियाणा ऑपरेशनल पायलट प्रोजेक्ट (एचओपीपी), पंजाब में सिंचाई और जल संसाधन विभाग, राजस्थान में कमाण्ड़ क्षेत्र विकास प्राधिकरण इत्यादि। कार्यान्वयन के लिए उचित तकनीकी कुशल विभाग की कमी बहुत बडी समस्या है। साथ ही विश्लेषण ने इंगित किया कि राष्ट्रीय नीतियां एवं वित्तपोषण सभी समस्याग्रस्त मृदाओं के लिए है जिसमें क्षारीय, लवणीय एवं अम्लीय मृदाएं आती है। जलग्रस्त लवणीय मृदाओं का सुधार एवं दीर्घकालिक सफलता के लिए एकल राष्ट्रीय नीतियों, समयबद्ध वित्तपोषण और कुशल संस्थान बनाने एवं मजबूत करने पर अधिक जोर देने की आवश्यकता है।

निष्कर्ष

देश के सिंचित कमाण्ड़ की दोमट और काली मृदाओं एवं तटीय एवं डेल्टा क्षेत्रों में जलग्रस्त एवं लवणीय मृदाओं के सुधार के लिए उपसतही जलनिकास प्रणाली तकनीकी एवं वित्तीय दृष्टि से व्यवहार्य है। इसकी दीर्घकालिक सफलता के लिए राज्यों में समयद्ध वित्तपोषण, कुशल संस्थागत ढांचा, तकनीकी कर्मियों का अभाव एवं उचित प्रशिक्षण, किसानों की समुचित भागीदारी एवं विभिन्न सामाजिक बाधाओं का निराकरण एवं मजबूत करना अति महत्वपूर्ण है। जलग्रस्त लवणीय मृदाओं के विस्तृत क्षेत्र व आवश्यक स्वचालित ट्रेन्चर मशीनों की विदेश से खरीदने में आने वाले बाधाओं को ध्यान में रखते हुए यह कहा जा सकता है कि सरकारी योजनाओं जैसे नहरीय क्षेत्र विकास एवं जल प्रबंधन और राष्ट्रीय कृषि विकास योजना के माध्यम से वित्तीय सहायता के साथ ही सार्वजनिक–निजी सहभागिता रीति द्वारा इन परियोजनाओं को त्वरित गति प्रदान की जा सकती है। वर्तमान राष्ट्रीय नीति, संस्था पुनर्गठन और समयबद्ध वित्तपोषण के सुधार द्वारा बड़े पैमाने पर कार्यान्वयन कर जलग्रस्त लवणीय मृदाओं का जल्द सुधार कर देश की खाद्य सुरक्षा को स्थायित्व प्रदान किया जा सकता है।

समाप्त

आप कब सही थे ये कोई याद नहीं रखता,
आप कब गलत थे इसे कोई नहीं भूलता।

छेदी लाल वर्मा, सुनील कुमार झा एवं विनय कुमार मिश्र
भाकृअनुप–केन्द्रीय मृदा लवणता अनुसंधान संस्थान, क्षेत्रीय अनुसंधान केन्द्र, लखनऊ–226002 (उत्तर प्रदेश)
E-mail: lalc_verma@yahoo.com

वर्षा जल पुनर्भरण द्वारा फ्लोराइड प्रभावित भूजल गुणवत्ता का सुधार

फ्लोराइड के प्रभाव

फ्लोराइड का कम मात्रा में उपयोग (0.6 मिग्रा./लीटर) दांत और अस्थियों के लिए बड़ा उपयोगी है किन्तु इसकी अनुमोदित मात्रा से अधिक मात्रा का दीर्घ अवधि तक सेवन करने से फ्लोरोसिस नामक एक असाध्य रोग का जन्म होता है। फ्लोरोसिस अभी भी स्थानीय समस्या बनी हुई है और देश के विभिन्न भागों से इससे प्रभावित क्षेत्रों का पता चल रहा है। बारह वर्ष से कम आयु के बच्चे इससे सबसे अधिक प्रभावित होते हैं क्योंकि उनकी कोशिकाएं संरचनात्मक अथवा वृद्धि के स्तर पर होती है। फ्लोरोसिस जो पहले एक दांत की बीमारी समझी जाती थी, अब भयानक स्वास्थ्य समस्या बनती जा रही है। यह बड़े भयावह रूप से अस्थियों एवं जोड़ों को प्रभावित करती है। मांसपेशियों का दर्द इसका एक सर्वविदित दुष्प्रभाव है। दांतों में होने वाला फ्लोरोसिस फ्लोराइड की अतिदेयता से उत्पन्न होने वाला रोग है जिसमें दाँतों में काले अथवा भूरे धब्बे पड़ जाते हैं साथ ही साथ दांतो में चिटकन अथवा गड्ढे बन जाते हैं (चित्र 1अ)। फ्लोराइड की अत्यधिक मात्रा के सेवन से अस्थि फ्लोरोसिस होती है (चित्र 1ब)। अग्रवर्ती चरण में अस्थियों एवं अस्थियों के जोड़ में दर्द और क्षति पहुँचती है। अस्थि गठन प्रभावित होने से अस्थियां टेढ़ी हो जाती है (चित्र 1ब)। फ्लोराइड की अत्यधिक मात्रा का सेवन मानसिक रोगों का कारण भी माना जाता है। अस्थि फ्लोरोसिस में अस्थियों में वर्षों तक फ्लोराइड संचित होता रहता है। कंकाल फ्लोरोसिस के प्रारंभिक लक्षण में अस्थि संधियों में जकड़न और दर्द होता है। भयावह दशाओं में अस्थि संरचना परिवर्तित हो सकती है और अस्थि–संधि तंतु कठोर हो जाते हैं जिससे मांसपेशियों की बड़ी क्षति और दर्द होता है।

कुछ मामलों में फ्लोराइड की अत्यधिक मात्रा के उपयोग से पैराथाइराइड ग्रंथि को भी नुकसान पहुँच सकता है। इसके परिणामस्वरूप हाइपरथाइरॉइडिज्म जैसी अंतःस्रावी ग्रंथि का रोग हो सकता है जिसमें पैराथाइरॉइड हारमोन का अनियंत्रित स्राव होने लगता है जिससे अस्थियों से कैल्शियम का ह्रास होने लगता है और रक्त में कैल्शियम की मात्रा बढ़ जाने से अस्थि भंजन की संभावना अत्यधिक बढ़ जाती है। यह बच्चों के विकास में सीसा, आर्सेनिक, टालूइन एवं मिथाइल–मरकरी सहित दस औद्योगिक रसायनों की तरह संकटकारक हो सकता है। फ्लोराइड चर्म रोग उत्पन्न कर सकता है। फ्लोराइड हृदय वाहिनी सम्बन्धी विकार उत्पन्न कर सकता है। लड़कियों में शिशु उत्पादकता की कमी और पूर्व प्रौढ़ता जैसी स्थिति पैदा कर सकता है। यह शारीरिक फ्लोराइड दुष्क्रिया को जन्म दे सकता है। फ्लोराइड ऑस्टिओ आर्थराइटिस, अस्थि कैंसर जैसी समस्याएं भी उत्पन्न कर सकता है। यह स्नायु विकार मानसिक रोग उत्पन्न कर सकता है।

फ्लोराइड और इसके स्रोत

फ्लोराइड आवर्त सारणी के हेलोजन समूह के तत्वों में सबसे हल्का और सबसे अधिक क्रियाशील तत्व है। प्रकृति में इसकी उपस्थिति लवण अथवा आयन के रूप में है। सभी तत्वों में यह सर्वाधिक वैद्युत ऋणात्मक होता है अर्थात इसके ऋणात्मक आवेश प्राप्त करने और विलयन में फ्लोराइड ऋणात्मक आयन बनाने की प्रवृत्ति सर्वाधिक होती है। फ्लोराइड आयन की त्रिज्या और आवेश हाइड्रोक्सिल आयन के समतुल्य होती है, अतः खनिज संरचना में एक दूसरे को प्रतिस्थापित कर सकते हैं।

फ्लोराइड विभिन्न धनायनों से जटिल खनिज बनाते हैं। फ्लोरीन वायुमंडल में फ्लोराइड के रूप में पाया जाता है। भूमि की उपरी सतह में इसकी उपस्थिति 0.06–0.09 प्रतिशत है। फ्लोराइड निम्न घुलनशीलता, बहुत ही सामान्य रूप से पाया जाने वाला फ्लोराइड खनिज है जो आग्नेय व अवसादी चट्टानों में पाया जाता है। फ्लोरस्पार, रॉक फॉस्फेट, क्रायोलाइट, एपेटाइट, माइका, हॉर्न ब्लेंड आदि फ्लोराइड के प्रमुख खनिज हैं। क्रायोलाइट का प्रयोग एलुमिना उत्पादन एवं पेस्टीसाइड उत्पादन में किया जाता है। रॉक फॉस्फेट में से लगभग 4.2 प्रतिशत फ्लोराइड निकालकर इसका उपयोग फॉस्फेटिक उर्वरक बनाने के काम में प्रयुक्त होता है। फ्लोराइड ज्वालामुखीय गतिविधियों एवं फ्युमारोलिक गैसों से भी सामान्य रूप से सम्बद्ध होती है। उच्च पीएच मान वाले तापीय जल में फ्लोराइड की मात्रा पायी जाती है। कुछ देशों में शोधित फ्लोराइड पेयजल में मिलाकर दांतों के क्षय के रोकथाम के लिए प्रयोग किया जाता है।

अ) दंत फ्लोरोसिस

ब) अस्थि फ्लोरोसिस

चित्र 1. दन्त एवं अस्थि फ्लोरोसिस के लक्षण

जल में फ्लोराइड का वितरण एवं प्रभावित प्रदेश

फ्लोराइड सभी प्रकार के जल में न्यूनाधिक रूप में पाया जाता है। पृष्ठीय जल में इसकी मात्रा सबसे कम और भूजल में सबसे अधिक होती है। पृथ्वी की निचली परतों में फ्लोराइड की भू–स्थानिक उपस्थिति के कारण ऐसा होता है। भूजल में फ्लोराइड की मात्रा फ्लोराइड वहन करने वाले खनिजों पर निर्भर करती है। फ्लोराइड की मात्रा नदियों के जल में 0.5 मिग्रा./लीटर और समुद्र जल में 1.5 मिग्रा./लीटर होती है। तालिका 1 में भारत के विभिन्न प्रदेशों के फ्लोराइड प्रभावित क्षेत्रों व फ्लोराइड सांद्रता को दर्शाया गया है।

तालिका 1 से ज्ञात होता है कि हरियाणा के भूजल में फ्लोराइड सांद्रता सर्वाधिक (48 मिग्रा./ली.) और जम्मू कश्मीर में न्यूनतम (4.21 मिग्रा./ली.) रिपोर्ट की गयी है। भारत के 19 प्रदेश फ्लोराइड की समस्या से प्रभावित हैं। आंध्र प्रदेश, गुजरात एवं राजस्थान में लगभग 50 से 100 प्रतिशत जिले फ्लोराइड से प्रभावित हैं। बिहार, झारखण्ड, हरियाणा, कर्नाटक, मध्य प्रदेश, महाराष्ट्र, ओडिशा, पंजाब, तमिलनाडु और उत्तर प्रदेश के लगभग 30 से 50 प्रतिशत जिले फ्लोराइड से ग्रसित हैं। छत्तीसगढ़, दिल्ली, जम्मू कश्मीर, केरल एवं पश्चिम बंगाल के 30 प्रतिशत से कम जिले प्रभावित है। एक अनुमान के अनुसार देश के 19 प्रदेशों के लगभग 6.662 करोड़ लोग एवं 14 वर्ष से कम के 0.60 करोड़ बच्चे फ्लोराइड दूषित जल प्रयोग के जोखिम स्तर पर हैं। एक अन्य अनुमान के अनुसार भारत में 1.8197 करोड़ लोग दंत फ्लोरोसिस एवं 0.7889 करोड़ लोग अस्थि फ्लोरोसिस से प्रभावित हैं।

अपावरण (एक्सपोजर): फ्लोराइड के वायु, विभिन्न स्वास्थ उत्पाद, पेय एवं भोज्य पदार्थ एवं पेय जल के माध्यम से प्रभावन अथवा अपावरण की संभावना हो सकती है तथापि भारत वर्ष में पेय जल ही इसके अपावरण का प्रमुख कारण है। विभिन्न अपावरण की संभावनाओं को निम्नवत प्रस्तुत किया जा रहा है।

वायुमंडल: धूल, फॉस्फेट उर्वरकों के औद्योगिक उत्पादन, कोयला जलने एवं ज्वालामुखी गतिविधियों से फ्लोराइड वायुमंडल में दूर–दूर तक व्याप्त है। वायु के माध्यम से फ्लोराइड प्रदूषण की संभावना न्यून होती है क्योंकि बिना उद्योग वाले क्षेत्रों में हवा में फ्लोराइड की सांद्रता 0.05 से 1.90 माइक्रो ग्राम प्रति मी^{3} तक होती है। वायु में फ्लोराइड की सांद्रता उन क्षेत्रों में अधिक होती है जहाँ पर फ्लोराइड युक्त कोयला जलाया जाता है या फॉस्फेट उर्वरकों का उत्पादन होता है। जहाँ वायु में फ्लोराइड की सांद्रता अधिक होती है वहाँ श्वसन के माध्यम से फ्लोराइड से प्रभावित होने की संभावना अत्यधिक होती है। एक अनुमान के अनुसार चीन में लगभग एक करोड़ लोग फ्लोराइड युक्त कोयला जलाने के कारण फ्लोरोसिस से प्रभावित हैं। ईंट भट्टों जहाँ कोयला जलाकर ईंट पकाई जाती है वहाँ भी फ्लोराइड प्रदूषण का भय बना रहता है।

दाँत संबंधी उत्पाद: बच्चों के दंत क्षय को रोकने के लिए बहुत से उत्पादों में फ्लोराइड मिला होता है। टूथपेस्ट में फ्लोराइड की औसत मात्रा 1.0 से 1.5 ग्राम प्रति किग्रा. स्थानीय प्रयोग हेतु फ्लोराइड घोल अथवा जैल में 0.25 से 24.0 ग्राम/किग्रा. और फ्लोराइड टिकिया में 0.25 से 1.00 मिग्रा/टिकिया होती है। जहाँ पेयजल में पहले से ही फ्लोराइड की मात्रा अधिक हो वहाँ इन उत्पादों का प्रयोग डॉक्टर की सलाह से करना चाहिए।

तालिका 1. भारतवर्ष में फ्लोराइड प्रभावित प्रदेश और विस्तार

प्रदेश	प्रभावित जिले	प्रभावित क्षेत्र (प्रतिशत)	भूजल में फ्लोराइड सांद्रता
हरियाणा	भिवानी, फरीदाबाद, गुडगाँव, जींद, कैथल, करनाल, कुरुक्षेत्र, मोहिंदरगढ़, रेवाड़ी, रोहतक, सिरसा, सोनीपत	30–50	0.23–48.00
पंजाब	फरीदकोट, फिरोजपुर, होशियारपुर, मुक्तसर, संगरूर	30–50	0.40–42.50
दिल्ली	केंद्रीय क्षेत्र, उत्तर पूर्व क्षेत्र, उत्तर पश्चिम क्षेत्र, पूर्वी क्षेत्र, दक्षिण पश्चिम क्षेत्र, दक्षिण क्षेत्र, पश्चिम क्षेत्र	30–50	0.20–32.46
आंध्र प्रदेश	अनंतपुर, चित्तूर, गुंटूर, हैदराबाद, करीमनगर, खम्मम, कृष्णा, कुरनूल, महबूबनगर, मेडक, नलगोंडा, नेल्लोर, प्रकाशम, रंगारेड्डी, वारंगल	50–100	0.40–29.00
उत्तर प्रदेश असम	कन्नौज, फरुखाबाद, हरदोई, रायबरेली, प्रतापगढ़, उन्नाव, वाराणसी करबी, आंगलोंग, नागव	30–50 30 से कम	0.20–25.00 1.60–23.40
पश्चिम बंगाल	24 दक्षिण परगना, बांकुरा, बीरभूमि, दक्षिण दीनापुर, मालदा, पुरुलिया, उत्तर दीनापुर	30 से कम	1.10–14.47
राजस्थान	अजमेर, अलवर, बांसवाड़ा, बारां, बाड़मेर, भरतपुर, भीलवाड़ा, बीकानेर, बूंदी, चित्तौडगढ़, चूरू, दौसा, धौलपुर, डूंगरपुर, गंगानगर, हनुमानगढ़, जयपुर, जैसलमेर, जालोर, झालावाड़, झुंझुनू, जोधपुर, करौली, कोटा, नागौर, पाली, राजसमंद, सवाई माधोपुर, सीकर, सिरोही, टोंक, उदयपुर	50–100	0.10–14.00
झारखण्ड	देवघर, गिरध, पाकुर, पलामू, साहबगंज	30–50	0.50–14.00
गुजरात	अहमदाबाद, अमरेली, आनंद, बनासकांठा, भरुच, भावनगर, दाहोद, गांधीनगर, गोधरा, जामनगर, जूनागढ़, कच्छ, महेसाणा, नर्मदा, नवसारी, पंचमहल, पाटन, पोरबंदर, राजकोट, साबरकांठा, सूरत, सुरेंद्रनगर, वड़ोदरा, वलसाड	50–100	0.15–13.00
मध्य प्रदेश	छिंदवाड़ा, धार, डिंडोरी, ग्वालियर, झाबुआ, विदिशा, सोनी, सिहोर, शिवपुरी, रायसेन, मंदसौर, नीमच, उज्जैन	30–50	1.50–11.40
महाराष्ट्र	अकोला, अमरावती, भंडारा, बुलढाणा, चंदरपुर, जलगांव, नागपुर, नांदेड़, सोलापुर, यवतमाल	30–50	0.11–10.00
ओडिशा	अँगुल, बालासोर, भद्रक, बोलांगीर, बौद्ध, ढँकनाल, गंजम, जगतसिंघपुर, जाजपुर, कालाहांडी, क्योंझर, खुर्द, कोरापुट, मयूरभंज, नयागढ़, पुलबानी, पुरी	0.60–9.20 30 से कम	
छत्तीसगढ़	ढंडेवला, दुर्ग	30–50	0.90–8.80
बिहार	भागलपुर, गया, जमुई, मुंगेर, नवादा, रोहतास	30–50	0.20–8.12
कर्नाटक	बैंगलोर रूरल, बीजापुर, बेलगांव, बेल्लारी, चिकमगलूर, चित्रदुर्ग, धारवाड़, गडग, गुलबर्ग, कोलार, मांड्या, मंगलौर, मैसूर, रायचूर, शिमोगा, टुमकुर	30–50	0.20–7.79
तमिलनाडु	कोयम्बटूर, धर्मपुरी, इरोड, कृष्णगीर, मदुरै, सलेम, तिरूचिरापल्ली, वेल्लोर	30–50	0.10–7.00
केरल	अल्लपी, पालघाट, वमनपुरम	30 से कम	0.20–5.40
जम्मू–कश्मीर	डोडा	30 से कम	0.50–4.21

भोजन और पेय पदार्थः सब्जियों और फलों में फ्लोराइड की मात्रा काफी कम होती है अतः इनसे स्वास्थ्य के हानिकर होने की संभावना नहीं होती। बाजरा और चावल में फ्लोराइड की मात्रा अधिक (2 मिग्रा./कि.ग्रा.) हो सकती है। मत्स्य प्रोटीन मिश्रण में फ्लोराइड की मात्रा 370 मिग्रा./कि.ग्रा. तक हो सकती है। मानव दुग्ध से फ्लोराइड एक्सपोजर जोखिम न्यूनतम होता है क्योंकि मानव दुग्ध में फ्लोराइड का स्तर मात्र 0.02 से 0.05 मिग्रा./लीटर ही होता है। चाय की पत्तियों में फ्लोराइड का स्तर 400 मिग्रा./कि.ग्रा. तक हो सकता है। 85 डिग्री सेल्सियस के 100 मिली. विआयनित जल में चीन के एक ग्राम चाय की पत्ती डालकर बनाये गए 15 काली चाय के नमूनों में औसत फ्लोराइड की सांद्रता 173 मिग्रा./लीटर, भारत और श्रीलंका की चाय की पत्ती से बनाये गए 12 काली चाय के नमूनों में औसत फ्लोराइड की सांद्रता 124 मिग्रा./लीटर और 6 हर्बल चाय के नमूनों में औसत फ्लोराइड की सांद्रता मात्र 0.02 से 0.05 मिग्रा./लीटर पायी गयी। जब एक ग्राम भारतीय चाय की पत्ती को 125 मिली. पानी में पांच मिनट तक उबाला जाता है तब इसमें फ्लोराइड की सांद्रता 18.13 से 56.10 मिग्रा./लीटर और जब एक ग्राम चाय की पत्ती पर 125 मिली. गरम पानी डालकर चाय बनाते हैं तो उसमें औसत फ्लोराइड सांद्रता 11.13 से 37.34 मिग्रा./लीटर होती है। यदि प्रति व्यक्ति प्रति दिन मात्र 2 ग्राम चाय की पत्ती का प्रयोग करें और उस चाय की पत्ती में उपस्थित दो तिहाई फ्लोराइड चाय में घुलकर आ सके तो भी प्रति व्यक्ति प्रति दिन 0.7 से 1.0 मिग्रा. फ्लोराइड की मात्रा मानव शरीर में प्रवेश कर जाती है। राजस्थान के टोंक जिले में फ्लोराइड प्रभावित क्षेत्र जहाँ भूजल में फ्लोराइड की मात्रा 1.50 से 10.76 मिग्रा./लीटर थी वहाँ भैस के दूध में फ्लोराइड मात्रा 3.32 से 6.85, औसत 3.90 मिग्रा./लीटर, गाय के दूध में 1.73 से 6.83, औसत 3.87 मिग्रा./लीटर तथा बकरी के दूध में 0.41 से 2.06, औसत 0.85 मिग्रा./लीटर पाया गया।

फ्लोराइड अपावरण सीमा

भारतीय मानक ब्यूरो (बीआईएस–105001991) व विश्व स्वास्थ्य संगठन, मानव उपयोग के लिए सुरक्षित पेय जल में 1.0 पीपीएम व 1.5 पीपीएम फ्लोराइड की मात्रा अनुमोदित करते हैं। राजस्थान के कई प्रभावित जिलों में ग्रामीण लोग पेयजल में फ्लोराइड की 24 पीपीएम तक की मात्रा लेने को मजबूर हैं। भारत में फ्लोरोसिस का प्रमुख सामान्य कारण कूओं से पीने के उद्देश्य से फ्लोराइड युक्त जल का दोहन है। उष्ण क्षेत्रों में जहाँ का औसत तापक्रम अधिक होने से पानी का प्रयोग अधिक होता है, उन क्षेत्रों में पेयजल में फ्लोराइड की मात्रा का निर्धारण क्षेत्र के औसत तापक्रम के अनुसार करना चाहिए। अति ठण्डे क्षेत्रों के लिए जहाँ औसत तापमान शून्य डिग्री सेल्सियस के आस–पास हो वहाँ पेयजल में फ्लोराइड सांद्रता की सीमा 2.1 मिग्रा प्रति लीटर और जहाँ का तापक्रम 50 डिग्री सेल्सियस हो वहाँ फ्लोराइड सांद्रता की सीमा 0.50 मिग्रा प्रति लीटर निर्धारित की गयी (तालिका 2)। क्षेत्र के तापक्रम में वृद्धि के साथ फ्लोराइड का स्तर घटता है। इस संबंध को निम्नलिखित सूत्र से भी प्रकट किया जा सकता हैः

तालिका 2. पेयजल आपूर्ति में फ्लोराइड स्तर की सीमा

क्षेत्र का औसत अधिकतम तापक्रम (डिग्री सेल्सियस)	अधिकतम फ्लोराइड स्तर (मिग्रा./लीटर)
0	2.1
10	1.3
20	0.9
30	0.7
40	0.6
50	0.5

$$\text{फ} = 1/0.030687 \times \text{तापमान} + 0.47535$$

जहाँ, फ = पेयजल में फ्लोराइड की मात्रा, मिग्रा/लीटर

ताप = क्षेत्र का औसत तापमान, डिग्री सेल्सियस

मानव स्वास्थ्य पर फ्लोराइड के प्रभाव को पेयजल, भोजन एवं श्वसन के माध्यम से प्रयुक्त कुल फ्लोराइड की मात्रा से ज्ञात करते हैं। दैनिक आहार एवं पोषण से भी इसका गहरा संबंध है। डेरी उत्पाद (दूध, दही, घी एवं पनीर) प्रयोग करने वालों पर फ्लोराइड का असर कम परिलक्षित होता है। उन्नाव जिले के सिरसाह खेड़ा, मकूर और मार्कसनगर गांव में एक ही स्रोत से जल पीने पर लोगों पर इसका अलग–अलग प्रभाव देखा गया है।

फ्लोराइड शोधन विधियां

फ्लोराइड युक्त जल के शुद्धिकरण की अनेक विधियां जैसे नलगोंडा तकनीक, अस्थि कोयला, आयन विनिमय रेजिन, प्रतिलोम परासरण एवं सक्रिय एल्यूमिना उपलब्ध है। राष्ट्रीय पर्यावरण अभियांत्रिकी अनुसंधान संस्थान (नीरी) नागपुर ने नलगोंडा नामक एक सरल फ्लोराइड शोधन तकनीक का विकास किया है। नलगोंडा तकनीक में फ्लोराइड दूषित जल में एल्युमीनियम लवण, चुना और ब्लीचिंग/बिरंजक पावडर को मिलाकर तीव्र गति से मिश्रित, उर्णित, अवसादित एवं निस्पंदित, तत्पश्चात् रोगाणु रहित कर लेते हैं। एल्युमीनियम लवण के रूप में एल्युमीनियम सल्फेट, एल्युमीनियम क्लोराइड अथवा दोनों के मिश्रण का प्रयोग किया जाता है। इस विधि में एक 60 लीटर क्षमता वाली बाल्टी में नीचे से 5 सेंमी. ऊपर एक जलनिकास टोंटी लगा दी जाती है ताकि निस्पंदित अपशिष्ट को सहजता से निकाला जा सके। बाल्टी में फ्लोराइड दूषित जल भरकर उसमें जल की क्षारीयता के अनुसार पर्याप्त मात्रा में एल्युमीनियम सल्फेट का घोल, चूना या कपडा धोने वाला सोडा तथा विरंजक चूर्ण मिला दिया जाता है। दूषित जल में पहले फिटकरी का घोल मिलाकर अच्छी तरह से मिला लेते हैं फिर उसमें चूना अथवा कपडा धोने का सोडा मिलाकर 20 मिनट तक अच्छी तरह से मथते हैं और फिर एक घंटे के लिए निथरने के लिए छोड़ देते हैं। तत्पश्चात् सतह पर तैरने वाले जल को छान कर अलग कर लेते हैं जो अब फ्लोराइड मुक्त हो चुका होता है। यह विधि जब कुल घुलित ठोस 1500 मिग्रा./लीटर से कम, जल की कठोरता 600 मिग्रा./लीटर से कम तथा दूषित जल में फ्लोराइड की सांद्रता 1.5 से 20 मिग्रा./लीटर के मध्य हो तो उपयुक्त रहती है। यह तकनीक किसानों की पहुँच से अभी भी दूर है

वर्षा जल संग्रहण एवं पुनर्भरण द्वारा फ्लोराइड समस्या का निदान

वर्षा जल का संचयन और इसका प्रयोग पेयजल के रूप में सफलतापूर्वक किया जा सकता है। वर्षा जल का प्रयोग फ्लोराइड़ युक्त भूजल में मिश्रित कर उसमें फ्लोराइड की मात्रा को अनुमोदित स्तर तक लाया जा सकता है। वर्षा जल पुनर्भरण भूजल में उपस्थित फ्लोराइड की सांद्रता को तनुकरण करने की विशेष सामर्थ्य रखता है। भवनों की छत से संग्रहीत वर्षा जल का भण्डारण और पुनर्भरण के माध्यम से फ्लोराइड सांद्रता का तनुकरण, भूजल में फ्लोराइड समस्या का एक सहज निदान है।

तनुकरण का सिद्धांत

उत्तरी भारत के मध्यवर्ती गंगा के मैदानों में वर्षा का वार्षिक औसत 80 से 100 सेंमी. है। इस वर्षा का औसतन दसवां भाग ही पुनर्भरण के माध्यम से भूजल बन पाता है। वर्षा जल में लवणों की मात्रा बहुत कम होती है। वर्षा जल का प्रयोग भण्डारण कर पेयजल के रूप में किया जा सकता है। वर्षा जल जो पुनर्भरण के द्वारा भूजल का रूप लेता है भूजल में उपस्थित लवणों का तनुकरण भी करता रहता है। भारतवर्ष के अधिकतर गाँवों में हैंड पम्पों का प्रयोग भूजल दोहन के लिए करते हैं। घरों से एकत्रित वर्षा जल में मिट्टी आदि के कण न के बराबर होते हैं और इसमें कोई प्रदूषण भी नहीं होता है अतः इसका उपयोग सीधे भूजल पुनर्भरण के लिए किया जा सकता है। घर की छतों से संग्रहीत जल को हैंडपंपों, जो पुनर्भरण संरचना का कार्य भी करता है, का उपयोग कर भूजल में उपस्थित विभिन्न प्रदूषकों को सफलतापूर्वक स्वीकार्य सीमा में लाया जा सकता है।

चयनित गाँव

उन्नाव जिले के असोहा खण्ड में मध्यम जल स्तर की दशा में स्थित सिरसाहखेड़ा गाँव एवं उथले जल स्तर में नवाबगंज खण्ड में स्थित मार्कसनगर गाँव के भूजल में फ्लोराइड की सांद्रता के स्तर का अध्ययन किया गया। वर्षा ऋतु के बाद भूजल में फ्लोराइड की सांद्रता प्राकृतिक पुनर्भरण के कारण कम हो जाती है और शुष्क समय में पंपिंग के कारण गिरते जल स्तर के साथ बढ़ती है। सिरसाहखेड़ा गाँव में फ्लोराइड सांद्रता का औसत फरवरी और जून 2016 में क्रमशः 2.467 व 2.503 पीपीएम था जो अक्टूबर में घटकर 1.430 पीपीएम हो गया। इसी तरह से उन्नाव के मार्क्सनगर गाँव में फ्लोराइड सांद्रता का औसत फरवरी और जून 2016 के दौरान 2.606 और 2.24 पीपीएम था जो प्राकृतिक पुनर्भरण से घटकर अक्टूबर 2017 के दौरान 2.302 पीपीएम पाया गया। दोनों ही गाँव पेय जल में फ्लोराइड की समस्या से प्रभावित हैं। भवनों की छत का वर्षा जल आधारित पुनर्भरण के माध्यम से भूजल में फ्लोराइड की सांद्रता को कम कर पीने योग्य बनाने के लिए सिरसाह खेड़ा गाँव का चयन किया गया।

भवन छत से वर्षा जल संग्रहण संरचना की अभिकल्पना एवं स्थापना

प्रतिदिन वर्षा के विश्लेषण में 10 प्रतिरागमन वर्ष के लिए उन्नाव क्षेत्र की एक दिवसीय संभावित अधिकतम वर्षा 140 मिमी. पायी गयी। चयनित किसान के घर की छत का क्षेत्रफल 66 वर्गमीटर था। चूँकि किसान के घर की छत नयी थी, अतः छत पर अधिकतम वर्षाजल भंडारण 15 सेंमी. लिया गया जो एक वर्ग मीटर में 2.5 व्यक्तियों के औसत भार 140 किग्रा. के बराबर है। यदि 140 मिमी. वर्षा तात्क्षणिक रूप से हो जाये तो इस वर्षा से छत पर कुल 9240 लीटर जल एकत्रित होगा। इस वर्षा जल को दो घंटे में छत से जलनिकास के लिए 65 मिमी. व्यास के प्लास्टिक पाइप की आवश्यकता पड़ेगी अतः वर्षा जल के वहन के लिए भी 65 मिमी. व्यास के पाइप का चयन किया गया। क्षेत्र की वर्षा के विश्लेषण से वर्षा की तीव्रता 2.61 मिमी. /घंटा आंकलित की गयी जिससे लगभग 173 लीटर जल का निष्कासन सुनिश्चित करना होगा। वर्षा जल का समुचित प्रयोग करने के लिए एक 200 लीटर भंडारण क्षमता की प्लास्टिक टंकी को पुनर्भरण हैंडपंप से पूर्व भण्डारण सह निस्पादन के रूप में अभिकल्पित किया गया।

सर्वप्रथम एक 100 मिमी की बोरिंग 12 मीटर गहराई तक प्रथम जलभृत/स्ट्रेटा तक हाथ से किया गया। 40 मिमी व्यास की एक पाइप जिसका निचला सिरा 3 मीटर तक छिद्रित था उसके उपर नायलॉन जाली को अच्छी तरह से बाँधकर 100 मिमी. व्यास के बोरिंग में स्थापित कर दिया जाता है। तत्पश्चात् 40 मिमी. व्यास की प्लास्टिक पाइप से एक मीटर लम्बे 40 मिमी. व्यास के जीआई पाइप को जोड़कर ऊपरी छोर पर हैंडपंप को स्थापित कर दिया जाता है। हैंडपंप पाइप और बोरिंग के बीच के स्थान को मोरम से भर दिया जाता है ताकि पाइप के प्रभावी व्यास एवं छानने की क्षमता में वृद्धि हो जाये। इसके पश्चात् हैंडपंप को तब तक चलाया जाता है जब तक उसमें से साफ पानी न निकलने लग जाए। छत के उपयुक्त स्थान जहाँ पर वर्षा जल का अपवाह एकत्रित होता है वहाँ दो 65 मिमी. व्यास के प्लास्टिक पाइप को लगा दिया जाता है। संगृहीत वर्षा जल को वर्षा जल वहन पाइप से जोड़ दिया जाता है। उपयुक्त पाइप बैंड, रिड्यूसर सॉकिट के माध्यम से 200 लीटर क्षमता वाले भण्डारण टैंक से जोड़ दिया गया। भंडारण टैंक को स्थायित्व प्रदान करने के लिए प्लास्टिक टैंक की तली से 10 सेंमी. ऊंचाई पर पुनः एक निकास नाली जोड़ दी गयी जो वर्षा जल को टैंक से हैंड पंप तक ले जाती है। इस प्रकार वर्षा जल संग्रहण और भूजल पुनर्भरण संरचना का समेकन हो जाता है।

पुनर्भरण हैण्डपंप पंपिंग परीक्षण

उन्नाव जनपद के असोहा खण्ड स्थित ग्राम सिरसाहखेड़ा में मध्यम जलस्तर की दशा में एक हैंडपंप स्थापित किया गया और एक दूसरा हैंडपंप नवाबगंज खण्ड के मार्क्सनगर गाँव के उथले जल स्तर की दशा में स्थापित किया गया। मध्यम एवं उथले जल स्तर वाली दशाओं में हैंडपंप का परीक्षण किया गया और पाया गया कि मध्यम जल स्तर की दशा में फ्लोराइड सांद्रता पंप किये गए जल में समय के साथ बढ़ती है और उथले जल स्तर की दशा में समय के साथ घटती है। पम्प परीक्षण के समय मध्यम जल स्तर की दशा में फ्लोराइड सांद्रता क्रमशः 3.14 से 3.30 पीपीएम रहा। मध्यम जल स्तर की दशाओं में पुनर्भरण के बिना फ्लोराइड सांद्रता जुलाई 2015 से मार्च 2016 के दौरान 2.20 पीपीएम से अधिक पाया गया। उच्चतम फ्लोराइड सांद्रता मार्च 2016 (शुष्क मौसम) और न्यूनतम अक्टूबर 2015 (वर्षा के पश्चात्) पायी गयी।

अगस्त 2016 में सिरसाहखेड़ा गाँव में एक छत जल संग्रहण संरचना स्थापित की गयी। भूजल पुनर्भरण वर्षा ऋतु 2016 से प्रारंभ हुआ। वर्षा ऋतु के दौरान पुनर्भरण जल का कुल आयतन 28500 लीटर रहा जिससे 310 लीटर प्रतिदिन की पुनर्भरण औसत दर प्राप्त हुई। वर्ष 2017 में मात्र 122 दिन वर्षा से 23636 लीटर के कुल पुनर्भरण जल आयतन के परिणामस्वरूप 194 लीटर/दिन की औसत पुनर्भरण दर प्राप्त हुई। पम्पिंग परीक्षण पुनर्भरण के पहले एवं पुनर्भरण के बाद किया गया। भूजल पुनर्भरण के बाद फ्लोराइड सांद्रता में अभूतपूर्व गिरावट आई जिसके कारण भूजल मनुष्यों के लिए पीने लायक बन सका।

भवन छत से संग्रहीत वर्षा जल का भंडारण एवं उपयोग

भवन छत से संग्रहीत जल का सीधा प्रयोग पीने के लिए किया जा सकता है। भवन छत से संग्रहीत वर्षा जल को पुनर्भरण के माध्यम से भूजल में डालना और आवश्यकतानुसार पंप करके निकालने में जल के पुनः प्रदूषित होने का भय बना रहता है। भूजल भूमि में प्राकृतिक रूप से एक दिशा में प्रवाहित होता रहता है अथवा पंपिंग किये जा रहे क्षेत्र की तरफ स्वतः चला जाता है अतः पुनर्भरित जल की पूरी मात्रा पंपिंग से प्राप्त नहीं हो सकेगी। ऐसी अवस्थाओं में भवन छत से संग्रहीत वर्षा जल को सीमेंट कंक्रीट से बने भण्डारण टैंक अथवा प्लास्टिक टैंक में संचयित कर लेते हैं। कंक्रीट एवं प्लास्टिक के टैंकों के आकार

का निर्धारण परिवार के सदस्यों की संख्या एवं भण्डारण अवधि के अनुरूप कर लेना चाहिए। औसतन प्रतिदिन प्रति व्यक्ति 3 से 4 लीटर पेय जल की आवश्यकता पड़ती है। यदि भण्डारण अवधि 8 महीने मानी जाये तो पांच सदस्यों वाले परिवार के लिए कुल वर्षा जल भण्डारण का आयतन 3600 से 3840 लीटर होगा।

वर्षा के जल में घुलनशील लवणों का पूर्णतः अभाव होता है। चूँकि फ्लोराइड की न्यून मात्रा दाँत एवं अस्थियों की मजबूती के लिए आवश्यक होती है अतः संग्रहीत वर्षा जल में फ्लोराइड युक्त जल की कुछ मात्रा डाल देनी चाहिए जिससे वर्षा जल में फ्लोराइड की कुछ मात्रा और घुलनशील लवण की मात्रा सहजता से उपलब्ध हो जाए। एक लीटर वर्षा जल में लगभग आधा लीटर (2 मिग्रा./लीटर) सांद्रता वाले फ्लोराइड जल को मिला देने से परिणाम जल के आयतन (1.5 ली.) में फ्लोराइड सांद्रता 0.67 मिग्रा. हो जाएगी जो अस्थियों एवं दांत के स्वास्थ्य के लिए सर्वोत्तम होगी। साथ ही वर्षा जल में घुलनशील लवण की मात्रा भी सुनिश्चित हो जाएगी।

समेकित छत जल संग्रहण एवं पुनर्भरण

संग्रहीत वर्षा जल भण्डारण हेतु सीमेंट कंक्रीट टैंक

चित्र 2. छत जल संगहण संरचना का पुनर्भरण हैंड पंप से समेकीकरण

समाप्त

एकता से हमारा अस्तित्व कायम रहता है,
विभाजन से हमारा पतन होता है।

ललन के॰ सिन्हा एवं नीरजा ललन
सोयाबीन प्रसंस्करण एवं उपयोग उत्कृष्टता केन्द्र
भाकृअनुप–केन्द्रीय कृषि अभियांत्रिकी संस्थान, भोपाल–462038 (मध्य प्रदेश)
E-mail: lksinhaicar@gmail.com

रोजगार एवं पोषण हेतु सोया दूध पर आधारित डेयरी खाद्य उत्पादों के लिए उद्यम

हमारे देश की लगभग 70 प्रतिशत आबादी ग्रामीण क्षेत्रों में रहती है तथा अपनी आजीविका के लिए पारंपरिक रुप से कृषि पर ही निर्भर है। किसानों के लिए खाद्य एवं पोषण सुरक्षा को बनाए रखने हेतु पर्याप्त मात्रा में आय अर्जित करना बहुत ही मुश्किल हो गया है। एक प्रभावशाली आर्थिक विकास के बावजूद, कुपोषण भारत में एक अभिशाप है और अभी भी ग्रामीणों के पास आर्थिक और उद्यमिता विकास की दुर्दशा को दूर करने के लिए कोई उपयुक्त उपाय नहीं है। यकीनन छोटे कृषि खाद्य उद्यमों के लिए उद्यमिता विकास आधुनिक खेती व ग्रामीण अर्थव्यवस्था को फिर से जीवंत करने के लिए सार्वजनिक नीति का सबसे महत्वपूर्ण पहलू होता जा रहा है। ग्रामीण क्षेत्रों में उद्यमों की स्थापना के कई लाभ है तथा आय सृजन के लिए निश्चित रूप से एक बहुमूल्य अवसर प्रदान करता है। इन दिनों कम कीमत पर उपलब्ध सोया दूध पर आधारित पौष्टिक खाद्य पदार्थों की मांग दिनोंदिन बढ़ती जा रही है, इन पर आधारित कुटीर स्तरीय या छोटे पैमाने पर खाद्य उद्यमों की स्थापना से कम पूंजी लगाकर स्वरोजगार और आय सृजन के अवसर प्राप्त होंगे और किसानों की आय दोगुनी करने के लिए एक महत्वपूर्ण कदम होगा। साथ ही पौष्टिक सोया खाद्य पदार्थ भी आसानी से इन क्षेत्रों में उपलब्ध होंगे।

चित्र 1. कुटीर स्तरीय सोया दूग्ध व पनीर बनाने की मशीन

हम जानते हैं कि सोयाबीन अच्छी गुणवत्ता वाले वनस्पति प्रोटीन, वसा और सूक्ष्म पोषक की श्रेणी का एक समृद्ध एवं उत्कृष्ट स्रोत है। यह भारत में एक महत्वपूर्ण खाद्य फसल है। इसे "गोल्डन बीन" के रूप में भी जाना जाता है क्योंकि इसमें 40 प्रतिशत अच्छी गुणवत्ता वाला प्रोटीन, 20 प्रतिशत वसा तथा भरपूर मात्रा में खनिज और विटामिन के साथ बहु–असंतृप्त वसीय अम्ल होते हैं। इसके अतिरिक्त, यह उच्च मात्रा में स्वास्थ्य को बढ़ावा देने वाले फाइटोकेमिकल प्रदान करता है और इसमें अच्छी गुणवत्ता वाले आहार रेशे भी होते हैं, जो मानव शरीर को मधुमेह से लड़ने में सक्षम बनाता है। सोयाबीन को कई मूल्यवर्धित खाद्य उत्पादों में परिवर्तित किया जा सकता है जैसे सोया आटा, सोया नट्स, सोया फोर्टिफाइड बिस्किट, एक्सट्रूडेड स्नैक्स, सोयामिल्क, सोया पनीर, सोया दही, सोया फोर्टीफाइड पारंपरिक खाद्य पदार्थ, सोया तेल आदि। कम कीमत पर उपलब्ध पौष्टिक एवं उत्कृष्ट कार्यात्मक गुणों वाले सोया खाद्य पदार्थों के आर्थिक और स्वास्थ्य लाभों के बारे में जागरूकता के प्रयासों की वजह से सोया दुग्ध पर आधारित डेयरी खाद्य उत्पादों के लिए उद्यम लगाने में तेजी आयी है। यदि सोयाबीन को सही प्रसंस्करण कर दैनिक जीवन के उपयोग हेतु कुटीर स्तरीय उद्यमों को लगाया जाए तो इससे न केवल उस क्षेत्र का पोषण स्तर सुधरेगा बल्कि लोगों को उत्पाद के व्यवसायीकरण के साथ आजीविका भी मिलेगी। छोटे कृषि खाद्य उद्यमों के लिए उद्यमिता विकास यकीनन आधुनिक खेती व ग्रामीण अर्थव्यवस्था को फिर से जीवंत करने के लिए सार्वजनिक नीति का सबसे महत्वपूर्ण पहलू होता जा रहा है। ऐसे उद्योग की स्थापना उस उत्पादन क्षेत्र की आम जनता का पोषण सुरक्षा स्तर सुधारकर जीविकोपार्जन का सुनहरा अवसर प्रदान करेगा।

सोया दूध पर आधारित डेयरी खाद्य उत्पादों के लिए प्रसंस्करण तकनीकी

पोषण एवं अन्य सभी दृष्टिकोणों से लैक्टोज रहित सोया दूध बिलकुल गाय के दूध के समान है। अतः सोया दूध डेयरी या गाय के दूध का एक पौष्टिक विकल्प है। यह पशुओं से प्राप्त दूध में मौजूद कोलेस्ट्रोल एवं लैक्टोज से मुक्त है। लैक्टोज की

अनुपस्थिति की वजह से यह लैक्टोज असहिष्णु लोगों के लिए अति उपयुक्त है। ठीक से संसाधित सोया दूध और इसके यौगिक कई न्यूट्रास्यूटिकल और स्वास्थ्य लाभ प्रदान करते हैं। एक किलोग्राम सोयाबीन से लगभग 8 लीटर दूध मिलता है। डेयरी दूध की तरह सोया दूध का उपयोग लगभग सभी डेयरी एनालोग्स में किया जा सकता है। सोया दूध पर आधारित डेयरी एनालोग्स या इसके प्रसंस्कृत यौगिक जैसे सुगंधित सोया दूध, टोफू, दही, श्रीखंड, आम्रखंड, आइसक्रीम और अन्य दूसरे यौगिक हैं।

कुटीर स्तर पर सोया दूध उत्पादन की प्रसंस्करण तकनीकी

सोया दूध उत्पादन की प्रक्रिया में प्रयोग में आने वाली मशीन को चित्र 1 में दिखाया गया है। सोया दूध एवं टोफू (सोया पनीर) उत्पादन के लिए प्रयुक्त संयंत्र में एक भाप (स्टीम) जनरेटर, एक चक्की (ग्राइंडर) सह कुकर, एक सोया दूध एक्सट्रेक्टर और एक पनीर प्रेस होता है। ये सभी घटक स्टेनलेस स्टील से बने हैं। विभिन्न निर्माता के आधार पर इस संयंत्र की कीमत 3 से 3. 5 लाख रुपये के बीच होती है। इस संयत्र की खास बात यह है कि यह भिगोए हुए सोयाबीन को ऑक्सीजन मुक्त वातावरण में एक साथ पीसता और पकाता है जिसकी वजह से निर्मित उत्पादों में बीन का स्वाद कम से कम होता है और एक बेहतर गुणवत्ता का सोया दूध और पनीर प्राप्त होता है। अलग से पीसने और पकाने की प्रक्रिया की तुलना में समय भी काफी कम हो जाता है। यह संयंत्र 40 मिनिट के बैच में 2.5 कि॰ग्रा॰ सोयाबीन को संसाधित कर करीब 40 लीटर सोया दूध और 4 से 4.4 कि॰ग्रा॰ सोया पनीर प्रदान करता है।

सोया दूध उत्पादन में मूलतः चार चरण होते हैं। उत्पादन की प्रक्रिया के प्रथम चरण में सोयाबीन को 4 घंटे के लिए पानी में भिगोते हैं तथा पीसने से पहले इसे धोते हैं। चक्की सह कुकर भाप जनरेटर की भाप लाइन से जुड़ा होता है। भाप को चक्की सह कुकर के पीसने वाले कक्ष में प्रवाहित किया जाता है ताकि इसके अन्दर की हवा को बाहर निकाला जा सके और ऑक्सीजन रहित वातावरण बन सके। भिगोया हुआ सोयाबीन चक्की सह कुकर में शीर्ष के हॉपर से कुछ गर्म पानी के साथ डाला जाता है और पिसाई शुरू की जाती है। पीसने के दौरान लगभग छह से आठ लीटर पानी भी डाला जाता है और फिर हॉपर के इनलेट को बंद कर दिया जाता है। जब हवा निकास वाल्व से अन्दर से द्रव्य आने को होता है तो इसे भी बन्द कर देते हैं। 20 मिनिट के लिए पिसाई की जाती है और चक्की में तापमान को पीसने के अंत में 3 मिनिट के लिए 120 डिग्री सेल्सियस पर बनाए रखा जाता है। भाप से उत्पन्न तापमान लाइपोक्सीजिनेज़ और ट्रिप्सिन अवरोधकों को निष्क्रिय कर देता है। पिसाई के बाद सोया घोल को बाल्टी में निकाल लिया जाता है। एक विशेष रूप से डिज़ाइन किए गए छिद्रित बेलनाकार कंटेनर और मलमल के कपडे के माध्यम से फ़िल्टर में हल्के दबाव में छाना जाता है। इस तरह छानकर सोया दूध तैयार कर लिया जाता है और फाइबर को इससे अलग कर लिया जाता है।

सुगंधित सोया दूधः अगर प्रसंस्कृत सुगंधित सोया दूध बनाना हो तो अर्क (सुगंध) तथा अन्य धटक को सही अनुपात में मिलाने के बाद इसे बोतल में पैक कर कीटाणुमक्त कर भंडारण करते हैं। सुगंधित सोया दूध बनाने के लिए इसे वांछित फूड अर्क (सुगंध) जैसे इलायची, वनीला, चॉकलेट एवं फलों (आम, स्ट्राबेरी, सेब, लीची) से मिलने वाले अर्क के साथ मिलाकर पेय के रूप में इस्तेमाल किया जा सकता है। प्रसंस्कृत एवं ठंडा सुगंधित सोया दूध पेय के रूप में अत्यधिक स्वीकार्य है।

सोयाबीन

भीगा हुआ सोया दाल

टोफू

टोफू (सोया पनीर)

ओरिएंट में टोफू के रूप में लोकप्रिय सोया पनीर एक जापानी उत्पाद है, जो जमा कर बनाया जाता है। कैल्शियम या मैग्नीशियम लवण के साथ सोयाबीन दूध को जमाकर (कोग्युलेट) तैयार किया जाता है और आमतौर पर इसे एक शाकाहारी खाद्य सामग्री के रूप में उपयोग किया जाता है। यह एक सफेद, नरम, जिलेटिनस द्रव्य है, जिसमें सामान्य रूप से 78 प्रतिशत नमी होती है।

सोया दूध से टोफू (सोया पनीर) बनाने की प्रक्रिया बहुत सरल है। फ़िल्टर्ड सोया दूध जब लगभग 70 डिग्री सेल्सियस गर्म होता है तो उसे फाडने के लिए उसमें 2 प्रतिशत कैल्शियम सल्फेट या मैग्नीशियम क्लोराइड या सिट्रिक अम्ल डाला जाता है। मिश्रण को 2 या 3 बार थोड़ा हिलाकर उसे छोड़ दिया जाता है। करीब आधे घण्टे में ही सोया दूध फट जाता है। मैग्नीशियम क्लोराइड से बनने वाला सोया पनीर मुलायम और कैल्शियम सल्फेट से बनने वाला थोड़ा सख्त होता है। इसकी बजाय सिट्रिक अम्ल एक अनुशंसनीय रसायन है जो बाजार में आसानी से उपलब्ध हो जाता है। मट्ठा (वे) हटाने और मनचाहा आकार देने के लिए फटे हुये दूध को साँचे में मलमल के कपड़े में डालकर धीरे–धीरे छाना जाता है। इस प्रक्रिया को आसान करने के लिये कपड़े को सोया पनीर दबाने वाली मशीन में रख फटा दूध छानने से भी पानी अलग हो जाता है। इस मशीन मे सोया पनीर को लगभग 30 से 45 मिनट तक दबाये रखते हैं जिससे वह एक निश्चित आकार ग्रहण कर लेता है। इस तरह सोया पनीर तैयार हो जाता है। इस पनीर को मशीन से निकालकर तुरन्त ही बर्फ वाले ठण्डे पानी में डाल कर ठण्डा करना चाहिये। सोया पनीर फ्रिज में 2 से 3 दिन तक सुरक्षित रह सकता है। प्रतिदिन पानी बदल कर इसे फ्रिज में एक सप्ताह तक भी रखा जा सकता है। सामान्यतया एक कि॰ग्रा॰ सोयाबीन से लगभग 1.5 से 2 किलो सोया पनीर मिलता है। सोया पनीर (टोफू) और डेयरी मिल्क पनीर की शेल्फ लाइफ और भोजन का उपयोग लगभग एक समान ही है। सोया पनीर का उपयोग दूध पनीर की भांति ही प्रतिदिन के खाद्य पदार्थों में मिलाकर या अलग से किया जा सकता है। इसको सब्जी, पुलाव, पकोड़े आदि में मिलाकर भुर्जी व पराठा बनाया जा सकता है या सिर्फ तल कर भी उपयोग में लाया जा सकता है। सोया पनीर को घिस कर (कद्दू कस कर) सब्जी में मिलाने पर स्वादिष्ट व्यंजन एवं परांठा बनाया जा सकता है। यह दूध पनीर की तुलना में एक तिहाई मूल्य पर उपलब्ध है। इस प्रकार यह दूध पनीर का उत्तम विकल्प है।

सोया दही :सोया दूध का उपयोग करके सोया दही तैयार किया जाता है, जो उपभोक्ताओं द्वारा अधिक पसंद किया जाता है। सोया दूध से दही को उसी प्रक्रिया का पालन करके तैयार किया जा सकता है जैसा कि डेयरी दूध से दही के लिए किया जाता है। सोया दूध को 35–37 डिग्री सेल्सियस तक गर्म करें और सोया दही बनाने के लिए स्टार्टर कल्चर (दही) मिलाएं। अच्छी गुणवत्ता वाला सोया दही 4–6 घंटे में तैयार किया जा सकता है और इसे भोजन में इस्तेमाल किया जा सकता है। सोया दही में प्रोटीन, कैल्शियम, मैग्नीशियम और प्रचुर मात्रा में विटामिन पाये जाते हैं जो सभी के लिये बहुत उपयोगी हैं। दही खाने को पचाने में मदद करता है तथा हड्डियों और दातों को मजबूती देता है। सोया दही से अन्य उत्पाद भी तैयार किये जा सकते हैं।

सोया श्रीखंड व सोया आम्रखंड : श्रीखंड सोया दही से तैयार एक ताज़ा उत्पाद है जिसमें हल्का सा खट्टा स्वाद शामिल है। श्रीखंड तैयार करना मुख्य रूप से दो चरणों में शामिल है। दही बनाना और श्रीखंड तैयार करना। डेयरी वाले दूध से यथासंभव पानी निकालकर चक्का (जलरहित दही) का निर्माण करते हैं जो श्रीखंड के लिए कच्चे माल के रूप में इस्तेमाल किया जाता है। सोया श्रीखंड के निर्माण के लिए सोया दही बनाने हेतु सोया दूध और भैंस के दूध को समान मात्रा में उपयोग किया जाता है। सोया आम्रखंड बनाने के लिए इस चक्का में आम पल्प मिलाया जाता है।

सोया आइसक्रीमः सोया दूध आधारित आइसक्रीम, डेयरी आइसक्रीम के लिए प्रयुक्त की जाने वानी सामग्री व प्रक्रिया का पालन करके तैयार की जा सकती है। सोया आइसक्रीम की एक सर्विंग में 180–200 कैलोरी, 3–5 ग्राम प्रोटीन, 7–8 ग्राम वसा और 0.5–0.7 ग्राम खनिज की आपूर्ति होती है।

सोया लस्सीः लस्सी एक अत्यंत स्फूर्ति एवं ताजगीदायक पारंपरिक दक्षिण एशियाई पेय है जो खासतौर पर उत्तर एवं पश्चिमी भारत तथा पाकिस्तान में काफी लोकप्रिय है। इसे दही को मथ कर एवं पानी मिलाकर बनाया जाता है तथा इसमें ऐच्छिक रूप से तरह–तरह के मसाले एवं चीनी या नमक डालकर तैयार किया जाता है। पारंपरिक लस्सी में लोग भुना हुआ जीरा भी स्वाद के लिए मिलाते हैं। लस्सी भारत में अलग–अलग जगह भिन्न तरीके से बनाई जाती है। इसका ज्यादातर सेवन उत्तर भारत में पंजाब, राजस्थान, उत्तर प्रदेश और दिल्ली में किया जाता है। जहाँ एक ओर उत्तर भारत और पंजाब में दही की मीठी लस्सी बनाई जाती है और अक्सर लस्सी तैयार करने के बाद ऊपर से मलाई की एक परत डाली जाती है वहीं

गुजरात और दक्षिण भारत में नमक और मिन्ट या जीरा डाल कर लस्सी बनाई जाती है। लस्सी ताजगी देने वाला तरल व ठंडा पेय है, जो अधिकतर गर्मी के दिनों में पिया जाता है। वैसे दही की लस्सी हमेशा उपयोगी है और इसे हर मौसम में बनाकर पिया जा सकता है। सोया दही से भी पारंपरिक तरीके से बहुत ही आसानी से लस्सी बनायी जा सकती है। दही और शक्कर को अच्छी तरह मिलाकर उसमें आइस क्यूब डालते हैं और 1 मिनिट तक दोबारा अच्छी तरह मिलाते हैं। यदि मिश्रण ज्यादा गाढ़ा हो तो उसमें थोडा दूध डालकर उसके गाढ़ेपन को कम करते हैं। लस्सी बनाते समय सावधानी बरतनी चाहिए कि दही को फेंटकर मुलायम बनाने के लिये हाथ की मिक्सी या मिक्सर का उपयोग करें तथा उपयोग किया जाने वाला दही हमेशा ताजा, गाढ़ा और ठंडा हो, साथ ही यदि दही के गाढ़ेपन को कम करने के लिए दूध या थोडा पानी डालना हो तो वह भी ठंडा हो। लस्सी को और ज्यादा स्वादिष्ट बनाने के लिये आप फ्रेश क्रीम और एक चुटकी केसर का उपयोग भी कर सकते हैं। इसके बाद, इसे गिलास में डालकर इसमें बर्फ के टुकड़े डालने के बाद उपर से हल्की सी मलाई डालते हैं और इस तरह लाज़वाब ठंडी–ठंडी लस्सी बनकर तैयार हो जाती है।

सोया छाद या मट्ठाः छाछ या मट्ठा भारत में एक लोकप्रिय हल्का तरल व ठंडा पेय है जो दही में आवश्यकतानुसार काला नमक, भुना जीरा पाउडर और काली मिर्च पाउडर डालकर पानी के साथ मथकर बनाया जाता है। यह ज्यादातर गर्मी के दिनों में बनाते हैं क्योंकि दही शरीर में ठंडक देता है जिसकी गर्मियों में बहुत जरुरत होती है। दही या दूध की अपेक्षा छाछ में कम वसा होती है। छाछ से स्वास्थ्य लाभ के अनेक फायदे हैं। यह विटामिन और खनिज से समृद्ध होने के साथ ही अच्छे पाचन में बहुत महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। पेट को ठंडक प्रदान करने के लिए मट्ठा बहुत उपयोगी माना जाता है। छाछ का सेवन करने से गर्मी शांत होती है। सोया दही से भी आसानी से छाछ बनाया जा सकता है। पुराने दिनों में लोग दही और पानी को मथनी से मथकर एकदम झागवाली सादी छाछ बनाते थे और बाद में स्वाद के लिए मसाला डालते थे। इसमें तकरीबन 5–7 मिनिट लग जाते हैं और आपके हाथों की अच्छी कसरत भी हो जाती है। आजकल लोग हैंड ब्लेंडर या स्टिक ब्लेंडर का इस्तेमाल करते हैं, जिससे यह कुछ सेकंड में तैयार हो जाती है। मसाला छाछ बनाने के लिए धनिया पत्ते, पुदीने के पत्ते, दरदरी कुटी काली मिर्च, बीज हटाई हुई एवं बारीक कटी हरी मिर्च, भुना जीरा पाउडर, काला नमक और थोड़ा सा दही मिक्सर जार में डालकर पत्तों को पीस लेते हैं। धनिया, पुदीना के बारीक होने पर इसमें बचा हुआ दही डालकर पुनः इसको फैंट लेते हैं। इसके बाद, इसमें बर्फ के टुकड़े डालकर बर्फ पिघलने तक ब्लेन्ड कर सर्व करने के लिए इसे गिलास में डालकर पुदीने के पत्ते के साथ थोड़ा सा भुना जीरा पाउडर बुरककर गार्निश कर देते हैं और इस तरह लाज़वाब ठंडी–ठंडी मसाला छाछ बनकर तैयार हो जाती है।

निष्कर्ष

समाज के आर्थिक रूप से कमजोर समूह के बीच में कम लागत पर अच्छे पोषण की वजह से सोया दूध एवं दूध आधारित विभिन्न खाद्य उत्पाद काफी प्रचलित हो रहे हैं। जनता के बीच स्वास्थ्य के प्रति जागरूकता, कम लागत एवं कुटीर पैमाने पर स्वरोजगार और आय सृजन का अवसर प्रदान करने के कारण इन खाद्य पदार्थों की अच्छी स्वीकृति व मांग है। एक किलोग्राम सोयाबीन से लगभग 8 लीटर कोलेस्ट्राल तथा लैक्टोज मुक्त सोया दुध या 1.5 से 2 किलोग्राम सोया पनीर (टोफू) प्राप्त किया जा सकता है। यह दूध गाय के दूध के बराबर होता है और इस पर आधारित पौष्टिक और सस्ती कीमत पर उत्पादित व्यंजन जैसे दही श्रीखंड, आम्रखंड, सोया लस्सी एवं मठ्ठा बनाने के लिए सोयाबीन को कच्चे माल के रूप में बेचा जा सकता है। इनके कुटीर स्तरीय या छोटे पैमाने पर खाद्य उद्यमों की स्थापना से ग्रामीण क्षेत्रों में कम पूंजी लगाकर स्वरोजगार और आय सृजन के अवसर प्राप्त होंगे, साथ ही पौष्टिक सोया खाद्य पदार्थ भी आसानी से इन क्षेत्रों में उपलब्ध होंगे। ये उद्यम न केवल बेरोजगारों को आजीविका के अवसर प्रदान करता है बल्कि उस उद्यमी के अलावा दूसरों को भी आय सृजन के अवसर प्राप्त होंगे और किसानों की आय दोगुनी करने के लिए एक महत्वपूर्ण कदम होगा।

समाप्त

आप किसी दूसरे व्यक्ति को धोखा देते हैं
तो आप खुद को भी धोखा दे रहे होते हैं।

नरेन्द्र सिंह
बांदा कृषि एवं प्रौद्योगिक विश्वविद्यालय, बांदा–210001 (उत्तर प्रदेश)
E-mail: narendra.buat@gmail.com

बुन्देलखण्ड के असिंचित कृषि परिस्थितिकी तंत्र में टिकाऊ उत्पादकता हेतु जैविक कृषि प्रणाली

देश में जनसंख्या वृद्धि के अनुरूप खाद्यान्नों की उपलब्धता सुनिश्चित करने हेतु अनेक उपाय किये जा रहे हैं। कृषि में रासायनिक उर्वरकों, कीटनाशकों का प्रयोग अनियंत्रित तरीके से बढ़ता जा रहा है, फिर भी उत्पादन की अनिश्चितता बनी हुई है। जिसका मूल कारण उत्पादन परिस्थितियों का टिकाऊ न होना है। वहीं दूसरी ओर सतत् फसल उत्पादन हेतु देशी और परंपरागत खादों को अनुपयोगी मानकर अनदेखा किया जा रहा है।

फसलों के अधिकतम उत्पादन हेतु उपलब्ध कृषि संसाधनों के दोहन के परिणामस्वरूप कृषि परिस्थितिकी तंत्र में असंतुलन पैदा होने के कारण प्रतिकूल परिणाम शुरू हो गये हैं। भूमि की उर्वराशक्ति क्षीण होने के साथ भूमिगत जल व पर्यावरण प्रदूषित हो रहा है, साथ ही मनुष्यों व जानवरों के स्वास्थ्य पर भी विपरीत प्रभाव पड़ रहा है। आधुनिक कृषि तकनीकियों (उर्वरक, रसायन व यंत्र) का जो लाभ उत्पादकता वृद्धि के रूप में प्राप्त हो रहा है वह मात्र सिंचित परिस्थितियों तक ही सीमित है। असिंचित दशाओं में इनका लाभ नहीं मिल पा रहा है। यह भी देखा गया है कि असिंचित मृदाओं में उर्वरकों, रसायनों व भारी कृषि यंत्रों का अधिक उपयोग करने पर नकारात्मक परिणाम प्राप्त हो रहे हैं। इन सभी समस्याओं से बचने व टिकाऊ फसल उत्पादन हेतु जैविक खेती का विकल्प एक लाभदायक कृषि प्रणाली है विशेषकर असिंचित कृषि की दशा में प्रभावी परिणाम देखे गये हैं।

वर्तमान जैविक कृषि परिदृश्य

वर्तमान में जैविक खेती का प्रचलन लगातार बढ़ रहा है और भविष्य में गुणवत्तायुक्त उत्पाद आवश्यक भी हो जायेगा। भारत में जैविक खेती परंपरागत ढंग से प्राचीन समय से ही हो रही है किन्तु वैज्ञानिक तरीके से जैविक खेती पिछले 10–12 वर्षों से तेजी से अपनाई जा रही है। वर्तमान में लगभग 12 लाख हैक्टर क्षेत्रफल जैविक खेती के अन्तर्गत है। देश में अनेक मान्यता प्राप्त जैविक खेती प्रमाणीकरण संस्थाएं कार्य कर रही है जिनकी मान्यता अमेरिका, यूरोप आदि के अधिकांश देशों में है। इंटरनेशनल फेडरेशन ऑफ एग्रीकल्चर मूवमेन्ट, स्विटजरलैंड के आंकड़ों के अनुसार लगभग 3.2 करोड़ हैक्टर क्षेत्र में जैविक खेती की जा रही है जिससे विश्व के लगभग 12 लाख किसान जुड़े हैं। 2008 में जैविक उत्पादों का बाजार 50 अरब डालर से बढकर अब 100 अरब डालर पार कर चुका है।

बुन्देलखण्ड असिंचित कृषि परिस्थितिकी तंत्र

देश के अनेक भूभागों में सिंचाई सुविधाओं का अभाव है जहाँ वर्षा आधारित कृषि हो रही है। ऐसे भाग राजस्थान, मध्य प्रदेश, उत्तर प्रदेश, महाराष्ट्र, आंध्र प्रदेश व तेलंगाना राज्य के काफी बड़े क्षेत्र में है। उत्तर प्रदेश के दक्षिणी में स्थित बुन्देलखण्ड, जो मध्य प्रदेश की सीमा पर स्थित है ऐसा भूभाग है जहाँ सिंचाई सुविधाएं नगण्य है। कृषि उत्पादकता अत्यन्त कम है किन्तु पशुधन की बहुलता है। मिट्टी में जैविक कार्बन की कमी है। उपलब्ध प्राकृतिक संसाधनों का प्रयोग जैविक कृषि की दृष्टि से किये जाने की अपार संभावनाएं है क्योंकि बुन्देलखण्ड क्षेत्र में अभी भी रसायनों का प्रयोग काफी सीमित मात्रा में हो रहा है। साथ ही पशुधन से प्राप्त गोबर व मूत्र का सार्थक उपयोग नहीं हो रहा जिसको यदि आधुनिक तरीकों से उन्नत खाद व जैविक घोल बनाकर कृषि में उपयोग किया जाये तो कम लागत में उच्च गुणवत्तायुक्त जैविक खाद प्राप्त हो सकता है।

जैविक खेती : जैविक खेती कृषि उत्पादन की वह पद्धति है जिसमें प्राकृतिक संतुलन को ध्यान में रखकर मृदा, जल एवं वायु को प्रदूषित किये बिना दीर्घकालीन टिकाऊ उत्पादन प्राप्त किया जाता है। जैविक कृषि हेतु मुख्यरूप से मृदा एवं पोषण प्रबंधन तथा कीट व व्याधि रोग प्रबंधन हेतु जैविक कारकों का उपयोग किया जाता है। इसमें मृदा को जीवित माध्यम माना जाता है जिसमें फसलों हेतु लाभदायक सूक्ष्मजीवों जैसे राइजोबियम, एजोटोबैक्टर, एजोस्पाइरिलम, माइकोराइजा आदि के साथ अन्य जीव जैसे – केंचुआ जो कि स्वस्थ मृदा में उपस्थित होते हैं, की क्रियाओं को बढ़ाने व उनके अधिकतम उपयोग

हेतु कार्बनिक व प्राकृतिक खादों का प्रयोग किया जाता है। जैविक खेती को प्राकृतिक खेती, कार्बनिक खेती या रसायनमुक्त खेती आदि नामों से भी जाना जाता है। इस पद्धति में मृदा उर्वरता बढ़ाने व फसल पोषण हेतु कार्बनिक पदार्थों जैसे गोबर खाद, कम्पोस्ट, केंचुआ खाद, हरी खाद, प्रवाहित मल, फसल अवशेष आदि का प्रयोग किया जाता है। कीट रोग आदि व्याधियों के नियंत्रण हेतु जैविक गौमूत्र या नीम आधारित घोल का भी प्रयोग किया जाता है।

जैविक खेती में पोषण प्रबंधन

बुन्देलखण्ड के कृषि परिस्थितिकी तंत्र में अनेक फसल अवशेष एवं प्रक्षेत्र अपशिष्ट जैसे धान का पुवाल, गेहूँ का भूसा, अखाद्य खलियां, जंगली पत्तियां एवं अवशेष के साथ–साथ बड़ी मात्रा में पशु खाद व मूत्र उपलब्ध है। साथ ही दलहनी फसलें काफी क्षेत्रफल में उगाई जाती है जो कि जैविक फसल चक्र की महत्वपूर्ण कड़ी है। बड़ी मात्रा में नीम व महुआ वृक्ष की खली का उपयोग किया जा सकता है। मृदा उर्वरता वृद्धि में हरी खाद का महत्वपूर्ण स्थान है। हरी खाद से लगभग 50–200 कि॰ग्रा॰ नत्रजन 40–60 दिन में मिल जाता है। हरी खाद के प्रयोग से नत्रजन के अतिरिक्त पोषक तत्वों की उपलब्धता में वृद्धि, मृदा संरक्षण में सुधार, जलधारण क्षमता में वृद्धि तथा खरपतवार नियंत्रण आदि लाभ भी होते हैं जिनसे उत्पादन लागत में कमी आती है व उत्पादकता बढ़ती है। बुन्देलखण्ड में उपलब्ध हरी खाद फसलों के पोषक तत्वों का विवरण तालिका 1 में दिया गया है ।

फसलों की उत्पादकता के आधार पर बुन्देलखण्ड की प्रमुख फसलों से प्राप्त होने वाले पोषक तत्व तालिका 2 के अनुसार हैं।

बुन्देलखण्ड में पशुधन की बहुलता है किन्तु दुध उत्पादन बहुत कम है। यदि यहाँ उपलब्ध पशुधन का व्यवस्थित तरीकों से पालन किया जाये व उनके गोबर–मूत्र का उपयोग उच्च गुणवत्ता वाली खाद के रूप में किया जाये तो जैविक कृषि हेतु पर्याप्त मृदा पोषण का प्रबन्ध हो सकता है। इस भौगोलिक क्षेत्र में उपलब्ध पशुओं से तालिका 3 के अनुसार पोषक तत्व प्राप्त किये जा सकते हैं।

वर्तमान में बुन्देलखण्ड में जैविक खाद का 95 प्रतिशत देशी खाद के रूप में प्रयोग किया जाता है जिसकी गुणवत्ता बहुत कम रहती है शेष 5 प्रतिशत में केंचुआ खाद, बायोगैस व हरी खाद है। यदि देशी खाद को नादेप या केंचुआ खाद के रूप में प्रयोग किया जाये तो आवश्यक पोषक तत्वों की पूर्ति हो सकती है।

जैविक खेती में कीट–रोग व्याधि नियंत्रण

फसलो में कीटों के नियंत्रण हेतु वैश्विक स्तर पर चिन्हित जीवाणुओं जैसे *बैसिलस थूरिनजिएन्सिस* (बी.टी.) का प्रयोग सफल सिद्ध हो रहा है किन्तु भारतीय दृष्टिकोण से इस तकनीक को अभी व्यापक स्तर पर नहीं अपनाया जा रहा है। यह जीवाणु व्यवसायिक रूप से बायोविट एवं बायोएस्पा आदि नामों से उपलब्ध है। इसकी 2.0 कि॰ग्रा॰/हैक्टर मात्रा का उपयोग फसलों, फलों एवं सब्जी को नुकसान पहुँचाने वाली सूंडियों (कैटर पिलर) के नियंत्रण हेतु किया जाता है।

इसी प्रकार चिन्हित वायरस मुख्य रूप से एन.पी.वी. (न्यूक्लियर पोलीहैड्रोसिस वायरस) का प्रयोग सब्जियों व दलहनी फसलों में फली बेधक कीट नियंत्रण हेतु प्रयोग किया जा रहा है। इसका प्रयोग सूर्यास्त के समय करना ठीक रहता है जिससे सूर्य से निकलने वाली पराबैंगनी किरणे एन.पी.वी. को हानि न पहुँचा सके। इसके प्रयोग से कीटों की सुंडियां बीमारग्रस्त होकर मर जाती है।

तालिका 1. मुख्य हरी खाद फसलें व प्राप्त पोषक तत्वों का विवरण

फसल	हरे पदार्थ की मात्रा (टन/हैक्टर)	पोषक तत्व (प्रतिशत)		
		नत्रजन	फॉस्फोरस	पोटाश
सनई	18–20	0.75	0.12	0.51
ढैंचा	20–25	0.62	–	–
मूंग	8–10	0.72	0.18	0.53
उड़द	10–12	0.85	0.18	0.53
मटर	18–20	0.3	–	–
अरहर	20–22	0.50	0.12	0.25

तालिका 2. बुन्देलखण्ड की प्रमुख फसलें व उनसे प्राप्त पोषक तत्वों का विवरण

फसल	उपलब्ध पोषक तत्व (प्रतिशत)		
	नत्रजन	फॉस्फोरस	पोटाश
धान	0.61	0.18	1.28
गेहूँ	0.48	0.16	1.18
ज्वार	0.52	0.23	1.34
बाजरा	0.45	0.16	1.14
दलहन	1.60	0.51	1.75

तालिका 3. बुन्देलखण्ड के प्रमुख पशु व उनसे प्राप्त पोषक तत्व

पशु के अपशिष्ट पदार्थ	उपलब्ध पोषक तत्व (प्रतिशत)		
	नत्रजन	फॉस्फोरस	पोटाश
गोबर की उच्च खाद	1.84	1.23	0.61
पशु मूत्र	1.60	0.08	1.60
भेड़–बकरी का गोबर	0.27	0.06	0.45

फफूँदजनक रोगों के नियंत्रण हेतु ट्राइकोडर्मा विरिडी तथा ट्राइकोडर्मा हार्जियनम नामक मित्र फफूँदियों से निर्मित नाशकों का प्रयोग किया जाता है। इसके प्रयोग से फलों, सब्जियों व दलहनों में जड़/कालर सड़न, उकठा, आर्द्रगलन तथा मृदा व बीज से फैलने वाले फफूँद जनक रोगों का नियंत्रण किया जा सकता है।

हाल के वर्षों में नीम आधारित कीटनाशकों का उपयोग बहुत तेजी से बढ़ रहा है ये बाजार में निम्बीसिडीन, नीम एजल, रक्षक, निमक्टीन, निमारीन अचूक आदि नामों से उपलब्ध है। इनकी 3–5 लीटर प्रति हैक्टर मात्रा प्रयोग करनी चाहिए। इनके व्यापक क्षेत्रफल में प्रयोग से कीटों को नियंत्रित किया जा सकता है व इनके कोई दुष्परिणाम भी नहीं होते हैं। बुन्देलखण्ड में सफल हो चुके तरीके तालिका 4 में दिये गये हैं।

बुन्देलखण्ड में जैविक खेती की संभावनाएं

बुन्देलखण्ड क्षेत्र पूर्णरूपेण वर्षा आधारित कृषि तंत्र के अन्तर्गत है जहाँ अभी भी कृषि पिछडी दशा में है। आबादी के दृष्टिकोण से भूमि अन्य क्षेत्रों की तुलना में पर्याप्त है। भूमि में उर्वरकों व अन्य रसायनों का प्रयोग बहुत सीमित मात्रा में हो रहा है। क्षेत्र में पशु गोबर पर्याप्त है, जिसके समुचित उपयोग से फसलों का संतुलित पोषण किया जा सकता है। साथ ही रोग–कीट नियंत्रण के लिये अनेक वनस्पतियां हैं जिनके प्रभावी उपयोग से फसल सुरक्षा सुनिश्चित हो सकती है। इसके अतिरिक्त जंगलों–पहाड़ों से लगी हुई भूमियों का उपयोग भी जैविक खेती हेतु किया जा सकता है।

जैविक खेती अपनाने में मुख्य समस्याएं

सामान्य कृषक अभी भी जैविक खेती से नहीं जुड़ पा रहा है इसका प्रमुख कारण पर्याप्त ज्ञान, जागरूकता, जैविक उत्पाद की उचित मूल्य पर बिक्री व प्रशासन स्तर पर विकसित तंत्र का अभाव है। क्षेत्र में कृषकों में यह आम धारणा है कि जैविक खेती में उपज कम होती है। कृषि विज्ञान केन्द्र, चित्रकूट द्वारा विभिन्न स्तरों पर कृषकों से हुई चर्चा में चिन्हित प्रमुख समस्याएं तालिका 5 में दर्शायी गयी है।

तालिका 4. पादप सुरक्षा में प्रभावी जैविक विधियां

विधि का नाम	पादप सुरक्षा
नीम तेल का छिड़काव	कीट नियंत्रण
गौमूत्र व नीम पत्ती	पादप चूसक कीट नियंत्रण
गौमूत्र व धतूरा	विषाणु जनित रोग नियंत्रण
गौमूत्र व तम्बाकू	विषाणु जनित रोग नियंत्रण
सड़ा हुआ मट्ठा	उकठा नियंत्रण
गाय के गोबर की राख	चूसक कीट नियंत्रण
राख़ व मिट्टी का तेल	समस्त कीट नियंत्रण

तालिका 5. प्रमुख समस्याएं एवं उनका अभिमत प्रतिशत

क्र.सं.	समस्या	अभिमत प्रतिशत	रैंक
1	जैविक उत्पाद बिक्री सुविधा न होना	90	4
2	उपज का कम होना	92	2
3	सही तकनीकी जानकारी का न होना	65	8
4	जैविक पोषण व फसल सुरक्षा में कठिनाई	70	6
5	जैविक उत्पाद की कीमत, लागत व उत्पादन के अनुरूप न होना	98	1
6	बाजार में जैविक निवेश की अनुपलब्धता	68	7
7	भण्डारण, कटाई आदि में समस्या	36	10
8	मजदूरों की अधिक आवश्यकता	55	9
9	पंजीकरण व प्रशिक्षण की सुविधा न होना	91	3
10	स्थानीय स्तर पर जैविक उत्पाद उद्योग न होना	76	5

नोट : उपरोक्त अभिमत 500 कृषकों की राय पर आधारित है ।

निष्कर्ष

बुन्देलखण्ड के कृषि परिस्थितिकी तंत्र के विस्तृत अध्ययन, उपलब्ध जैविक खेती उपयोगी संसाधन व समस्याओं के आधार पर कहा जा सकता है कि यदि प्रशासन स्तर पर समुचित विपणन व्यवस्था हो तो इस क्षेत्र में जैविक खेती की अपार संभावनाएं हैं। यदि स्थानीय स्तर पर जैविक उत्पाद उद्योग स्थापित हो जाये तो अधिकाधिक किसान जैविक कृषि प्रणाली को अपना सकते हैं। इस क्षेत्र में जैविक खेती की अपार संभावनाओं का यदि समुचित दोहन किया जा सके तो राष्ट्रीय परिदृश्य में बुन्देलखण्ड क्षेत्र का महत्वपूर्ण स्थान हो सकता है।

समाप्त

धन दूसरों की भलाई में मदद करे,
तो इसका मूल्य है, अन्यथा ये बुराई का ढेर है।

जोगेंद्र सिंह[1], राजेंद्र कुमार[1], संतोष कुमार बिश्नोई[1] एवं अजित सिंह खरब[2]
[1]भाकृअनुप–भारतीय गेहूँ एवं जौ अनुसंधान संस्थान, बीज एवं अनुसंधान इकाई, हिसार (हरियाणा)
[2]भाकृअनुप–भारतीय गेहूँ एवं जौ अनुसंधान संस्थान, करनाल (हरियाणा)
E-mail: jogendra.singh2@icar.gov.in

लवण प्रभावित क्षेत्रों में जौ उत्पादन की वैज्ञानिक तकनीकियाँ

फसल उत्पादन एवं उत्पादकता विभिन्न अजैविक कारकों से प्रभावित होती है जैसे निम्न एवं उच्च तापमान, शुष्कता एवं भूमि का लवणीय एवं क्षारीय होना इत्यादि। भूमि का लवणीय एवं क्षारीय होना विश्व भर में एक गंभीर समस्या है। विश्व में लगभग 950 मिलियन हैक्टर क्षेत्र लवणग्रस्त है, अर्थात विश्व के लगभग 75 देशों की भूमि लवणों से प्रभावित है। विश्व की लगभग 20 प्रतिशत सिंचित भूमि (50 मिलियन हैक्टर से अधिक) लवण से प्रभावित है। भारत में लगभग 6.74 मिलियन हैक्टर भूमि लवणग्रस्त है जो पौधे के अंकुरण से लेकर विभिन्न अवस्थाओं को प्रभावित करते हुए अंततः उपज को प्रभावित करती है।

फसलों की उचित बढ़वार के लिए मृदा में कुछ न कुछ लवणीय तत्वों का होना आवश्यक है। किंतु यदि लवणीय तत्वों की मात्रा एक विशेष स्तर से अधिक हो जाती है तो फसलों की वृद्धि एवं उपज पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। लवणग्रस्त भूमि को सामान्यतः दो भागो में बांटा गया है:–लवणीय भूमि जिसे सेम या खारच भी कहते हैं और क्षारीय भूमि जिसे ऊसर भूमि के नाम से भी जाना जाता है।

लवणीय मृदा : लवणीय मृदा को श्वेत क्षार भी कहा जाता है क्योंकि इस मृदा की ऊपरी परत सफेद होती है, इस मृदा का पीएच मान 8.5 से कम, वैद्युत चालकता 4 से अधिक तथा विनिमयशील सोडियम प्रतिशतता 15 से कम होता है। इस मृदा में सोडियम एवं मैग्नीशियम क्लोराइड्स तथा सल्फेट्स की अधिकता होती है। जिसकी वजह से परासरणीय दबाव अधिक तथा पौषक तत्वों की उपलब्धता निम्न होती है। इस मृदा को सुधारने के लिए पर्याप्त मात्रा में पानी दिया जाता है ताकि पौधों की जड़ों के आस–पास के लवणों का निक्षालन हो जाए। इसके अतिरिक्त लवणता का असर कम करने के लिए खाद की उचित मात्रा का प्रयोग करना चाहिए।

क्षारीय मृदा : यह मृदा काली मृदा के नाम से भी जानी जाती है। क्योंकि इस मृदा में कार्बनिक पदार्थ काफी मात्रा में विद्यमान होते हैं। क्षारीय मृदा का पीएच मान 8.5 से अधिक, वैद्युत चालकता 4 से कम तथा विनिमयशील सोडियम प्रतिशतता 15 से अधिक होता है। इस मृदा की विशेषता यह है कि मृदा के कणों के मध्य स्थान कम होने की वजह से पपड़ी बन जाती है जिसके कारण पौधों के जड़ क्षेत्र में पानी के आवागमन में रूकावट होती है। क्षारीय मृदा में सोडियम कार्बोनेट्स एवं बायोकार्बोनेट्स की अधिकता होती है। जिसके कारण मृदा की भौतिक संरचना कमजोर हो जाती है तथा पानी एवं वायु के आवागमन में रूकावट होती है जिसके कारण पौधों को पौषक तत्व असंतुलित रूप से प्राप्त होते हैं। परिणामस्वरूप फसल की उत्पादकता कम हो जाती है। मृदा की पपड़ी बनने की वजह से बीज का अंकुरण प्रभावित होता है। इस मृदा का सुधार जिप्सम या सल्फर सुधारकों का प्रयोग करके किया जा सकता है।

लवणीय–क्षारीय मृदा : यह मृदा लवणीय एवं क्षारीय मृदा का मिश्रण है। इस मृदा का पीएच मान 8.5 से कम, वैद्युत चालकता 4 से अधिक तथा विनिमयशील सोडियम प्रतिशतता 15 से अधिक होता है। साधारणतया लवणीय–क्षारीय मृदा के गुण, लवणीय मृदा के समान होते हैं। इस मृदा को सुधारने के लिए लवणीय मृदा की तरह अधिक सोडियम को जड़ों से दूर करना है।

लवणग्रस्त मृदा के लिए जौ एक अच्छी लवणता फसल समझी जाती है क्योंकि यह फसल वैद्युत चालकता 8 से 13 डेसीसीमन्स प्रति मीटर तक की मृदा लवणता को सहन करने की क्षमता रखती है। जौ विश्व की मुख्य फसलों में से एक है। जौ का विश्व में गेहूँ, चावल और मक्का के बाद चौथा स्थान है। भारत में जौ 0.67 मिलियन हैक्टर क्षेत्र में उगाई जाती है, जिसका उत्पादन 1.67 मिलियन टन तथा उत्पादकता 2679 कि॰ग्रा॰/हैक्टर है। उपयोगिता के अनुसार यह फसल पशुओं के चारे के रूप में, उद्योगों में, माल्ट एवं माल्ट उत्पाद तैयार करने के लिए तथा भोज्य पदार्थ के रूप में प्रयोग होता है। इसके आलावा दवाई के रूप में कई बीमारियों को नियंत्रित करने में भी उपयोगी सिद्ध हुई है। इसके बावजूद जौ को शुष्क भूमि, लवणीय एवं क्षारीय मृदा तथा सीमान्त भूमि पर उगाया जाता है।

भारत में जौ का उत्पादन बढ़ने के बावजूद क्षेत्रफल दिन–प्रतिदिन कम होता जा रहा है। इसका मुख्य कारण बड़े पैमाने पर किसानों द्वारा गेहूँ की अर्ध–बोनी किस्में अपनाने के बाद जौ के क्षेत्र को गेहूँ द्वारा अपना लेना जिससे किसान जौ को सीमान्त एवं लवण प्रभावित मृदा में उगाने लगे। इस क्षेत्र में जौ की अच्छी पैदावार लेने के लिए किसानों को लवण सहिष्णु जौ की नवीन किस्मों को उगाना चाहिए।

जौ की लवण सहनशील किस्में

भारतीय गेहूँ एवं जौ अनुसंधान संस्थान करनाल एवं इसके सहयोगी केन्द्र अखिल भारतीय गेहूँ एवं जौ समन्वय कार्यक्रम के अंतर्गत अधिक पैदावार, रोग प्रतिरोधी एवं लवण सहिष्णु किस्मों का विकास किया गया है, जिनका उन्नत बीज किसानों को आसानी से उपलब्ध हो सकता है। जौ की विकसित किस्में इस प्रकार है :

आर.डी. 2552: यह छः पंक्ति वाली पशु आहार के लिए उपयुक्त जौ की प्रजाति है। यह राजस्थान कृषि अनुसंधान संस्थान, दुर्गापुरा द्वारा विकसित की गयी है। यह प्रजाति उत्तर–पश्चिमी मैदानी एवं उत्तर–पूर्वी मैदानी भागों के सिंचित एवं लवणीय क्षेत्रों में उगाने के लिए उपयोगी है। इस प्रजाति को केन्द्रीय प्रजाति जारी समिति ने वर्ष 1999 में जारी किया था। इस प्रजाति की औसत उपज 44 कुंटल प्रति हैक्टर तथा अधिकतम ऊपज 61 कुंटल प्रति हैक्टर है। इस प्रजाति की विशेषता है कि यह पीला रतुआ बीमारी के प्रति रोगरोधी किस्म है। आर.डी. 2552 को आर.डी. 2035 एवं डी.एल. 472 के संकरण के पश्चात् वंशावली वरण द्वारा विकसित किया गया।

आर.डी. 2794: यह किस्म राजस्थान कृषि अनुसंधान संस्थान, दुर्गापुरा द्वारा विकसित की गयी तथा 2016 में केन्द्रीय प्रजाति जारी समिति ने जारी किया था। इसके पौधों की ऊंचाई 69 सेंमी. होती है। यह किस्म पीला रतुआ बीमारी के प्रति रोगरोधी है तथा इसकी पकने की अवधि 121 दिन है। किस्म की उत्पादन क्षमता 29.9 कुंटल प्रति हैक्टर है। आर.डी. 2794 उत्तर–पश्चिमी एवं उत्तर–पूर्वी मैदानी भागों के सिंचित एवं लवणीय क्षेत्रों में उगाने के लिए उपयोगी है। यह किस्म आर.डी. 2035 एवं आर.डी.2683 के संकरण के पश्चात् वंशावली वरण द्वारा विकसित की गई है।

एन.डी.बी. 1173: यह किस्म आचार्य नरेंद्र देव कृषि एवं प्रौद्योगिक विश्वविद्यालय, फैज़ाबाद द्वारा विकसित की गयी तथा वर्ष 2004 में केन्द्रीय प्रजाति जारी समिति ने जारी किया। एन.डी.बी. 1173 छः पंक्ति की पशु आहार प्रजाति है। यह किस्म बाइटलारा 3(994–95) एवं एन.डी.बी. 127 के मध्य संकरण करके वंशावली वरण द्वारा विकसित की गई। एन.डी.बी. 1173 उत्तर–पश्चिमी एवं उत्तर–पूर्वी मैदानी भागों के लवणीय क्षेत्रों में उगाने के लिए उपयुक्त है। इसकी औसत उपज 35.2 कुंटल प्रति हैक्टर तथा अधिकतम उपज 46.2 कुंटल प्रति हैक्टर है। यह किस्म पत्ती झुलसा (लीफ ब्लाइट) के प्रति रोगरोधी है।

एन.डी.बी. 1445: एन.डी.बी. 1445 एक छः पंक्ति पशु आहार जौ की प्रजाति है जिसका विकास एन.डी.बी. 940 एवं रत्ना के मध्य संकरण करके वंशावली वरण द्वारा आचार्य नरेंद्र देव कृषि एवं प्रौद्योगिक विश्वविद्यालय, फैज़ाबाद में किया गया। यह किस्म वर्ष 2014 में राज्य विविधता जारी समिति उ.प्र. द्वारा जारी की गयी। इस प्रजाति की औसत उपज 32 कुंटल प्रति हैक्टर तथा अधिकतम उपज 38 कुंटल प्रति हैक्टर है।

डी.एल. 88: यह प्रजाति बी.जी.1 एवं मेक्स 5–13 के मध्य संकरण करके वंशावलीवरण द्वारा भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, नई दिल्ली द्वारा 1997 में विकसित की गई। यह किस्म उत्तर–पश्चिमी एवं उत्तर–पूर्वी मैदानी भागों के सिंचित एवं लवणीय क्षेत्रों में उगाने के लिए उपयोगी है।

जौ की फसल हेतु खेत की तैयारी

जौ की खेती कई प्रकार की भूमियों में की जा सकती है लेकिन अच्छे जल निकास वाली मध्यम गठन की दोमट मिट्टी सर्वोत्तम रहती है। जौ में अन्य फसलों की अपेक्षा लवण सहनशील क्षमता अधिक होने के कारण इसकी खेती लवणीय, कल्लर और सेम वाली भूमि में की जा सकती है। भूमि जहाँ लवणीय हो वहाँ खेत में पानी भरकर घुलनशील लवणों का पौधों के जड़ क्षेत्र से निक्षालन किया जा सकता है। यदि पानी के निकास की उचित व्यवस्था न हो सके तो प्रत्येक वर्ष ढैंचा को हरी खाद के रूप में उगाना चाहिए।

लवण प्रभावित मृदा में खेत की तैयारी पारंपरिक तरीके से ही करनी चाहिए। लेकिन जल भराव की समस्या से ग्रस्त भूमि में मेड बनाकर खेती करना लाभदायक रहता है। जौ की अच्छी उपज लेने के लिए खेत में उचित नमी की मात्रा तथा मृदा का भुरभुरा होना आवश्यक है। इसके लिए सिंचित क्षेत्रों में पहली जुताई मिट्टी पलट हल से तथा बाद की जुताई तवेदार हैरो से करनी चाहिए। आखिरी जुताई के बाद मृदा में नमी को सिंचित करने तथा भूमि को समतल बनाने के लिए दो बार पाटा (सुहागा) अवश्य लगाना चाहिए। गर्मी के मौसम में गहरी जुताई करने से कीड़े–मकोड़े नष्ट हो जाते हैं। अतः इस जुताई का अपना बहुत ही महत्त्व होता है।

बीज की मात्रा एवं बुवाई विधि

बीज की मात्रा चुनी हुई किस्म के दानों के आकार एवं उनके भार, बुवाई के समय, मृदा नमी तथा उत्पादन परिस्थितियों पर निर्भर करती है। लवण प्रभावित मृदाओं में जौ की अच्छी उपज लेने के लिए बीज की मात्रा सामान्य मृदा की अपेक्षा 25 प्रतिशत

अधिक रखनी चाहिए। ऐसा देखा गया है कि अधिकतर किसान जौ की बुवाई छिटकवां विधि से करना पसंद करते हैं। यद्यपि अच्छी उपज प्राप्त करने के लिए उचित पौधों की संख्या का होना आवश्यक है। इसलिए बुवाई सीड ड्रिल से ही करनी चाहिए। समय पर बुवाई करने पर पंक्ति से पंक्ति की दूरी 23 सेंमी. तथा बीज की गहराई 5–7 सेंमी. रखनी चाहिए। देर से बुवाई करने पर पंक्ति से पंक्ति की दूरी 18–20 सेंमी. रखनी चाहिए। जौ की फसल को बिना जुताई किये जीरो–टिल–ड्रिल मशीन से भी बोया जा सकता है। सिंचित एवं समय पर बुवाई करने पर बीज की दर 100 कि॰ग्रा॰ प्रति हैक्टर की सिफारिश की जाती है। जबकि लवणीय मृदा में बुवाई करने पर बीज की दर 120 कि॰ग्रा॰ प्रति हैक्टर रखी जाती है।

बुवाई का समय

बुवाई का समय मुख्यतया मृदा में नमी की मात्रा एवं तापमान पर निर्भर करता है। उपयुक्त नमी की उपलब्धता के आधार पर सिंचित क्षेत्रों में सामान्य बुवाई का समय उत्तर–पश्चिमी मैदानी क्षेत्रों के लिए 5–15 नवम्बर तथा उत्तर–पूर्वी मैदानी क्षेत्रों के लिए 15–25 नवम्बर निर्धारित किया गया है। जौ की देर से बुवाई के लिए दोनों क्षेत्रों में 10–16 दिसम्बर का समय उपयुक्त है। समय पर बुवाई करने से पौधों में दाना भी अच्छा बनता है तथा फसल पर कीट एवं रोगों का आक्रमण भी कम होता है।

उर्वरक प्रबंधन

उर्वरकों का प्रयोग मिट्टी परीक्षण के आधार पर ही करना चाहिए। उर्वरकों के संतुलित प्रयोग के लिए नियमित मृदा परीक्षण करवाना बहुत ही आवश्यक है। जौ की अच्छी उपज प्राप्त करने के लिए 5 टन अच्छी सड़ी हुई गोबर की खाद प्रति हैक्टर की दर से बुवाई के एक माह पहले प्रयोग करें। लवण प्रभावित क्षेत्रों में, क्षारीय भूमि सुधार हेतु मृदा परीक्षण के आधार पर ग्रीष्म ऋतु में जिप्सम का प्रयोग करना उचित रहता है। खरीफ में हरी खाद के लिए ढैंचा की बुवाई कर उचित अवस्था एवं समय पर मृदा में मिला देने की सलाह दी जाती है। पशु आहार जौ में उर्वरक (एन.पी.के.) की मात्रा 60:30:20 कि॰ग्रा॰ प्रति हैक्टर की दर से प्रयोग करना चाहिए। जबकि माल्ट जौ के लिए नाइट्रोजन, फॉस्फोरस एवं पोटाश 90:40:20 कि॰ग्रा॰ प्रति हैक्टर की दर से प्रयोग करना चाहिए। लवणीय मृदा में नाइट्रोजन की मात्रा सामान्य मृदा की अपेक्षा 20–25 प्रतिशत अतिरिक्त लाभदायक होती है। सिंचित क्षेत्रों में नाइट्रोजन की आधी मात्रा तथा फॉस्फोरस एवं पोटाश की पूरी मात्रा बुवाई के समय प्रयोग करनी चाहिए। शेष नाइट्रोजन की मात्रा को पहली सिंचाई के बाद लगाना चाहिए। यदि फसल में जस्ते की कमी हो तो 10 कि॰ग्रा॰ प्रति हैक्टर की दर से ज़िंक सल्फेट का प्रयोग करना उचित रहता है।

सिचाई प्रबंधन

जौ को कम लागत वाली फसल माना जाता है। सिंचित क्षेत्र में अच्छी उपज प्राप्त करने के लिए 2–3 सिंचाई की आवश्यकता होती है। पहली सिंचाई बुवाई के 30–35 दिन बाद जबकि दूसरी सिंचाई बुवाई के 60–65 दिन बाद (बूट लीफ स्टेज) तथा तीसरी सिंचाई बुवाई के 90–95 दिन बाद दाना भरने की अवस्था में करनी चाहिए।

खरपतवार नियंत्रण

जौ एक तेजी से बढ़ने वाली फसल है और फसल का अंकुरण अच्छा होने पर खरपतवार फसल के साथ प्रतियोगिता नहीं कर सकते। मंडुसी एवं जंगली जई से बचाव के लिए आइसोप्रोटयूरोन प्रयोग कर सकते हैं। चौड़ी पत्ती वाले खरपतवारों को नियंत्रित करने के लिए 2,4–डी या मेटसल्फ्युरोन प्रयोग में ला सकते हैं। इन खरपतवारनाशी दवाईयों का छिड़काव फसल बोने के 30–35 दिन बाद प्रथम सिंचाई के बाद करना चाहिए। पेन्डीमेथेलिन का प्रयोग फसल बोने के 72 घंटे के अंदर अर्थात बीजों के अंकुरण से पूर्व करना चाहिए।

कटाई एवं भंडारण

जौ की फसल विभिन्न क्षेत्रों में कटाई के लिए मार्च के अंत से मध्य अप्रैल तक तैयार हो जाती है क्योंकि जौ की बालियों के अधिक सूखने पर दाने छिटकने लगते हैं या बालियां ही टूटने लगती हैं। इससे फसल की उपज को काफी हानि होती है। इसलिए फसल के अधिक पकने के पहले ही हाथ से कटाई कर लेनी चाहिए। जौ के दाने आसपास के वातावरण से बहुत जल्दी नमी सोख लेते हैं, इसलिए इसे सूखे स्थान पर रखना चाहिए ताकि भण्डारण कीटों का नुकसान व दाने की गुणवत्ता के दुष्प्रभाव से बचा जा सके।

समाप्त

रणबीर सिंह, राजेन्द्र कुमार यादव, अजय सिंह एवं सोनिया रानी
भाकृअनुप–केन्द्रीय मृदा लवणता अनुसंधान संस्थान, करनाल–132001 (हरियाणा)
E-mail: ranbir.singh@icar.gov.in

धान की सीधी बिजाई तकनीक में खरपतवार नियंत्रण

सिंचित क्षेत्रों में धान की खेती रोपाई विधि से प्रचलित है, फलस्वरूप इन क्षेत्रों के भूजल स्तर में तेजी से गिरावट तथा सिंचाई जल की गुणवत्ता में ह्रास हो रहा है। कम जुताई (50 प्रतिशत जुताई) पर गेहूँ के अवशेषों के साथ शुन्य जुताई (जीरोटिल) मशीन द्वारा धान की सीधी बिजाई उत्तम पायी गयी है क्योंकि इस विधि में संसाधन उपयोग दक्षता और प्राकृतिक संसाधनों के संरक्षण में परंपरागत रोपाई विधि की तुलना में अधिक शुद्ध आय एवं आय–व्यय अनुपात प्राप्त होता है। इस तकनीक में पारंपरिक ढंग से रोपाई विधि की तुलना में औसतन 29 प्रतिशत सिंचाई के पानी की बचत होती है। खेत तैयार करने में पारंपरिक विधि की तुलना में 42 प्रतिशत बचत होती है जबकि 24 प्रतिशत मानव श्रम की बचत की जा सकती है। अतएव् क्षारीय मृदा वातावरण में पारंपरिक ढंग से रोपाई विधि की तुलना में सीधी बिजाई तकनीक में सिंचाई जल, डीजल और मानव श्रम के रूप में उल्लेखनीय बचत होती है जिसके परिणामस्वरूप उत्पादन लागत में काफी कमी और शुद्ध आय में महत्वपूर्ण वृद्धि होती है। इसी प्रकार मृदा गुणों में उल्लेखनीय सुधार होता है जैसे मृदा संगठन, मृदा कार्बनिक पदार्थ एवं मृदा संरचना में सुधार पाया गया है।

भाकृअनुप–केन्द्रीय मृदा लवणता अनुसंधान संस्थान, करनाल में विगत 10 वर्षों से धान की सीधी बिजाई पर अध्ययन चल रहा है। अध्ययन में पाया गया है कि खेत की हल्की जुताई करने से 50 प्रतिशत जुताई का खर्च बचाया जा सकता है। इस परियोजना में जून महीने के प्रथम सप्ताह में जीरो टिलेज मशीन से धान की सीधी बिजाई की गई। खेत में बचे गेहूँ के 33 प्रतिशत तक अवशेषों का प्रबंधन होने से मृदा की उर्वराशक्ति में वृद्वि देखी गई। देश में पानी की कमी वाले इलाके, जहाँ पर धान उत्पादन किया जाता है वहाँ पानी बचाने में यह विधि उपयुक्त रहेगी। धान की सीधी बिजाई से पानी की बचत के साथ 40 प्रतिशत डीजल और 27 प्रतिशत श्रमिकों की बचत होती है। धान की सीधी बिजाई तकनीक में खरपतवार नियंत्रण एक महत्वपूर्ण समस्या है इसके लिए विशेष ध्यान रखने की आवश्यकता है।

धान की सीधी बिजाई में मोथा/डीला खरपतवार का जमाव एवं बढ़वार

धान की सीधी बिजाई के बाद खेतों में खरपतवारों का जमाव शुरू हो जाता है और 40 दिनों तक खरपतवारों के नियंत्रण की आवश्यकता पड़ती है। खेतों में सबसे ज्यादा संख्या एवं बढ़ोत्तरी करने वाला खरपतवार मोथा है। इसके अलावा मकरा एवं बरटा मुख्य खरपतवार है। इन खरपतवारों का नियंत्रण वैज्ञानिक ढ़ग से करने की आवश्यकता है, ताकि धान की सीधी बिजाई करके उत्पादन व उत्पादकता को बढ़ाया जा सके।

धान की सीधी बिजाई

धान की सीधी बिजाई शुन्य जुताई से लेकर कम जुताई में गेहूँ के फसल अवशेषों को मिट्टी में मिलाकर और बिना फसल अवशेषों के, खेतों को समतल करके जीरो सीड ड्रिल मशीन या टरबो सीड ड्रिल मशीन द्वारा सुखे खेतों में बिजाई करें।

बीज की बिजाई : जीरो सीड ड्रिल मशीन या टरबो सीड ड्रिल मशीन से धान की सीधी बिजाई की जाती है।

बोने का समय : 1 से 15 जून तक बोने का समय उचित है।

बीज की मात्रा : हाइब्रिड–अराईज 6129 और पूसा 44, प्रजातियों के लिए बीज मात्रा 6 से 8 कि॰ग्रा॰ प्रति एकड एवं बासमती सीएसआर 30 के लिए 5 से 6 कि॰ग्रा॰ प्रति एकड़ बीज की आवश्यकता पड़ती है।

उर्वरकों की मात्रा : नत्रजन 60 कि॰ग्रा॰, फॉस्फोरस 24 कि॰ग्रा॰ पोटाश 24 कि॰ग्रा॰ प्रति एकड़ आवश्यक होता है। डीएपी 50 कि॰ग्रा॰ एमओपी 40 कि॰ग्रा॰ प्रति एकड़ और जिंक सल्फेट 12 कि॰ग्रा॰ प्रति एकड़ बिजाई के समय देने की सिफारिश की जाती है। बिजाई के 25–30 दिन बाद यूरिया 50 कि॰ग्रा॰ प्रति एकड, 45–50 दिन बाद 50 कि॰ग्रा॰ प्रति एकड और 60–65 दिन बाद 30 कि॰ग्रा॰ प्रति एकड़ देने की सिफारिश की जाती है। बासमती सीएसआर 30 प्रजाति के लिए नत्रजन 75 कि॰ग्रा॰ प्रति एकड़ की आवश्यकता होती है।

सूखे खेत में सीड ड्रिल से धान बिजाई

धान की सीधी बिजाई में खरपतवारों की समस्याएँ एवं नियंत्रण

बिजाई के 10 से 15 दिन बाद खरपतवारों का जमाव शुरू हो जाता है और 40 दिनों तक खरपतवारों का नियंत्रण करने की आवश्यकता पडती है। उचित समय पर खरपतवारों के नियंत्रण हेतु सही खरपतवारनाशक रसायनों का चुनाव एवं छिड़काव करें। सीधी धान बिजाई में सबसे बडी समस्या विभिन्न प्रजाति के खरपतवार हैं। खरपतवारों के जमने का समय भिन्न–भिन्न होता है। इनके नियंत्रण के लिए भिन्न–भिन्न तरह के रसायनों की आवश्यकता होती है। सीधी धान बिजाई में खरपतवारों के नियंत्रण के लिए रसायनों का प्रयोग निम्नलिखित तरीकों से करने की सिफारिश की जाती है।

खरपतवारों का उद्‌भव रोकने हेतु खरपतवारनाशक रसायनों का प्रयोग

स्टाम्प–यह एक खरपतवारनाशक रसायन है जिसको बिजाई के बाद सिंचाई करके गीली मिट्टी में ही 400 मिलीलीटर प्रति एकड़ स्टाम्प (पेंडीमेथेलीन) बिजाई के बाद सिंचाई करके, 2 दिन बाद खरपतवारों को जमने से रोकने हेतु छिड़काव करके काफी हद तक खरपतवारों पर नियंत्रण किया जा सकता हैं।

खरीफ मौसम में धान फसल के मुख्य खरपतवार

डीला (मोथा) (*साइप्रस रोटन्डस*) : (मोथा) धान बिजाई के साथ–साथ व कुछ ही दिनों बाद उगना शुरू हो जाता है । इसकी बढ़वार धान से ज्यादा होती है । कुछ ही दिनों में पूरे खेत को ढंक लेता है, फिर भी 25–30 दिनों के बाद खरपतवार नाशक रसायनों से नियंत्रण करने योग्य रहता है। साथ ही धान के पौधे खरपतवार नाशकों को सहन करने योग्य भी बन जाते हैं।

मोथा का नियंत्रण : डीला धान की फसल में आने वाला सबसे साधारण खरपतवार है। इसका नियंत्रण बहुत कठिन है क्योंकि यह बीज व वानस्पतिक जनन दोनों प्रकार से फैलता है। एक बार खरपतवार रसायन के प्रयोग के बाद ये दोबारा उग जाता है। इसलिए इसके प्रभावी नियंत्रण के लिए 2–3 बार खरपतवारनाशक रसायनों का प्रयोग करना चाहिए। ऐसे ही तीन खरपतवारनाशी रसायनों का विवरण निम्न प्रकार दिया गया है।

(अ) धान बोने के 15 दिन बाद खरपतवारनाशी रसायन सनराइज 50 ग्राम प्रति एकड के हिसाब से 7–8 टंकी में 120–150 लीटर पानी में मिलाकर छिडकाव करना चाहिए। इस रसायन के प्रयोग से डीला का फैलाव कम होता है और धान के पौधे को पोषक तत्व मिलने से धान के पौधे की अच्छी वृद्धि होती है।

(ब) डीला का फैलाव पहले छिडकाव के बाद कम हो जाता है परन्तु छिडकाव के 10–15 दिन बाद डीला फिर से पनपना शुरु कर देता है। इसके प्रसार को रोकने के लिए पहले छिडकाव से 10 दिन बाद (धान बिजाई के 25 दिन बाद) दोबारा छिडकाव करें। इसके लिए 2,4 डी अमीन लवण का 600 ग्राम प्रति एकड 120–150 लीटर पानी में मिलाकर छिडकाव करें। इसके प्रयोग से डीला का पनपना लगभग पूर्ण रुप से खत्म हो जाता है।

(स) यदि धान के खेत में डीला के कुछ पौधे बच जाते हैं तो इसके लिए वासाग्राम रसायन का प्रयोग 600 ग्राम प्रति एकड के हिसाब से 120–150 लीटर पानी में मिलाकर छिडकाव करें। इस रसायन का प्रयोग दूसरे रसायन के प्रयोग के 10 दिन बाद (धान बिजाई के 25 दिन बाद) करें। इसके प्रयोग से डीला पर पूर्ण रुप से नियंत्रण हो जाता है।

मकरा (*डेक्टाईनियम इजिप्टीयम*) : मकरा सिंचाई के बाद उगना शुरू होता है और धीरे–धीरे जमीन पर रेंगकर बढता जाता है और कुछ ही दिनों में सभी जगह पर फैल जाता है। इस प्रकार धान के पौधों की बढवार में बाधक हो जाता है। यह खरपतवार जमने के 20–25 दिनों में ही खरपतवारनाशक रसायनों से नियंत्रण में लिया जा सकता है। इसके बाद रसायनों से नियंत्रण करना कठिन होता है।

मकरा खरपतवार का नियंत्रण

मकरा पर नियंत्रण करने के लिए व्हिप सुपर रसायन की सिफारिश की जाती है। व्हिप सुपर रसायन 250 मिलीलीटर प्रति एकड़ 200 से 250 लीटर पानी में मिलाकर बिजाई के 25–30 दिन बाद खेत में छिड़काव करने की सिफारिश करते हैं। पहले प्रयोग करने से धान के पौधों को पीला करके नष्ट कर देती है।

यह खरपतवार व्हिप सुपर रसायन के छिड़काव के 4–5 दिनों बाद हल्का पीला होने लगता है और कुछ ही दिनों में प्रभावहीन होकर सूख जाता है। धान बिजाई के 40 दिन बाद मकरा पर खरपतवारनाशकों का प्रयोग प्रभावशाली नहीं रहता है क्योंकि इस अवस्था में खरपतवारनाशकों का छिड़काव खरपतवारों पर धान के पौधों की बढवार ज्यादा होने के कारण अच्छी तरह नहीं हो पाता है। तब इसे उखाड़कर खेत से बाहर फेंक देना चाहिए।

सामक (*इकाईनोक्लोआ क्रसगली*) : सामक खरपतवार, धान के पौधों से मिलता जुलता होता है। इसकी पहचान कुछ अलग होती है, जैसे पत्तियों का रंग अलग से हरा होता है। जमीन के पास इसका तना कुछ हल्का लाल होता है। यह खरपतवार धान के उगने के साथ ही उगता है।

बरटा खरपतवार

बरटा खरपतवार (*पेनीकम स्पीसीज*) : बरटा खरपतवार पर खरपतवारनाशकों का प्रभाव छोटी अवस्था, 3–4 पत्तियों तक प्रभावी होता है। नोमिनी गोल्ड या बसपा (बिसपाइरिबेक सोडियम 10 प्रतिशत) सिस्टेमिक खरपतवारनाशी रसायन 160 मिलीलीटर प्रति एकड़ 120 लीटर पानी में मिलाकर बिजाई 25 से 50 दिनों बाद तक खेत में छिड़काव करने की सिफारिश करते है। धान बिजाई के 50 दिनों बाद भी खेत में बरटा दिखाई दें तो उखाड़कर बाहर फेंक देना चाहिए।

सावधानियाँ

- धान बिजाई के 50 दिनों के बाद रासायनिक नियंत्रण करने के बाद भी खेत में डीला, मकड़ा, बरटा और सामक के पौधे दिखाई दें तो इन्हें उखाड़कर खेत से बाहर फेंक देना चाहिए।
- पावर छिडकाव पम्प में कट नोजल का प्रयोग करें।
- खरपतवारनाशक घोल में रसायन की सान्द्रता हमेशा एक जैसी होनी चाहिए।
- शांत हवा में, दिन के समय अच्छी धूप में खरपतवारनाशकों का छिडकाव करें। खरपतवारनाशकों के छिडकाव के समय मौसम का भी ध्यान रहे। छिडकाव करने के बाद धूप कम से कम तीन घंटे तक लगती रहे। वर्षा के जल से खरपतवारनाशक रसायन खरपतवारों से धुलने से रसायनों का प्रभाव नहीं के बराबर रहेगा।
- श्रमिक छिडकाव करने के बाद साबुन से अपने हाथों को साफ रखें।

निष्कर्ष

धान की सीधी बिजाई प्राकृतिक संसाधनों के संरक्षण के लिए उत्तम विधि है। इस विधि में सिंचाई पानी, डीजल, समय, जुताई खर्च और श्रमिकों की अच्छी बचत होती है। इस विधि से धान की खेती करने में खरपतवारों का सामना करना पड़ता है। मुख्य खरपतवारों में मोथा, सामक और मकरा है जिनके नियंत्रण के लिए खरपतवारनाशक रसायन उपलब्ध है। जिनका इस्तेमाल आवश्यकतानुसार समय से उचित मात्रा में करने से खरपतवारों पर सफलतापूर्वक नियंत्रण करके धान की अधिक पैदावार प्राप्त की जा सकती है।

एक बार खरपतवार नियंत्रण में लापरवाही, दस साल तक तबाही

समाप्त

दुनिया में कोई काम असंभव नहीं,
बस हौसले और मेहनत की जरूरत है।

एल॰एम॰ यादव
डा॰ राजेन्द्र प्रसाद केन्द्रीय कृषि विश्वविद्यालय, पूसा, समस्तीपुर (बिहार)
E-mail: lmyrau@gmail.com

ग्राम विकास में सब्जी उत्पादन की भूमिका

भारत एक कृषि प्रधान देश है जहाँ आज भी लगभग 70 प्रतिशत आबादी ग्रामीण अंचल में निवास करती है, और कृषि आजीविका का मुख्य स्रोत है। देश में बहुसंख्यक कृषक छोटे एवं मंझोले श्रेणी के हैं। किसी भी व्यक्ति की खुशहाली परिवार के स्वास्थ्य एवं समृद्धि पर निर्भर करती है। सब्जियाँ ''रक्षात्मक भोजन'' है जो शरीर को रोगों से लड़ने की क्षमता प्रदान करती है। बहुतायत में असाध्य बीमारियाँ पोषक तत्वों की कमी से होती है। यदि व्यक्ति या परिवार को इस बात का एहसास कराया जाये तो वह स्वयं या परिवार को संतुलित भोजन के हिसाब से सब्जी का, जो लगभग 300 ग्राम प्रतिदिन प्रति व्यक्ति है, उपयोग कर, अपने परिवार को स्वस्थ रख सकता है। स्वस्थ व्यक्ति या परिवार अपने कार्यों का संपादन बेहतर तरीके से करके, ज्यादा आमदनी अर्जित कर, सम्पन्न और खुशहाल हो सकता है। बहुत सी बीमारियों का समाधान सब्जियों का भरपूर उपयोग करके किया जा सकता है। आलू एवं शकरकंद, कार्बोहाइडेट के धनी है, जो उर्जा के बहुत बड़े स्रोत हैं, इनकी उत्पादन क्षमता बहुत अधिक होने के कारण भविष्य की जनसंख्या के लिए भोजन के मुख्य स्रोत होंगे।

सब्जियों से प्राप्त प्रमुख पोषक तत्व एवं उपयोगिता

खनिज : शरीर के समुचित विकास हेतु कम से कम 10 पोषक तत्वों की जरूरत पड़ती है। जिसमें कैल्शियम, लौहा, फॉस्फोरस, आयोडीन एवं सोडियम जैसे तत्व सब्जियों द्वारा मिलते हैं।

कैल्शियम : कैल्शियम की हड्डियों को मजबूत तथा शरीर को रोग प्रतिरोधी बनाने में विशेष भूमिका है। इसकी कमी से बच्चों में सूखा रोग, चिड़चिड़ेपन के अलावा मंदबुद्धि के शिकार हो जाते हैं। दांत खराब हो जाते हैं। कैल्शियम की कमी, सेम, बंदगोभी, गाजर, मटर तथा टमाटर के सेवन से दूर की जा सकती है।

लौहा : रक्त–अल्पता होना, लौह लाल रूधिर कणिकाओं का अनिवार्य अंग है, जो पालक, सलाद, सेम, बथुआ के सेवन से पूरा किया जा सकता है।

फॉस्फोरस : शरीर के सभी सक्रिय उत्तकों के लिए यह अनिवार्य तत्व है। उर्जा निर्मुक्त करने वाले कार्बोहाइड्रेट के ऑक्सीकरण में इसका महत्वपूर्ण योगदान है जो आलू, गाजर, टमाटर, खीरा, पालक, सलाद आदि में प्रचुर मात्रा में पाया जाता है।

विटामिन : विटामिन की स्वस्थ शरीर के लिए विशेष भूमिका होती है। विटामिन कई प्रकार के हैं जैसे :

विटामिन 'ए' : विटामिन 'ए' की समुचित मात्रा उपल्बध होने से आँखे ओजवान बनी रहती है। वृद्धि सामान्य होती है, आँतों व श्वास प्रणाली के विभिन्न अंग स्वस्थ अवस्था में रहते हैं। इसकी कमी से रतौंधी, पथरी, मुहांसे एवं त्वचा का सूखापन जैसे कई विकार उत्पन्न हो जाते हैं। विटामिन ए की कमी गाजर, पका टमाटर, चुकन्दर, शकरकंद, हरी प्याज, हरी मिर्च, एवं शलजम के सेवन से दूर की जा सकती है।

विटामिन 'बी' : विटामिन ''बी'' को थायमिन भी कहते है इसकी कमी से बेरीबेरी रोग, भूख में कमी एवं शरीर के तापमान में कमी जैसे विकार हो जाते हैं। हरी सब्जियाँ जैसे सलाद, बन्दगोभी, हरी मिर्च, गाजर एवं प्याज, सेम एवं मटर इसके प्रमुख स्रोत हैं।

विटामिन 'सी' : यह अच्छे स्वास्थ्य के लिए अनिवार्य है। इसकी कमी से गठिया, स्कर्वी रोग, दांत एवं मसूड़ों का कमजोर हो जाना जैसे विकार उत्पन्न हो जाते हैं। मेथी, पालक, आलू, शकरकंद, टमाटर, सलाद, हरी मिर्च, बन्दगोभी एवं हरी सब्जियों में विटामिन 'सी' प्रचुर मात्रा में पायी जाती है। तली सब्जियों की अपेक्षा उबली सब्जियों में विटामिन सी ज्यादा पायी जाती है।

विटामिन 'डी' : यह रिकेट–रोधी विटामिन है। हड्डियों एवं दांतों के समुचित विकास हेतु यह विटामिन आवश्यक है। हरी सब्जियाँ इसकी धनी होती है।

विटामिन 'ई' : यह जनन हेतु आवश्यक है। यह पत्तीदार सब्जियाँ जैसे बंदगोभी, सलाद एवं वनस्पति तेलों में पायी जाती है। चोकर को भी खाने में प्रयोग करना चाहिए।

विटामिन 'जी' : यह वृद्धिकारक विटामिन है। इसकी कमी से भूख एवं भार में कमी होती है और पेलाग्रा, मुँह दुखना एवं गंजापन जैसे विकार होते हैं यह स्वस्थ त्वचा के लिए भी अनिवार्य है। यह हरी पत्तियों के विकास के समय बनता है जो विटामिन 'जी' की अच्छे स्रोत हैं।

कार्बोहाइड्रेट की आपूर्ति : आलू, शकरकंद तथा बीन्स के सुखाये हुए बीज इसके प्रमुख स्रोत हैं। गुद्देदार जड़ें, कंद एवं शल्ककंद इसके प्रमुख स्रोत हैं, यह उर्जा का प्रमुख स्रोत है।

प्रोटीन : दलहन वर्गीय सब्जियाँ जैसे – मटर, बीन्स, सेम आदि प्रोटीन के प्रमुख स्रोत हैं। इसकी कमी से शरीर हष्ट–पुष्ट नहीं बन पाता है।

पोषण न्यूनता : यह विश्व की बहुतायत जनसंख्या की एक प्रमुख समस्या है, और हमारे देश में भी गंभीर समस्या है। कुपोषण के निवारण हेतु सब्जियों का समुचित प्रयोग जरूरी है। चर्मरोग, रतौंधी बच्चों में वृद्धि न होने के रूप में होता है, शकरकंद, पालक, शलजम की पत्तियाँ, गाजर, टमाटर, कुम्हड़ा, मटर एवं हरी सब्जियों को भोजन में अवश्य शामिल कर लेना चाहिए।

ग्रामीण क्षेत्रों में आमदनी का प्रमुख जरिया : धान्य फसलों की अपेक्षा सब्जियों की खेती से प्रति इकाई क्षेत्रफल से ढाई से तीन गुना तक अधिक पैदावार व आमदनी होती है, क्योंकि सभी सब्जियाँ नकदी फसलें हैं। सब्जी उत्पादन हेतु अधिक क्षेत्रफल को कृषक उपयोग कर अधिक लाभ कमा सकते हैं क्योंकि अब धीरे–धीरे शीतगृहों का निर्माण होने से तथा शिक्षा का प्रसार होने से लोगों में संतुलित आहार के हिसाब से लगभग 300 ग्राम प्रतिदिन सब्जी खाने हेतु चेतना भी बढ रही है।

रोजगार के अवसर प्रदान करने का जरिया : धान्य फसलों की अपेक्षा सब्जी की खेती में 2 से 2.5 गुणा अधिक श्रमिकों की आवश्यकता होती है। जिससे ग्रामीण अंचल में रोजगार के अवसर भी सृजित होते हैं। साथ–साथ सब्जी उत्पादन में कटाई–छंटाई, प्रसंस्करण, वर्गीकरण एवं भंडारण जैसे कार्यों को सम्पादित करने के लिए रोजगार के अवसर बढते हैं।

औद्योगिक विकास : आलू, शकरकंद, बीन्स, मशरूम, कसावा, जमीकंद, प्याज, लहसुन जैसी सब्जियों से कई तरह के उत्पाद जैसे चीप्स, लच्छा, सूती कपड़ों हेतु माड़ी, प्याज एवं लहसुन का पेस्ट, अरारोट एवं चटनी जैसी चीजों को बनाने हेतु कम्पनियों की स्थापना हो रही है, और भविष्य में भी अधिक संभावनाएं हैं। जो एक बहुत बड़ा कृषि आधारित व्यवसाय होगा तथा लोगों के लिए रोजगार का जरिया बनेगा।

भोजन के रूप में सब्जी का महत्त्व : सब्जियाँ जैसे आलू, शकरकंद, कसावा कुछ क्षेत्रों में भोजन का मुख्य स्रोत है और कंद वर्गीय सब्जियाँ भविष्य का भोजन होगी, क्योंकि इनकी उत्पादन क्षमता धान्य फसलों से कई गुना ज्यादा है और जमीन के अन्दर इनका विकास होता है, तो बदलते मौसम में इनकी संभावनाएं बेहतर हैं।

निर्यात : हमारे देश में हर मौसम में तरह–तरह की सब्जियाँ देश के किसी न किसी कोने में सालभर उगायी जाती है। क्योंकि हमारे देश में काफी बडा क्षेत्र उष्णकटिबंधीय (ट्रोपिकल), उपोष्णकटिबंधीय (सब ट्रोपिकल) एवं शीतोष्ण (टैम्परेट) क्षेत्र में आता है। इस तरह परिस्थितियों के अनुरूप सब्जी निर्यात की काफी अधिक संभावनाएं हैं। जिसमें प्याज, आलू, हल्दी, अदरक, मिर्च आदि को यूरोप एवं खाडी देशों में निर्यात किया जा रहा है, इसे और बढ़ाया जा सकता है, जिससे देश में विदेशी मुद्रा–भण्डार को बढ़ाने में मदद मिलेगी।

उत्पादन बढाने हेतु आवश्यक प्रक्रियाएं

सब्जी फसलों का उत्पादन एवं गुणवत्ता बढाने के लिए निम्नलिखित बिन्दुओं पर खेती से जुड़े लोगों को विशेष ध्यान देने की जरूरत है :

- मृदा के स्वास्थ्य को ठीक रखने के उपाय।
- सब्जियों की उन्नत किस्मों का प्रयोग करना।
- संतुलित उर्वरकों का प्रयोग करना।

- सब्जी के बीजों का बीजोपचार कर बुवाई करना।
- फसलों को कतार में लगाना।
- एक निश्चित समयावधि तक फसलों को खरपतवार मुक्त रखना।
- संतुलित पानी का प्रयोग।
- फसल सुरक्षा के समन्वित उपायों को अपनाना।
- सब्जी उत्पादन की आधुनिक तकनीक, संरक्षित खेती प्रणाली अपनाना।
- फसल तुडाई/खुदाई के बाद सुरक्षित ढंग से बिक्री हेतु बाजार भेजना। जिससे उत्पाद का कम से कम नुकसान/खराबी हो।

मृदा स्वास्थ्य के उपायों को अपनाना : प्रकृति ने पूरी वनस्पतियों को दो श्रेणी में रखा है। जैसे गहरी जड़ वाली फसलें (द्विदलीय फसलें) जो जमीन की निचली सतह से पोषक तत्वों को लेती है जैसे बोड़ा, कद्दू वर्गीय सब्जियाँ खीरा, ककड़ी, तरबूज, खरबूज, कद्दू, करेला, मूली, गाजर आदि और झकड़ा जड़ वाली फसलें जैसे प्याज, लहसुन, ऐस्पेरेगस, सूरन, अरबी, अदरक, हल्दी आदि। उक्त फसलों को मौसम अनुसार अदल–बदलकर लगाने से जमीन की दोनों, उपरी एवं निचली परतों से पोषक तत्वों का उपयोग होने से मृदा की उर्वराशक्ति संतुलित बनी रहती है।

दूसरी विधि जिसमें कृषक जमीन को पाँच हिस्सों में विभाजित कर 20 प्रतिशत में सब्जियाँ, 40 प्रतिशत में धान्य फसलें गेहूँ, मक्का, धान आदि, 10 प्रतिशत में दलहन, तथा 10 प्रतिशत में तिलहन फसलें और 20 प्रतिशत में चारा एवं जलावन हेतु फसल लगाना। इस तरह फसलों को संतुलित बनाने से किसान को चारा एवं खाने को सब्जी, अनाज एवं दलहन मिलेगी, जिससे जमीन, पशु एवं उत्पादक का भी स्वास्थ्य ठीक रहेगा।

उन्नत किस्मों का फसलोत्पादन में उपयोग करना : लगभग सभी फसलों की खेती में उन्नत किस्में अकेले 15–20 प्रतिशत तक उत्पादन बढ़ाने में योगदान देती है। प्रमुख सब्जियों की उन्नत किस्में निम्नवत हैं :

आलू : कुफरी ज्योति, कुफरी अशोका, कुफरी चन्द्रमुखी, कुफरी ललित, प्रसंस्करण हेतु : कुफरी चिपसोना–1, कुफरी चिपसोना–2 एवं राजेन्द्र आलू–3।

प्याज : एन–53, एग्रीफाउण्ड डार्क रेड, भीमा सुपर, पूसा रेड, प्रसंस्करण हेतु : पूसा सफेद एवं पूसा सफेद गोल।

लहसुन : यमुना सफेद–2, आरएयु (जी–5)।

लौकी : अर्काबहार, ढोली सफेद, पूसा मेधदूत एवं पूसा नवीन।

परवल : स्वर्णरेखा, राजेन्द्र परवल–1 एवं 2।

खीरा : पूसा संयोग, जापानी लंबा हरा एवं स्वर्ण अगेती।

मिर्च : काशी अनमोल, पूसा ज्वाला एवं काशी सुर्ख।

गाजर : पूसा चेतकी, पूसा देसी, देसी लाल एवं पूसा मेधाली।

मूली : पूसा चेतकी, पूसा हिमानी, जौनपुरी, चाइनीज पिंक एवं अर्का निशांत।

लोबिया : अर्का गरिमा, पूसा कोमल, काशी श्यामल, एवं स्वर्ण सुफला।

फ्रेंचबीन : अर्का कोमल, पूसा पार्वती, पंत अनुपमा एवं बिरसा प्रिया।

भिंडी : परभनी क्रांति, अर्का अभय, पंत भिंडी, काशी लीला एवं काशी महिमा।

टमाटर : काशी विशेश, काशी शरद, स्वर्ण कंचन, काशी अभय एवं स्वर्ण रतन।

फूलगोभी : पूसा दीपाली, अर्ली कुवांरी, पूसा कार्तिकी, पूसा हाईब्रिड–2, स्नोवाल–16 एवं पूसा स्नोवाल–2।

वृक्ष वाली सब्जियाँ

कटहल : रूद्राक्षी, चम्पा, सिंगापुरी एवं नवरेखा।

पपीता : पूसा डवार्फ, रेड लेडी, पूसा नन्हा, एवं सूर्या।

केला : कन्थाली, रोवस्टा, वतीसा, कचकेल एवं बनकेल।

सहजन : कोडिकल मुरूंगई, पाल मुरूंगई, जाफना टाइप एवं पीके एम–1।

संतुलित उर्वरकों का प्रयोग : आवश्यकतानुसार पोषक तत्वों को हम तीन श्रेणी में बाँट सकते हैं :

प्राथमिक पोषक तत्व : नत्रजन, फॉस्फोरस एवं पोटाश

द्वितीयक पोषक तत्व : कैल्शियम, मैग्नीशियम एवं गंधक

सूक्ष्म पोषक तत्व : जस्ता, तांबा, बोरोन, लौहा, मैंगनीज, मोलिब्डेनम क्लोरीन एवं निकल।

फसलों की आवश्यकतानुसार उक्त पोषक तत्वों का निर्धारण मिट्टी परीक्षण के आधार पर करना चाहिए। संतुलित पोषक तत्वों का प्रयोग मृदा स्वास्थ्य, स्वस्थ फसल एवं गुणवत्तायुक्त फसल उत्पादन हेतु आवश्यक है।

बीजोपचार : अच्छे जमाव, स्वस्थ पौध एवं प्राकृतिक स्रोतों से प्राप्त होने वाले पोषक तत्वों की भरपुर उपयोगिता हेतु, पहले फफूंदनाशी, फिर कीटनाशी तथा अन्त में जीवाणु खाद से बीज/जड़ों को उपचारित कर बोना चाहिए। इससे फसल उत्पादन में बहुत कम लागत में अधिक मुनाफा होता है।

फसलों को कतार में लगाना : प्रत्येक फसल पौध को अच्छे विकास हेतु खास क्षेत्रफल की जरूरत पड़ती है ऐसा न होने से हम फसल से समुचित लाभ नहीं ले पाते हैं। इसलिए अनुशंसित दूरी पर फसल लगायें। इससे खरपतवार नियंत्रण हेतु तथा मिट्टी चढ़ाने के लिए छोटी–छोटी मशीनों का उपयोग कर फसल उत्पादन के खर्च को कम कर सकते हैं।

निश्चित समयावधि तक फसलों को खरपतवार मुक्त रखना : सामान्यतया सब्जी फसलों को उनकी पूरी फसल अवधि के हिसाब से आधी उम्र तक खरपतवार मुक्त रखें। क्योंकि इस अवधि में पौधों के विकास की प्रक्रिया (शाखा फूटना) तीव्र होती है। खरपतवारों से पौधों के भोजन, पानी एवं प्रकाश का बंटवारा होने से फसल पौध का समुचित विकास नहीं हो पाता है। जिससे उपज कम होती है। आधी उम्र के बाद पौधा स्वयं खरपतवार को ढक लेता है। जिससे उपज का नुकसान कम होता है।

संतुलित सिंचाई : पौधे पोषक तत्वों को जमीन से लेकर भोजन बनाने एवं उसकी प्रक्रिया में जल का प्रयोग करते हैं, और बीज जमने, शाखा फूटने, फूल एवं बीज बनने तथा बीज/ फल के समुचित विकास के समय पानी की कमी फसलोत्पादन एवं गुणवत्ता को बुरी तरह प्रभावित करता है। हमारे देश में सतही सिंचाई विधि, चेक बेसिन विधि, नालीदार विधि, छिडकाव विधि एवं टपका सिंचाई विधि मुख्यतया प्रचलन में है। उक्त विधियों में से उपलब्ध एवं फसल अवस्था को ध्यान में रखकर फसल अनुसार सिंचाई हर ढंग से फायदेमंद होती है।

समेकित कीट व्याधि प्रबंधन : इसके तहत कीटव्याधि रोधी किस्मों का प्रयोग जैसे – आलू में पछेती झुलसा से बचाव हेतु कुफरी ललित, कुफरी ज्योति, कुफरी लालिमा, राजेन्द्र आलू – 1, टमाटर में सूत्रकृमि के लिए सलेक्शन 120, गोभी में तना विगलन हेतु स्नोवाल के–1, भिंडी मोजैक के लिए पंजाब पद्मिनी, अर्का अभय, परभनी क्रान्ति एंव काशी लीला, बैंगन फल बेधक हेतु – काशी तरू, पूसा शकंर–5, एवं राजेन्द्र बैंगन–2 उपयोगी किस्में है। जीवाणु आधारित कीटव्याधि नाशी, जैसे ट्राइकोडरमा, स्यूडोमोनास फ्लूरोसेन्स, नीम आधारित जीवनाशी आदि का प्रयोग करना। बुवाई पूर्व उपयुक्त रसायन जीवनाशी द्वारा बीजोपचार तथा खड़ी फसल में प्रकोप दिखाई देने पर आवश्यकतानुसार उचित रसायनों का अनुशंसित मात्रा में विवेकपूर्ण प्रयोग करना चाहिए।

संरक्षित खेती प्रणाली : इसके तहत मौसम एवं फसल शत्रु को ध्यान में रखकर दिसम्बर–जनवरी में ठंडे क्षेत्रों में भिंडी, परवल, खीरा, टमाटर आदि पॉलीहाउस में बिना मौसम में फसल ले सकते हैं। इसी तरह, ग्रीन सेडनेट, ग्लास हाउस आदि आधुनिक तरीकों को अपनाकर समय विपरीत एवं स्वस्थ सब्जी उत्पादन कर सकते हैं।

फसल कटाई/तुड़ाई एवं श्रेणीकरण तथा भंडारण एवं दूरस्थ बिक्री व्यवस्था : सामान्यतया फल तुडाई /सब्जी कटाई सुबह के समय करनी चाहिए। इससे कटाई या फल तुड़ाई उपरान्त स्वःजीवन को बढ़ाया जा सकता है। श्रेणीकरण करके उत्पादक अधिक लाभ कमा सकते हैं। सब्जी ढुलाई हेतु उचित पैकिंग मेटेरियल जैसे जालीदार बोरे, बांस की टोकरियाँ, लकड़ी की पेटियां या प्लास्टिक के कैरेट का प्रयोग उत्पाद को अपेक्षित सुरक्षा देता है। जिससे ढुलाई के दौरान उत्पाद का कम से कम नुकसान होता है। आवश्यकतानुसार वैन का प्रयोग भी उत्पाद सुरक्षा में लाभ देता है उत्पाद खराब होने से बचाया जा सकता है। बाजार में ग्लट होने से फसल उत्पाद को भी शीतगृहों में भंडारित कर आवश्यकतानुसार बिक्री कर खराब होने से बचाकर अधिक पैसा कमा सकते हैं।

उक्त तरीके अपनाकर किसान अपनी जरूरत की हर चीज अपने खेत में पैदाकर संतुलित आहार के हिसाब से अपने परिवार को सब्जी एवं अन्य चीजें खिलाकर, स्वस्थ रखकर, बहुतायत बीमारियों से बचा सकते हैं। सब्जियाँ नकदी फसलें है जो धान्य फसलों से 2 से 3 गुणा अधिक लाभ देती है। उक्त तथ्यों को चरितार्थ कर किसान सब्जी उत्पादन कर प्रधानमंत्री के ''स्वस्थ भारत एवं सम्पन्न भारत'' के सपने को हकीकत में बदल सकते हैं।

समाप्त

नकारात्मक विचारों के साथ आप
एक सकारात्मक जीवन नहीं जी सकते।

पुलकित श्रीवास्तव, यशपाल सिंह एवं रविन्द्र कुमार गुप्ता
भाकृअनुप–केन्द्रीय मृदा लवणता अनुसंधान संस्थान, क्षेत्रीय अनुसंधान केन्द्र, लखनऊ–226002 (उत्तर प्रदेश)
E-mail: srivastav.bly@gmail.com

मानसून की विभिन्न परिस्थितियों में फसल प्रबंधन की सिफारिशें

उत्तर प्रदेश में कुल बोये गये 260 लाख हैक्टर क्षेत्रफल में से लगभग 120 लाख हैक्टर में खरीफ की फसल बोयी जाती है। कुल बोये गये क्षेत्रफल का 66 प्रतिशत क्षेत्रफल सिंचित क्षेत्र के अंतर्गत आता है, जबकि लगभग 34 प्रतिशत क्षेत्रफल वर्षा पर आधारित है। उपलब्ध आँकड़ों के आधार पर देखा गया है कि उत्तर प्रदेश में औसतन 947.4 मिमी वर्षा होती है। देश के उत्तर–पूर्वी मैदानी क्षेत्रों में जहाँ औसतन 1364 मिमी वर्षा होती है, वहीं दक्षिण–पश्चिमी क्षेत्रों में औसतन मात्र 655 एवं 591 मिमी वर्षा होती है। आँकड़ों से यह भी देखा गया कि जहाँ दिन प्रतिदिन वर्षा में कमी होती जा रही है वहीं वर्षा का वितरण भी असामान्य हो रहा है। ऐसी स्थिति में फसलों की उत्पादकता पर विपरित प्रभाव पड़ रहा है। प्रति माह आँकड़ों के विश्लेषण से यह भी स्पष्ट हुआ कि सामान्य मानसून की स्थिति में प्रदेश के उत्तर–पूर्वी एवं तराई जनपदों में जून माह में ही इतनी वर्षा हो जाती है जो कम पानी चाहने वाली फसलों को उगाने के लिये पर्याप्त है। यह भी देखा गया है कि प्रत्येक 3 वर्ष में से किसी एक वर्ष औसत वर्षा की मात्रा 75 प्रतिशत या इससे भी कम होने की संभावना रहती है (कृषि विभाग, उत्तर प्रदेश 2016)। उपरोक्त परिस्थितियों एवं जलवायु विविधताओं को ध्यान में रखते हुए विभिन्न क्षेत्रों हेतु फसल प्रबंधन की निम्नलिखित सिफारिशें की जाती है।

खरीफ मौसम में मानसून की विभिन्न परिस्थितियाँ

सामान्यतया या प्रदेश में मानसून से संबंधित निम्नलिखित संभावनाएं देखी गयी हैं:

- वर्षा समय पर शुरू होती है परंतु बीच में अंतराल अधिक हो जाता है।
- वर्षा विलंब से शुरू होती है।
- वर्षा का बीच–बीच में रूक जाना जिससे सूखे की स्थिति पैदा हो जाती है।
- वर्षा समय से प्रारंभ होती है लेकिन समय से पहले ही समाप्त हो जाती है।
- कुल वर्षा सामान्य से कम होती है।
- कुल वर्षा सामान्य से अधिक होती है।
- उपरोक्त परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए फसल प्रबंधन की निम्न सिफारिशें की जाती हैं :

वर्षा समय पर शुरू होती है परंतु बीच में अंतराल अधिक हो जाता है

ऐसी स्थिति में फसलों की बुवाई/रोपाई तो समय पर हो जाती है लेकिन पहली और दूसरी वर्षा के बीच लम्बा अंतराल होने की दशा में पर्याप्त नमी न होने के कारण फसलें अपनी प्रारंभिक अवस्था में ही सूखने लगती हैं। ऐसी स्थिति में यह सिफारिश की जाती है कि जब तक पर्याप्त वर्षा न हो तब तक बुवाई/रोपाई प्रारंभ न करें। यदि बुवाई में देरी हो रही है तो कम अवधि की प्रजाति एवं सूखा सहनशील प्रजातियों का प्रयोग करें। फसल में खरपतवारों के प्रकोप को रोकने के लिए मल्च जैसे धान का पुवाल, घास–फूस इत्यादि का प्रयोग करें। जीवन रक्षक सिंचाई हेतु छोटी–छोटी क्यारियां बनायें। खेत के आस–पास छोटे तालाब बनायें और पानी का संरक्षण करके फसल की क्रांतिक वृद्धि अवस्थाओं पर सिंचाई करें। एकत्रित जल से दक्ष सिंचाई विधियों जैसे बौछारी सिंचाई, स्प्रिंकलर एवं ड्रिप प्रणाली से सिंचाई कर फसलों को बचायें। नत्रजन का 2 प्रतिशत यूरिया के रूप में पर्णीय छिड़काव करें।

वर्षा विलम्ब से शुरू होती है

कभी–कभी ऐसा देखा गया है कि मानसून दो से तीन सप्ताह तक देरी से आता है या उससे भी अधिक समय पश्चात् वर्षा शुरू होती है जिससे फसलों की बुवाई/रोपाई प्रभावित होने के साथ–साथ उत्पादकता में भी भारी कमी आ जाती है। ऐसी परिस्थितियों में धान की नर्सरी की बुवाई 15–20 दिन के अंतराल पर की जाये तथा आवश्यकता से अधिक क्षेत्रफल में नर्सरी की बिजाई की जाये ताकि विषम परिस्थितियों में निर्धारित अवस्था की पर्याप्त पौध उपलब्ध हो सके। यदि वर्षा सामान्य समय से 10–15 दिन देरी से शुरू होती है तो ऐसी स्थिति में धान की मध्यम अवधि की प्रजातियां जैसे डीआरआर 44, सीएसआर 43, नरेन्द्र 359, पीएनआर 381, पूसा 44, मालवीय धान 36 इत्यादि किस्मों का प्रयोग किया जाए। यदि वर्षा अधिक विलम्ब से प्रारंभ होती है तो उस स्थिति में धान की कम अवधि वाली प्रजातियां जैसे सीएसआर 43, सहभागी, शुष्क सम्राट, एनडीआर 97, पूसा 169, डीआरएच 775, यूएस 312 आदि किस्मों को लगाया जाए। यदि वर्षा अति विलंब अर्थात् जुलाई के अंतिम सप्ताह में शुरू होती है तो धान की रोपाई को स्थगित कर उन खेतों में कम समय में तैयार होनी वाली बाजरा एवं ज्वार की संकर प्रजातियां तथा उडद, मूंग व तिल की बुवाई प्राथमिकता के आधार पर की जाए। अति विलंब से वर्षा की स्थिति में बीज दर 20 से 25 प्रतिशत बढ़ा दी जाए। विलंब से मानसून आने की स्थिति में धान सघनीकरण प्रणाली (एसआरआई) से धान की खेती की जाए जिससे पानी एवं बीज दोनों की बचत की जा सकती है। अति विलंब से मानसून आने की दशा में अगर खरीफ फसलों की बुवाई नहीं हो पाती है तो रबी फसलों जैसे तोरिया, आलू एवं सरसों की शीघ्र बुवाई करने की सिफारिश की जाती है ताकि उपलब्ध नमी का संरक्षण हो सके। फसलों में सूखे के प्रति सहनशीलता बढ़ाने हेतु 2.5 कि॰ग्रा॰ यूरिया एवं 2.5 कि॰ग्रा॰ पोटाश प्रति एकड़ घोल का छिड़काव करने की सिफारिश की जाती है।

वर्षा का बीच–बीच में रूक जाना जिससे सूखे की स्थिति पैदा हो जाती है

कभी–कभी ऐसा भी देखा गया है कि एक बारिश के बाद दूसरी बारिश में 2–3 सप्ताह का अंतर हो जाने के कारण खड़ी फसलें सूखने लगती है और उत्पादकता में भारी कमी आ जाती है। अतः ऐसी अवस्था में खड़ी फसल को बचाने के लिये वर्षा में अधिक अंतराल होने के कारण जिन खेतों की फसलें सूख गई हों उनमें बाद में वर्षा होने पर कम समय में तैयार होने वाली फसलें जैसे उडद, मूंग, ज्वार, बाजरा तथा तिल की बुवाई की जाए। सूखा की स्थिति के कारण खेत खाली रह जाने अथवा फसलों के सूख जाने की दशा में विलंब से बोई जाने वाली फसलों एवं फसल प्रजातियों का चयन किया जाए, जैसे उडद पंत 40, पंत 31 एवं शेखर 3, मूंग की टाइप 44, पंत मूंग 01, पंत मूंग 02, सम्राट, नरेन्द्र मूंग 1, अरहर की पूसा 9 एवं बी 11, अरंडी की टाइप 3, टाइप 4 एवं काल्पी 6 प्रजातियों का चयन करें। अगस्त माह के आखिर तक फसल सूख जाने अथवा बुवाई/रोपाई न हो पाने वाले खेतों में सितंबर के प्रथम पखवाड़े में राई, सरसों, तोरिया इत्यादि की बुवाई की जाए। नमी, जल संरक्षण एवं जल प्रबंधन हेतु बौछारी, स्प्रिंकलर एवं ड्रिप सिंचाई का प्रयोग किया जाए। कम समय में तैयार होने वाली फसलों की बुवाई की जाए।

वर्षा समय से प्रारंभ होती है लेकिन समय से पहले ही समाप्त हो जाती है

ऐसी स्थिति में जहाँ वर्षा समय से शुरू तो हो जाती है लेकिन सितंबर के प्रारंभ में ही समाप्त हो जाती है। ऐसी स्थिति में खरीफ की प्रमुख फसल धान की पैदावार में अत्यधिक क्षति होती है। इस क्षति को कम करने के लिये नमी संरक्षण एवं जल प्रबंधन की क्रियायें अपनायी जाये। संग्रहित जल का समुचित उपयोग जीवन रक्षक सिंचाई हेतु किया जाये। रबी में बोई जाने वाली फसलों की तैयारी करें। दलहन, तिलहन, धान, ज्वार, मक्का, बाजरा इत्यादि कम अवधि की फसलों की बुवाई करें। रबी फसलों की बुवाई के समय नमी संरक्षण हेतु मल्च का प्रयोग करें। सिंचाई जल की हानि को कम करने के लिये नियंत्रित सिंचाई विधियों का प्रयोग करें।

कुल वर्षा सामान्य से कम होती है

प्रायः सामान्य से कम वर्षा होने का पूर्वानुमान जून माह में ही हो जाता है जिसकी सूचना किसानों को विभिन्न माध्यमों से उपलब्ध करा दी जाती है। सामान्य से कम वर्षा होने की स्थिति में खरीफ फसलों की वृद्धि एवं उपज दोनों प्रभावित होती है। ऐसी संभावना होने पर फसल विविधीकरण को ध्यान में रखकर एक से अधिक फसलों का फसल चक्र में समावेश किया जाए तथा एकल फसल की अपेक्षा मिश्रित फसलें उगाने को प्राथमिकता दी जाये। फसल चक्र में कम पानी चाहने वाली फसलों को समावेशित किया जाए। ऐसी स्थिति में कम अवधि की फसल एवं प्रजातियों का चयन किया जाए। जल संरक्षण के उपाय अपनाए जाए तथा संचित जल का सिंचाई में उपयोग करें।

कुल वर्षा सामान्य से अधिक होती है

कभी–कभी सामान्य से अधिक वर्षा होने पर बहुत से क्षेत्रों में जलभराव की समस्या उत्पन्न हो जाती है। ऐसी स्थिति में दलहनी, तिलहनी, मक्का एवं ज्वार की फसलों को अत्यधिक क्षति होती है। जलभराव की स्थिति में जलनिकास नालियों की सफाई करके जल निकास की उचित व्यवस्था की जाए। जलभराव वाले क्षेत्रों में अन्य फसलों की अपेक्षा धान एवं गन्ना की खेती को प्राथमिकता के आधार पर लगाया जाए। धान की जलभराव सहन करने वाली किस्में जैसे महसूरी, जल लहरी, स्वर्णा शब 1, जलमग्न एवं गन्ने की यूपी 9530, को.से.–96436 प्रजातियों का प्रयोग करें। एक मीटर से अधिक गहरे पानी वाले क्षेत्रों में जल निधि एवं जलमग्न किस्मों का प्रयोग करें। धान की अगेती रोपाई करें। संभव हो तो वर्षा से पूर्व धान की सीधी बुवाई करें तथा जलभराव से पूर्व पोषक तत्वों की आवश्यक मात्रा का प्रयोग करें ताकि जलभराव के समय फसल की पैदावार अच्छी रहे। बाढ़ग्रस्त क्षेत्रों में अधिक समय तक पानी ठहरने की दशा में फसल नष्ट हो जाने पर अधिक अवधि वाली पौध की रोपाई दोबारा करें। जल मग्नता की स्थिति में जल का स्तर कम होने के तुरंत बाद फसलों में यूरिया की टॉप ड्रेसिंग करें। बाढ़ प्रभावित क्षेत्रों में अक्टूबर माह में बोई जाने वाली गन्ने की फसल को प्राथमिकता दी जाए जिससे बाढ़ का समय आते–आते फसल का पर्याप्त विकास हो चुका हो। बाढ़ ग्रस्त क्षेत्रों में गन्ने की बुवाई मेंड़ों पर करने की सिफारिश की जाती है।

समाप्त

झूठ को अच्छे लहजे की जरूरत है,
सच तो हर लहजे में कड़वा ही होता है।

रविन्द्र कुमार गुप्ता, यशपाल सिंह एवं पुलकित श्रीवास्तव
भाकृअनुप. केन्द्रीय मृदा लवणता अनुसंधान संस्थान, क्षेत्रीय अनुसंधान केन्द्र, लखनऊ–226002 (उत्तर प्रदेश)
E-mail: ravi_biochem05@rediffmail.com

बदलते परिवेश में सस्यविज्ञान की नवतकनीकों द्वारा किसानों की आय वृद्धि

भारत में कृषि की खाद्य एवं पोषण सुरक्षा, सतत् विकास तथा गरीबी के स्तर को सुधारने में एक महत्वपूर्ण भूमिका है। भारत की लगभग आधी जनसंख्या कृषि एवं कृषि व्यवसाय पर निर्भर है तथा इसमें रोजगार की अपार संभावनाएं हैं। भारत की लगभग 54.6 प्रतिशत जनसंख्या की आय के स्त्रोत के साथ–साथ कृषि भारतीय अर्थव्यवस्था का आधार भी है। वर्ष 2017–18 में देश का खाद्यान्न उत्पादन 1951 की तुलना में 5.5 गुना अधिक, लगभग 283.83 मीट्रिक टन हुआ, जबकि बागवानी, मछली, दूध तथा अंडे का उत्पादन क्रमशः 9.5, 12.5, 7.8 तथा 39 गुना अधिक हुआ है। जनसंख्या वृद्धि को ध्यान में रखते हुए खाद्यान्न उत्पादन की वृद्धि दर को नियमित बनाए रखने की आवश्यकता है। सब्जी मसाले, दलहन, दूध, चाय, काजू तथा जूट उत्पादन में भारत प्रथम स्थान पर है, जबकि गेहूँ, चावल, फल, तिलहन, कपास, सब्जी तथा गन्ना उत्पादन में द्वितीय स्थान पर है। किसानों के कठिन परिश्रम के साथ–साथ अच्छी सरकारी योजनाएं तथा सस्यविज्ञान की उन्नत तकनीकों का उपयोग कर अच्छा उत्पादन प्राप्त किया जा सकता है और देश को खाद्यान्न के मामले में आत्मनिर्भर बनाने के साथ–साथ निर्यातक भी बनाया जा सकता है। देश में लगभग 86 प्रतिशत किसान छोटे एवं गरीब हैं, 55 प्रतिशत खेती में जलभराव की स्थिति होती है, तथा 5–25 प्रतिशत खाद्यान्न, वितरण के समय नष्ट हो जाता है। सिंचाई की पूरी क्षमता के दोहन के बावजूद भी 45–50 प्रतिशत खेती वर्षा पर निर्भर करती है।

भारतवर्ष में कृषि की वर्तमान स्थिति

भारतवर्ष में कृषि बहुत सारी समस्याओं के कारण पिछड़ रही है जिसमें महत्वपूर्ण रूप से प्राकृतिक स्त्रोतों का क्षय होना, प्रति व्यक्ति कृषि भूमि का दिन प्रतिदिन कम होते जाना, मिट्टी में विभिन्न पोषक तत्वों की कमी होना है। इसके अतिरिक्त मिट्टी का स्वास्थ्य अच्छा न होने के कारण भी फसल के उत्पादन में कमी आ रही है। जल स्तर में निरंतर गिरावट एवं सिंचाई के संसाधनों का उचित प्रबंध न होने के कारण भी फसल के उत्पादन पर ऋणात्मक प्रभाव पड़ रहा है। मौसम में बदलाव किसानों के लिए अत्यधिक चुनौतीपूर्ण है। औसत तापमान में वृद्धि हुई है तथा मौसम की प्रकृति में अनेक प्रकार के परिवर्तन हो रहे हैं जैसे बाढ़, सूखा तथा कम समय में अधिक वर्षा इत्यादि जिनके दुष्परिणाम किसानों के समक्ष विभिन्न रूपों में आ रहे हैं, जैसे ठंड के मौसम की अवधि का कम होना, कीटों की गतिशीलता में बदलाव, गर्मी का बढ़ना तथा फसल क्षेत्रों में बदलाव इत्यादि। भारतवर्ष के औसत तापमान में वर्ष 1901–2009 के बीच लगभग 0.56° सेल्सियस की वृद्धि पायी गई है जिसका प्रतिकूल प्रभाव हो रहा है।

देश में लगातार जनसंख्या वृद्धि के कारण कृषि योग्य भूमि, जंगल तथा पानी के विभिन्न स्त्रोतों में कमी आ रही है। जिसके कारण भी फसल उत्पादन में कमी आई है। जनगणना 2011 के अनुसार भारत की 481.9 मिलियन कार्यशील जनसंख्या में से लगभग 54.6 प्रतिशत जनसंख्या कृषि कार्यों पर आधारित है। यह देखा गया है कि जो लोग खेती करते हैं उनकी आय की तुलना में उन लोगों की आय बहुत तीव्र गति से बढ़ती है जो अन्य व्यवसाय अपनाये हुए हैं। कृषि पर आधारित परिवारों की आय के मुख्य स्त्रोत फसल उत्पादन, पालतू जानवर तथा दैनिक मजदूरी एवं अन्य व्यवसाय हैं। भारत सरकार के वर्ष 2017, के आंकड़ों के अनुसार वर्ष 2015–16 में कृषक परिवारों की औसत वार्षिक आय रुपये 96703/- थी। जिसे भारत सरकार ने वर्ष 2022 तक दोगुना करने का लक्ष्य रखा है। कृषि कार्यों की लागत में लगातार वृद्धि, फसल उत्पादन में असुरक्षा, आय में कमी आदि के कारण कृषक परिवारों की आवश्यकताएं पूरी नहीं हो पाती है।

इन सभी बातों को ध्यान में रखते हुए यह अत्यंत आवश्यक है कि उन्नत तकनीकों को और अधिक प्रभावशाली बनाया जाये, जिससे किसानों की लागत–व्यय में कमी आये तथा उपज में वृद्धि, फसल सुरक्षा के साथ–साथ आय में बढ़ोत्तरी हो सके। किसानों की आय को दोगुना करने की योजना यदि सफल होती है तो देश की लगभग आधी जनसंख्या पर इसका सकारात्मक प्रभाव पड़ेगा।

किसानों की आय दोगुना करने में सस्यविज्ञान की भूमिका

कृषि को बढ़ावा देने एवं किसानों की आय को बढ़ाने के लिए उन्नत तकनीकों को शीघ्रता से किसानों तक पहुंचाने की आवश्यकता है। निम्नांकित अनुसंधान तकनीकों को अपनाकर किसान अपनी आय बढ़ा सकते हैं:

- वर्षा के अतिरिक्त जल का संचयन एवं प्रबंधन करना।
- स्थूल के स्थान पर सूक्ष्म सिंचाई प्रणालियाँ अपनाकर।
- धान–गेहूँ फसल चक्र के स्थान पर फसल विविधीकरण अपनाकर।
- पोषक तत्वों, पानी, खरपतवार, कीट आदि का एक साथ समुचित प्रबंधन द्वारा।
- खुले रूप में खेती करने के स्थान पर संरक्षित खेती को अपनाकर।
- कम आय देने वाली फसलों के स्थान पर अधिक आय देने वाली फसलों का चयन करें।
- फसल चक्र में अधिक से अधिक विभिन्नता जैसे – फसलों की प्रजाति, बीज, कीटनाशकों में बदलाव तथा फसल कटाई उपरान्त भी उनकी गुणवत्ता को ध्यान में रखकर उनकी पैकिंग आदि द्वारा अधिक आय प्राप्त की जा सकती है।
- फसलों में अधिक लागत वाली उत्पादक सामग्री के स्थान पर कम लागत वाली उत्पादक सामग्री का प्रयोग अपनाकर।
- फसल अवशेषों को जलाने के स्थान पर उन्हें खाद के रूप में प्रयोग करना।
- संसाधनों का अधिक दोहन करने वाली तकनीक के स्थान पर संसाधन संरक्षण तकनीकें अपनाकर।
- कच्चे उत्पाद की सीधे बिक्री नहीं करके उसे संसाधित एवं मूल्यवर्धक बनाकर बिक्री करने से अधिक आय प्राप्त की जा सकती है।

धान–गेहूँ फसल चक्र के स्थान पर फसल विविधीकरण

- किसानों द्वारा अलग–अलग बिक्री करने के स्थान पर समूह बनाकर अपने उत्पादों की बिक्री करने से अधिक आय प्राप्त की जा सकती है।

किसानों की कृषि वैज्ञानिकों से अपेक्षाएं हैं कि वे सभी उन्नत तकनीकों एवं कार्यशैली को किसानों तक पहुंचाकर उनकी आय को दोगुना करने में सहायता करें। किसानों की आय को दोगुना करने के लिए निम्नलिखित बिंदुओं पर विशेष रूप से ध्यान देने की आवश्यकता है :

- फसल की लागत को कम से कम करके उत्पादन बढ़ाना।
- फसल कटाई उपरान्त प्रबंधन करना।
- सरकार की विभिन्न योजनाओं को किसानों तक पहुंचाना।

इनके अतिरिक्त किसान खेती के साथ–साथ अन्य छोटे व्यवसाय जैसे बकरी पालन, मुर्गी पालन, मत्स्य पालन, मधुमक्खी पालन, सूअर पालन, वर्मीकम्पोस्ट एवं मशरूम उत्पादन इत्यादि को भी अपनाएं जो आसानी से एवं कम जगह पर किये जा सकते हैं जिससे किसानों की आय में वृद्धि हो सकती है। सरकार द्वारा इन सभी व्यवसायों के लिए सस्ती दरों पर ऋण भी उपलब्ध कराया जाता है। किसान की आय बढ़ने से न केवल किसान समृद्ध होगा बल्कि देश भी समृद्ध होगा। समृद्ध देश के लिये किसानों का समृद्ध होना अति आवश्यक है। किसान और विज्ञान मिलकर ही देश को समृद्ध बना सकते हैं।

स्थूल के स्थान पर सूक्ष्म सिंचाई प्रणाली

समाप्त

सुशील कुमार एवं वी॰के॰ दुआ
भाकृअनुप–केन्द्रीय आलू अनुसंधान संस्थान, शिमला–171001 (हिमाचल प्रदेश)
E-mail: sushilkumar.solan@gmail.com

लवणग्रस्त भूमि में आलू की खेती की संभावनाएं

चावल व गेहूँ के पश्चात् आलू तीसरी महत्वपूर्ण फसल है जिसकी खाद्य सुरक्षा की दृष्टि से अहम भूमिका है। देश के आर्थिक विकास में कृषि का अग्रणी स्थान है जिसमें आलू का महत्वपूर्ण योगदान है। बढती जनसंख्या वृद्धि एवं खेती योग्य भूमि में हो रही कमी, कृषि के सतत् उत्पादन के लिए बड़ा खतरा है। इस समस्या के समाधान हेतु किसी फसल विशेष के अन्तर्गत परंपरागत क्षेत्र को बढ़ाना एक कारगर उपाय है। उचित भूमि प्रबंधन द्वारा अनुपयुक्त भूमि को उपयुक्त बनाकर खेती योग्य बनाया जा सकता है। भारत के शुष्क एवं अर्धशुष्क क्षेत्रों में सिंचाई जल अथवा मृदा में लवणों की अधिकता तथा अधिक तापमान के फलस्वरूप वाष्पोत्सर्जन दर बढ़ने तथा उचित जलनिकास न होने के कारण मृदा लवणता बढ़ जाती है। मृदा लवणता, फसल की बढ़वार एवं उत्पादकता को सीमित करने के लिए सबसे हानिकारक पर्यावरणीय कारकों में से एक है। अधिकांश पौधे मिट्टी में लवणों की उच्च सांद्रता के कारण लवणता के प्रति संवेदनशील होते हैं। आलू का पौधा भी मृदा लवणता के प्रति बहुत संवेदनशील है। इसलिए खाद्य सुरक्षा हेतु आलू के महत्व को देखते हुए अधिक उत्पादन प्राप्त करने के लिए लवणीय भूमि को सुधार कर आलू उत्पादन के लिए उपयुक्त बनाकर प्रयोग करना बहुत अनिवार्य है। इस प्रकार की भूमि में अधिक लवणता, खराब मृदा संरचना तथा पौधे में प्रतिकूल परासरण दाब के कारण वृद्धि एवं विकास पर प्रतिकूल असर डालते हैं। इस प्रकार की लवणग्रस्त भूमि को नई तकनीकों द्वारा सुधारकर आलू की खेती के उपयुक्त बनाकर कृषि उत्पादकता को बढ़ाया जा सकता है।

जलमग्न एवं लवणीय भूमि सुधार

मृदा लवणता का प्रभाव पौधे की वृद्धि, उत्पादकता और गुणवत्ता पर पड़ता है। शुष्क एवं अर्धशुष्क क्षेत्र जो कुल धरती का लगभग 40 प्रतिशत भाग है, में यह एक ज्वलंत समस्या है। इसके कारण फसल उत्पादन के लिए प्रतिकूल पर्यावरण एवं जलीय परिस्थितियां उत्पन्न होती है जिसके फलस्वरूप बहुत कम फसलें ही ऐसे वातावरण में अच्छी आर्थिक पैदावार दे सकती है। लवणता के कारण पौधे की भौतिक बनावट के अलावा शारीरिक क्रियात्मक व जैव रसायनिक क्रियाओं पर भी प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है।

विभिन्न तत्वों के क्लोराइड एवं सल्फेट के विषाक्त प्रभाव तथा लवणों की अधिकता के कारण मृदा घोल की वैद्युत चालकता बढ़ जाती है जिससे परासरण दाब असंतुलन तथा आवश्यक पोषक तत्वों की कमी का पौधे की वृद्धि व विकास पर नकारात्मक प्रभाव पड़ता है। आलू की फसल उगाने के लिए उचित जलनिकास व कार्बनिक पदार्थ की अच्छी मात्रा वाली रेतीली दोमट मिट्टी उत्तम मानी जाती है। वैसे तो आलू वृहत पीएच मान (5 से 8) के अन्तर्गत उगाया जाता है लेकिन अम्लीय पीएच मान (5 से 6.5) वाली मृदा आलू के लिए अच्छी मानी गई है। इस प्रकार आलू उगाने के लिए मिटटी की स्थिति व आवश्यकता को देखते हुए लवणीय मृदाओं को उपयुक्त बनाने के लिए निम्न मृदा सुधार एवं तकनीकी रणनीतियों को अपनाना चाहिए।

जलनिकास : मृदा लवणता की समस्या वाली भूमि में जल स्तर ऊपर होता है और जलमग्नता की गंभीर समस्या होती है। इसलिए इस समस्या से निपटने के लिए सतही व उपसतही जलनिकास तकनीक को अपनाना चाहिए। अच्छी सिंचाई व भूमि की जलनिकासी के लिए 0.05 से 0.2 प्रतिशत की ढाल उचित है। वर्षा के मीठे जल को खेत में संरक्षित करने के लिए अच्छी मेड बनानी चाहिए ताकि लवणीय भूमि में उपस्थित लवणों का निक्षालन हो सके अथवा सतही जलनिकास द्वारा खेत से बाहर निकाला जा सके।

निक्षालन : खेत को समतल करके पानी भरकर निक्षालन विधि द्वारा लवणीय भूमि को ठीक किया जा सकता है। खेत में पानी भरने पर लवण घुल जाते हैं। इस प्रकार इन लवणों को निक्षालन द्वारा जमीन की निचली सतह में निकाल दिया जाता है जिससे ऊपरी सतह पर लवणों की मात्रा कम हो जाने पर मृदा की वैद्युत चालकता कम हो जाती है और भूमि फसल उगाने के लिए उपयुक्त हो जाती है। लवणग्रस्त भूमि पर खेती करने से पहले ऊपरी मृदा सतह में लवण को स्वीकार्य स्तर तक कम करना संभव है। मध्यम संरचना वाली मृदा में ऊपरी सतह पर पानी भर कर लवणों का नीचे की सतहों में निक्षालन कर दिया जाता है। निक्षालन के लिए आवश्यक पानी की मात्रा, लवण की मात्रा, मृदा संरचना, जड़ क्षेत्र में लवणों की वांछित मात्रा, पानी की गुणवत्ता तथा निक्षालन की गहराई पर निर्भर करती है। साधारणतया, हल्की संरचना वाली मृदा के लिए 30–36 सेंमी. पानी, मृदा की 60 सेंमी. गहराई तक पाए जाने वाले 80 प्रतिशत लवणों को निक्षालित करने के लिए पर्याप्त है।

लवणग्रस्त मृदा में आलू की उन्नत खेती के लिए सस्य क्रियाएं एवं प्रबंधन रणनीतियां

(क) उच्च बीज दरः लवणग्रस्त मृदाओं में पौधे की छोटी अवस्थाओं में मृत्यु दर का अधिक होना एक सामान्य बात है। इस समस्या के निवारण हेतु, साधारण मृदा के लिए अनुशंसित दर से 25 प्रतिशत उच्च बीज दर व पौधों के बीच की दूरी को कम करके अच्छी फसल को सुनिश्चित किया जा सकता है।

(ख) आलू बीज लगाने का तरीकाः कन्द रोपण तरीके द्वारा अनुकूल लवण वितरण प्रबंधन किया जा सकता है। लवणग्रस्त भूमि में उठे हुए बैड पर कन्द लगाकर अधिक उपज प्राप्त की जा सकती है। इसके अतिरिक्त उठी हुई बैड प्रणाली के साथ–साथ मल्चिंग करने पर मृदा लवणता को काफी हद तक कम किया जा सकता है। समतल खेत की अपेक्षा उठे हुए बैड प्रणाली में लवणता कम होती है।

(ग) पोषक तत्व प्रबंधनः लवणग्रस्त मृदा में पोषण तथा आलू की उत्तम पैदावार प्राप्त करने हेतु निम्न सिफारिशें की जाती हैं:

- लवणीय मृदाओं में फॉस्फोरिक खाद के प्रयोग के सकारात्मक परिणाम प्राप्त होते हैं। फॉस्फोरस की उपलब्धता के कारण क्लोराइड जैसे विषाक्त तत्वों का उद्ग्रहण कम हो जाता है।
- इन मृदाओं में साधारणतया पोटैशियम की मात्रा मध्यम से अधिक होती है लेकिन मृदा सुधार के समय निक्षालन क्रिया में पोटैशियम की कुछ मात्रा निकल जाती है। अतः मृदा परीक्षण मूल्य के आधार पर पोटाश प्रदान करनी चाहिए।
- साधारणतया इन मृदाओं में सूक्ष्मपोषक तत्व (लौहा, मैंगनीज, तांबा व जिंक) की कमी नहीं होती है, अतः इनका प्रयोग मृदा परीक्षण मूल्य के आधार पर करना उचित है।

(घ) सिंचाई जल प्रबंधनः लवणग्रस्त भूमि में सिंचाई जल प्रबंधन हेतु निम्न सिफारिशें की जाती हैं :

- टपक सिंचाई विधि द्वारा सिंचाई करने पर पौधे की जड़ों के पास उपस्थित लवणों को जड़ों से दूर करके इस समस्या से काफी हद तक छुटकारा पाया जा सकता है।
- लवणीय मृदा में उपस्थित लवणों की अधिक मात्रा के कारण पौधे में होने वाली परासरण दबाव समस्या का उचित सिंचाई द्वारा समाधान किया जा सकता है। लवणीय समस्या के निदान के लिए जल की कम मात्रा एवं लगातार सिंचाई की संस्तुति की जाती है। वैज्ञानिक रूप से अपनाई गई सतही सिंचाई प्रणाली काफी प्रभावी पाई गई है।
- कन्द रोपण से पहले गहरी सिंचाई करने से उपसतह पर जमा लवण निक्षालित हो जाने पर अंकुरण व वृद्धि पर अनुकूल असर पड़ता है। यह सिंचाई अच्छी गुणवत्ता वाले पानी से करनी चाहिए।
- जिन क्षेत्रों में भूजल स्तर उथला होता है वहाँ फसल की सिंचाई के लिए कम जल की मात्रा प्रयोग करनी चाहिए ताकि शेष जल की आवश्यकता को भूजल से पूरा किया जा सके।
- यदि सिंचाई के लिए प्रयुक्त होने वाला जल निम्न गुणवत्ता वाला हो तो इसके साथ अच्छी गुणवत्ता वाले जल को मिलाकर सिंचाई करना लाभकर होता है।

खेत की तैयारीः आलू के कंद मिट्टी के नीचे तैयार होते हैं, अतः मिटटी का भली भांति भुरभुरा होना नितांत आवश्यक है। पहली जुताई मिट्टी पलटने वाले हल के साथ तथा दूसरी और तीसरी जुताई देसी हल या हैरो से करनी चाहिए। यदि खेत में ढ़ेले हों तो पाटा चलाकर मिट्टी को भुरभुरा बना लेना चाहिए। बुवाई के समय भूमि में पर्याप्त नमी का होना आवश्यक है, खेत में नमी की कमी होने पर हल्की सिंचाई (पलेवा) करने के बाद खेत आलू का बीज लगाने के लिए तैयार हो जाता है। प्रत्येक जुताई में दो दिनों का अंतर रखने से खरपतवारों की संख्या में कमी आती है तथा मिट्टी पर अच्छा प्रभाव पड़ता है। ऐसा करने से खेत की नमी बनी रहेगी तथा खेत खरपतवार से मुक्त हो जाएगा। खरपतवार से मुक्ति के लिए जुताई से एक सप्ताह पूर्व राउंडअप दवा जिसमें ग्लायफोसेट नामक रसायन (42 प्रतिशत) पाया जाता है उसका प्रति लीटर पानी में 2.5 मिली. दवा का घोल बनाकर छिड़काव करने के बाद खरपतवारों की संख्या में काफी कमी हो जाती है।

आलू की किस्मों का चयनः आलू की किस्म का चयन फसल उगाने के उद्देश्य को ध्यान में रखकर करना चाहिए। भारतवर्ष के मैदानी क्षेत्रों में जहाँ पर मृदा लवणता की समस्या काफी गंभीर है उन क्षेत्रों में मृदा सुधार के पश्चात आलू उत्पादन की काफी संभावनाएं हैं। लवणग्रस्त भूमि के एक बड़े भाग को सुधारकर कृषि योग्य बना लिया गया है। ऐसे क्षेत्रों के

लिए भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद के अंतर्गत केंद्रीय आलू अनुसंधान संस्थान शिमला द्वारा विभिन्न किस्में विकसित की गयी हैं। उनमें कुफरी ज्योति, कुफरी बादशाह, कुफरी पुखराज, कुफरी आनन्द, कुफरी सतलुज एवं कुफरी बहार मध्यम अगेती प्रभेद प्रमुखतया प्रचलित हैं जोकि 90 दिन से 105 दिनों में परिपक्व हो जाती है। कुफरी बादशाह, कुफरी सिंदूरी एवं कुफरी लालिमा आलू की प्रचलित पछेती किस्में हैं जो 120 दिन से लेकर 130 दिन तक परिपक्व हो जाती है। इसके अतिरिक्त आलू की कुछ किस्में जैसे कुफरी चिप्सोना–1, कुफरी चिप्सोना–2, कुफरी चिप्सोना–3, कुफरी हिमसोना आदि खाद्य प्रसंस्करण के लिए प्रयोग की जाती है।

उचित आकार के बीज कंद का चुनाव एवं बीज की मात्रा : बीज विश्वसनीय स्रोत जैसे अधिकृत प्रतिष्ठित बीज उत्पादक एजेंसी से ही खरीदा जाना चाहिए। साधारणतया विभिन्न आलू उत्पादक राज्यों के कृषि विभाग ही इस जिम्मेदारी को निभाते हैं। यदि किसान अपना ही बीज बोता है तो उसे 3–4 वर्ष के बाद बीज बदलने की सलाह दी जाती है। बीज कंदों को बुवाई से 15–20 दिन पहले शीतभंडार से निकालकर किसी हवादार कमरे के फर्श पर बिखेर दिया जाता है ताकि कंदों में अंकुर अच्छे से निकल आयें। बीजाई से पहले बिना अंकुरण वाले, सड़े हुए, क्षतिग्रस्त और रोगग्रस्त बीज कंदों को अलग कर लेना चाहिए।

आलू के बीज की मात्रा इसके कंद के भार, दो पंक्तियों के बीच की दूरी तथा प्रत्येक पंक्ति में दो पौधों के बीच की दूरी पर निर्भर करता है। प्रति कंद 30 से 40 ग्राम वजन वाले आलू का रोपण करने पर 25 से 30 कुंटल/हैक्टर आलू के कंद की आवश्यकता होती है। आलू के बीज का आकार और उसकी उपज से लाभ का आपस में गहरा संबंध है। बडे आकार के बीज कंदों से उपज तो अधिक होती है परन्तु बीज की कीमत अधिक होने से लाभ में कमी हो जाती है। इसलिए अच्छा लाभ प्राप्त करने के लिए बीज आलू 3–3.5 सेंमी.आकार या 30–40 ग्राम भार का होना चाहिए।

आलू की बिजाई का समयः अगेती बिजाई सितम्बर माह के दूसरे से चौथे सप्ताह तक, मुख्य फसल की बीजाई अक्तूबर के दूसरे से चौथे सप्ताह तक तथा पछेती फसल की बीजाई नवम्बर के मध्य से दिसम्बर के अंत तक कर लेनी चाहिए। अगेती बीजाई के समय 3–4 दिनों तक अधिकतम तापमान 32 डिग्री सेल्सियस से कम तथा न्यूनतम तापमान 5–8 डिग्री सेल्सियस से अधिक होना चाहिए। उत्तर भारत में, जहाँ पाले की बहुत बड़ी समस्या है, आलू को बढने के लिए कम समय मिलता है। अगेती बुवाई से बढ़वार के लिए लम्बा समय तो मिल जाता है परन्तु उपज अधिक नहीं हो पाती है क्योंकि ऐसी अगेती फसल में बढ़वार व कन्द के बनने के समय प्रतिकूल तापमान होता है साथ ही बीजों के अपूर्ण अंकुरण व सडन का खतरा भी बना रहता है। अतः उत्तर भारत में आलू की बुवाई इस प्रकार करें कि आलू दिसम्बर के अंत तक पूरा बन जाए। उत्तर–पश्चिमी भागों में आलू की बुवाई का उपयुक्त समय अक्टूबर माह का पहला पखवाडा है। पूर्वी भारत में आलू अक्टूबर के मध्य से जनवरी तक बोया जाता है।

बीजकंद का रासायनिक बीजोपचार : शीतगृह से आलू निकालने के पश्चात् उसे तिरपाल या पक्की फर्श पर छाया में हवादार जगह पर फैलाकर कम से कम एक सप्ताह तक रखा जाता है। सड़े एवं कटे कंदों को प्रतिदिन निकालते रहना चाहिए। जब आलू के कंद में अंकुरण निकलना प्रारंभ हो जाय तब रासायनिक बीजोपचार के बाद बीजाई करनी चाहिए।

शीत भंडार से निकालने के बाद कन्दों को फफूंद एवं बैक्टीरिया जनित रोगों से सुरक्षा प्रदान करने के लिए फफूंदनाशक एवं एन्टीबायोटिक दवा का प्रयोग किया जाता है। इसके लिए खुले मुंह वाले बर्तन में नाप कर पानी लिया जाता है। प्रति लीटर पानी में 5 ग्राम इमिशान–6 तथा 500 मि॰ग्रा॰ स्ट्रोप्टोसाइक्लिन एन्टीबायोटिक दवा का पाउडर मिलाकर घोल तैयार किया जाता है। इस घोल में कंद को 15 मिनट तक डुबोकर रखने के बाद घोल से आलू को निकालकर छायादार स्थान में फैला कर रखा जाता है, ताकि कंद की नमी कम हो जाय। फफूंदनाशक दवाओं में घोल तैयार करने हेतु इमिशान–6 सस्ता पड़ता है। इसके अभाव में इन्डोफिल एम.–45, कैप्टाफ या ब्लाइटाक्स 2.5 ग्राम प्रति लीटर पानी में घोलकर भी प्रयोग किया जा सकता है। इसका अभिप्राय यह है कि फफूंद एवं बैक्टीरिया जनित रोगों से बचने के लिए रासायनिक बीजोपचार आवश्यक है। ऐसा करने से बीज आलू में रोग संक्रमणता कम हो जाती है तथा कंद की अंकुरण क्षमता भी बढ़ जाती है।

बुवाई की विधि : पौधों में कम दूरी रखने से रोशनी, पानी और पोषक तत्वों के लिए प्रतिस्पर्धा बढ़ जाने के फलस्वरूप छोटे माप के आलू पैदा होते हैं। अधिक फासला रखने से प्रति हैक्टर क्षेत्र में पौधों की संख्या कम हो जाती है जिसके कारण आलू का आकार तो बढ़ जाता है परन्तु उपज घट जाती है। इसलिए कतारों और पौधों की दूरी में ऐसा संतुलन बनाना होता है ताकि न उपज कम हो और न ही आलू का आकार कम हो। बीजाई से पूर्व हल्की सिंचाई करने से अंकुरण जल्दी व अच्छा

होता है। बीज के आकार के आधार पर आलू रोपण के लिए आम तौर पर 60ग20–30 सेंमी. की दूरी को उचित माना जाता है। बीजाई के लिए 40–50 ग्राम वजन वाले बीजकंद को सही आकार माना जाता है और इस प्रकार बीज आलू की मात्रा 25–35 कुंटल/हैक्टर तक हो सकती है। आलू रोपने के समय मिट्टी चढ़ाकर 15 सेंमी. ऊंची मेड बना दी जाती है व कुदाली से हल्का थपथपाकर कर मिट्टी को दबा दिया जाता है ताकि मिट्टी की नमी बनी रहे तथा सिंचाई में भी सुविधा हो।

यदि सुविधा हो तो बड़े खेत में आलू रोपने की मशीन द्वारा भी बीजाई की जाती है। इसके द्वारा आलू लगाने से समय एवं श्रम दोनों की बचत की जा सकती है। यदि आलू में मक्का लगाना चाहते हैं तो आलू की मेड़ के ठीक नीचे सटाकर आलू बुवाई के पाँच दिन के अंदर खुरपी से 30 सेंमी. की दूरी पर मक्का बीज की बुवाई कर दें। ऐसा करने से आलू के साथ सिंचाई में भी बाधा न होगी। मक्का–आलू साथ लगाने पर मक्का के लिए पूरी खाद की मात्रा तथा आलू के लिए आधी खाद की मात्रा का प्रयोग करें। मक्का–आलू साथ लगाने पर एक ही खेत से एक ही समय में कम लागत में दोनों फसल उगाई जा सकती है।

खाद एवं उर्वरक: आलू की बुवाई से एक माह पहले खेत में गोबर की खाद 20–25 टन/हैक्टर की दर से अच्छी तरह से मिलाना बहुत उपयोगी है। जहाँ गोबर की खाद उपलब्ध न हो तो हरी खाद का इस्तेमाल करना चाहिए। बीजाई से पूर्व मिट्टी की उर्वरता की स्थिति और रोग व कीट प्रबंधन के लिए पिछले साल की बीमारी की घटनाओं की जानकारी रखना हमेशा लाभकर होता है।

आलू के पौधे की कम समय में अपेक्षाकृत अधिक बढ़वार की प्रवृति के कारण पोषक तत्वों की अधिक मात्रा में आवश्यकता होती है। पौधे की जड़ें उथली होने के कारण यह मिट्टी की ऊपरी सतह से ही भोजन प्राप्त करता है। इसलिए इसे प्रचुर मात्रा में जैविक एवं रासायनिक उर्वरकों की आवश्यकता होती है। उर्वरक प्रदान करने की मात्रा मिट्टी के प्रकार, उर्वरता, जलवायु, फसलचक्र, प्रजाति, फसल वृद्धि की दशा और मृदा नमी की आपूर्ति के आधार पर निर्भर करती है।

साधारणतया, आलू उत्पादन के लिए पोषक तत्वों की अनुशंसित खुराक 120 कि॰ग्रा॰ नाइट्रोजन, 100 कि॰ग्रा॰ फॉस्फोरस तथा 100 कि॰ग्रा॰ पोटैशियम प्रति हैक्टर है। जिस खेत में गोबर की खाद की उपरोक्त मात्रा डाली गई हो उसमें फॉस्फोरस और पोटैशियम की आधी मात्रा ही प्रयोग करें। उपरोक्त पोषण प्रदान करने पर मिट्टी की उर्वराशक्ति हमेशा बनी रहती है तथा सभी पोषक तत्व पौधों को आवश्यकतानुसार सही मात्रा व समय पर मिलते रहते हैं। नाइट्रोजन की आधी तथा फॉस्फोरस व पोटाश की पूरी मात्रा आलू लगाने के समय मिट्टी में अच्छी तरह से मिला देनी चाहिए। बीजाई के समय आलू की पंक्तियों में खाद डालना अधिक लाभकर है, परन्तु ध्यान रहे कि उर्वरक को बीज आलू कंद से 5 सेंमी. दूरी पर नाली में डालना चाहिए अन्यथा कंद सड़ सकता है। यदि खाद को नाली में डालना संभव न हो तो इसे खेत में छितरा कर भी प्रयोग किया जा सकता है। छितराने की अवस्था में उर्वरकों की 25 प्रतिशत मात्रा अधिक देनी पड़ती है।

सिंचाई: आलू की सफल खेती के लिए सिंचाई का महत्वपूर्ण योगदान है तथा मैदानी क्षेत्रों में पानी की उपलब्धता होने पर ही खेती की जा सकती है परन्तु पहाड़ी क्षेत्रों में आलू की खेती वर्षा पर निर्भर करती है। इसकी खेती में पानी की कमी किसी भी अवस्था में होने से आलू की बढ़वार, विकास और कंद के निर्माण पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। कंद निर्माण के समय पानी की कमी किसी भी हालत में नहीं होनी चाहिए। बीजाई से 12–15 दिन बाद पहली सिंचाई करें। ऐसा करने पर फसल की एक समान बढ़वार होती है। पानी से मेडों को टूटने से बचाने के लिए पहली सिंचाई के समय मेड़ों को आधे तक ही भरना चाहिए।

सामान्यतः आलू एवं मक्का की फसल उगाने के लिए अधिक पानी की आवश्यकता है इसीलिए इन फसलों में अधिक उपज के लिए पानी एक बार में थोड़ा–थोड़ा और कम अंतराल में देना लाभदायक है। प्रथम सिंचाई उचित समय पर करने से खेत में डाले गए खाद का उपयोग फसलों द्वारा प्रारंभ से ही आवश्यकतानुसार होने लगता है। दो सिंचाई के बीच का अंतराल खेत की मिट्टी की दशा, तापमान एवं अनुभव के आधार पर घटाया बढ़ाया जा सकता है। दो सिंचाईयों के बीच में 20 दिन से ज्यादा अंतर नहीं रखना चाहिए। इस बात का हमेशा ध्यान रखें कि कन्द के बनने व वृद्धि के समय (30–70 दिन तक) मृदा में उचित नमी बनी रहे तथा खेत में पानी खड़ा नहीं होना चाहिए। खुदाई के 10 दिन पूर्व सिंचाई बंद कर दें। ऐसा करने से खुदाई के समय कंद स्वच्छ निकलेंगे।

निराई–गुड़ाई व मिट्टी चढ़ाना : आलू की खेती में मिट्टी चढ़ाने से पूर्व खरपतवारों की समस्या अधिक चिंताजनक होती है लेकिन निराई–गुड़ाई और मिट्टी चढ़ाने के पश्चात यह समस्या काफी कम हो जाती है। फिर भी कई बार खरपतवारों की

बढ़वार इतनी अधिक हो जाती है कि वे आलू के पौधों को ढ़क देते हैं तथा पोषक तत्वों व जल के लिए मुख्य फसल के साथ प्रतियोगिता करते हैं जिसके फलस्वरूप आलू की फसल को काफी क्षति पहुंचती है। अतः इन्हें निराई–गुड़ाई कर निकाल देना चाहिए। प्रथम सिंचाई के बाद अर्थात् रोपण के 25 दिन बाद खुरपी से खरपतवारों को निकाल दिया जाता है। पूरी फसल अवधि में दो बार निराई–गुड़ाई व मिट्टी चढ़ाने की आवश्यकता होती है। पहली बार बीजारोपण के 30 दिन बाद, जिसके दौरान दो पंक्तियों के बीच में नाइट्रोजन की शेष आधी मात्रा डालकर प्रत्येक पंक्ति में मिट्टी को चढ़ा दिया जाता है। दूसरी बार मिट्टी चढ़ाने का कार्य बीजाई से 40–50 दिन बाद किया जाता है।

इसके अलावा फ्लूक्लोरेलिन 0.70–1.00 कि॰ग्रा॰ सक्रिय घटक को बीजारोपण से पहले छिड़काव अथवा खरपतवरनाशक के वाष्पीकरण को कम करने के लिए मिट्टी में मिला देना वार्षिक घास तथा चौड़ी पत्ती वाले खरपतवारों को नियंत्रित करने का एक प्रभावी तरीका है। अंकुरण से पहले मेट्रीब्यूजिन का 0.70 कि॰ग्रा॰ सक्रिय घटक का प्रयोग भी खरपतवार नियंत्रण का एक प्रभावशाली उपाय है। जब फसल की पूरी बढ़वार हो जाती है तब खरपतवारों का अंकुरण, वृद्धि स्वतः ही पत्तियों की छाया के कारण बाधित हो जाती है और खरपतवार प्राकृतिक तौर से नियंत्रित हो जाते हैं।

पौध संरक्षण

हानिकारक कीटों की रोकथाम: भूमिगत कीटों से सुरक्षा हेतु बीजारोपण के समय ही फोरेट–10 जी, जिसमें क्लोरोपायरीफॉस कीटनाशी दवा रहती है, का 10 कि॰ग्रा॰/हैक्टर की दर से उर्वरकों के साथ मिलाकर रोपण से पूर्व प्रदान किया जाता है। इससे बेधक मिट्टी में ही दबे रह जाते हैं और फसल सुरक्षित रहती है। जनवरी माह के दूसरे पखवाड़े के आस–पास लाही गिरने का समय हो जाता है। यदि लाही का प्रकोप हो तो मेटासिस्टोक्स नामक कीटनाशी का एक मिली. प्रति लीटर पानी में डालकर छिड़काव किया जाता है। लाही नियंत्रण से आलू में लीफ कर्ल विषाणु रोग का खतरा कम हो जाता है।

एफिड: ये कीट पौधे के विभिन्न भागों से रस चूसने के लिए जाने जाते हैं जोकि अप्रत्यक्ष रूप से फसल को क्षति पहुंचाते हैं। आलू की फसल में यह कीट ज्यादा गंभीर असर नहीं डालते हैं लेकिन आलू फसल में रोग संचारित करने वाले विषाणुओं जैसे आलू वायरस वाई, आलू पत्ती रोल वायरस, आलू वायरस ए, आलू वायरस एम (पीवीएम) और आलू वायरस एस (पीवीएस) को संचारित करने में अहम भूमिका निभाते हैं जोकि रोग मुक्त बीज उत्पादन में बाधक है। फसल की अवस्था तथा संक्रमण की गहनता को देखते हुए 17.8 प्रतिशत इमिडाक्लोप्रिड 0.03 प्रतिशत के एक छिड़काव की सिफारिश की जाती है जिसे आवश्यकतानुसार 12–15 दिनों के अंतराल पर फिर से दोहराया जा सकता है। इसके अतिरिक्त 1–3 प्रतिशत खनिज तेल का आलू के पौधों पर छिड़काव एफिड के लिए कम आकर्षक होता है जिसके फलस्वरूप एफिड का जीवन चक्र प्रभावित होता है और यह आलू वायरस को हस्तांतरित करने में असमर्थ रहता है।

कट वर्म: इस कीट की सूंडियां आलू के पौधों, शाखाओं और उगते हुए कंदों को काट देती है। बाद में इसकी सुंडी आलुओं में छेद कर देती है जिससे कंदों का बाजार भाव कम हो जाता है। यह कीट रात में फसल को ज्यादा क्षति पहुंचाता है। इसके लिए गर्मी के मौसम में हल चलाने की सलाह दी जाती है जिससे सूंडिया खेत की सतह पर आ जाती है, कुछ धूप में मर जाती है और शेष पक्षियों द्वारा खा ली जाती है।

सफेद कीडा: इसे कुरमुला भी कहा जाता है जो सफेद या सलेटी रंग का होता है इसका शरीर मुडा हुआ और सिर भूरे रंग का होता है। यह जमीन के अन्दर रहकर पौधों की जड़ों को क्षति पहुंचाता है। इसके नियंत्रण के लिए रोपण के समय पौधों के पास अथवा मिट्टी चढ़ाने के समय फोरेट 10 जी या कार्बोफ्यूरान 3 जी की 2.5–3.0 कि॰ग्रा॰ मात्रा को प्रति हैक्टर प्रयोग करना बहुत प्रभावी पाया गया है। इसके अतिरिक्त अगेती फसल को सफेद मक्खी, लीफ होपर तथा कतुकी कीट से बचाने हेतु प्रति हैक्टर मोनोक्रोटोफॉस 40 ईसी की 1.2 लीटर तथा डेकोफोल 18 ईसी कीटनाशकों की 2 लीटर मात्रा का 800 लीटर पानी में घोलकर छिड़काव करें। दिसम्बर के प्रथम सप्ताह में मैंकोजेब 1.2 प्रतिशत घोल का छिड़काव फसल पर करें। छिड़काव करते समय यह ध्यान रखें कि पत्तियाँ पूरी तरह से रसायनिक घोल से भीग जाएँ। अगर 2–3 दिन तक बादल छाए रहें तो दवाई का छिड़काव 10–12 दिनों के उपरांत दुबारा करें। अगर फसल पर किसी समय पत्ती भक्षक कीट का प्रकोप दिखाई पड़े तो प्रति हैक्टर मोनोक्रोटोफॉस 40 ईसी की 1.2 लीटर तथा कार्बोरील की 2.5 लीटर मात्रा 600 से 800 लीटर पानी में घोल कर छिड़काव करें।

रोग एवं उपचार

पछेता झुलसा रोगः इस रोग से भारत में आलू की फसल का लगभग 15 प्रतिशत वार्षिक नुकसान हो जाता है। इस रोग से आलू के पौधे के सभी भाग जैसे पत्ती, तना तथा कंद प्रभावित होते हैं। यह रोग *फाइटोफ्थोरा इन्फेस्टेन्स* नामक फफूंदी द्वारा होता है। इस रोग में पत्तियों की शिराओं, तनों व डंठलों पर छोटे भूरे रंग के धब्बे उभर आते हैं जो बाद में काले पड़ जाते हैं और पौधे के ये भूरे भाग गल–सड़ जाते हैं। रोकथाम में देरी होने पर आलू के कंद भूरे बैंगनी रंग में परवर्तित होने के उपरांत गलने शुरू हो जाते हैं। पछेता झुलसा रोग से बचाव के लिए 20 दिसम्बर से 20 जनवरी तक 10 से 15 दिन के अंतराल पर फफूंदनाशक दवा का छिड़काव करें। प्रथम छिड़काव में इन्ड्रोफिल एम–45, दूसरे छिड़काव में ब्लाइटॉक्स एवं तीसरे छिड़काव में आवश्यकतानुसार रीडोमिल गोल्ड फफूंदनाशक दवा का 2.5 ग्राम/लीटर पानी में घोल बनाकर छिड़काव करें। इसकी प्रति हैक्टर 2.5 कि॰ग्रा॰ दवा एवं 1000 लीटर पानी की आवश्यकता होती है।

अगेती अंगमारी : शुरू में अगेती अंगमारी के लक्षण मुख्य रूप से पत्तियों और कंदों पर दिखाई देते हैं। प्रारंभ में लक्षण छोटे (1–2 मिमी.), अंडाकार, भूरे रंग के धब्बों के रूप में निचले और पुराने पत्तों पर होते हैं। गंभीर परिस्थितियों में, संपूर्ण पत्तियाँ जली हुई दिखती हैं। यह रोग *अल्टरनेरिया सोलेनाई* नामक फफूंदी के कारण लगता है। उत्तर भारत में इस रोग का आक्रमण शरद ऋतू वाली फसल पर नवम्बर और बसंतकालीन फसल में फरवरी में होता है। नीचे वाली पत्तियों पर सबसे पहले प्रकोप होता है, जहाँ से रोग बाद में ऊपर की ओर बढ़ता है। पत्तियों पर छोट छोटे गोल अंडाकार या कोणीय धब्बे बन जाते हैं जो भूरे रंग के होते हैं। ये धब्बे सूखे एवं चटकने वाले होते हैं और बाद में धब्बे के आकार में वृद्धि हो जाती है जो पूरी पत्ती को ढ़क लेते हैं जिसके फलस्वरूप रोगी पौधा मर जाता है।

उपचारः हमेशा रोग मुक्त बीजकंदों का ही प्रयोग करें। समस्त सोलेनेसी परिवार इस रोग के प्रति संवेदी है अतः कोई सोलेनेसी परिवार के पौधे आलू के खेत के नजदीक न हों। अगेती अंगमारी तथा अन्य पर्णीय धब्बा रोग की रोकथाम के प्रति कवकनाशी का छिड़काव काफी प्रभावी है। इस बीमारी की रोकथाम के लिए क्लोरोथालोनिल (0.20 प्रतिशत), मैन्कोजेब (0. 20 प्रतिशत) या प्रोपीनेब (0.20 प्रतिशत) का फसल पर छिड़काव अच्छा रहता है। नाइट्रोजन की अनुशंसित मात्रा प्रदान करने पर अच्छे परिणाम मिले हैं।

आलू की खुदाई तथा उपज : बाजार भाव एवं मांग को देखते हुए रोपण के 60 दिन बाद आलू की खुदाई की जा सकती है। यदि भंडारण के लिए आलू रखना हो तो कंद की परिपक्वता की जाँच के बाद ही खुदाई करें। परिपक्वता की जाँच के लिए कंद को हाथ में रखकर अंगूठे से दबाकर फिसलाया जाता है, यदि ऐसा करने पर कंद का छिलका अलग नहीं होता है तो समझा जाता है कि कंद परिपक्व हो गया है। ऐसे परिपक्व कंद की खुदाई करने से भंडारण में कंद सड़ता नहीं है। खुदाई दिन के 12 बजे तक पूरा कर लेनी चाहिए। कंद को धूप में न रखकर छायादार जगह में रखा जाता है। धूप में रखने पर भंडारण क्षमता घट जाती है। 15 मार्च तक आलू के सभी प्रभेदों की खुदाई पूरी कर लेनी चाहिए। खुदाई, छंटाई और बोरियों में भरते और बाजार भेजते समय ध्यान रखें कि आलू का छिलका न उतरे, इससे फसल का अच्छा बाजार भाव मिलता है।

मैदानी क्षेत्रों में अगेती व मध्यम मौसमी किस्मों की 200–250 कुंटल और पछेती किस्मों की 300–400 कुंटल/हैक्टर तक उपज मिलती है। पर्वतीय क्षेत्रों में 150–200 कुंटल और ऊँचे पहाड़ी क्षेत्रों में 200 कुंटल/हैक्टर तक उपज मिल जाती है। पकने की अवधि एवं संस्तुत फसल प्रणाली अपनाने पर रोपण के 60 दिन बाद 100 कुंटल, 75 दिन बाद 200 कुंटल, 90 दिन बाद 300 कुंटल तथा 105 दिन बाद 400 कुंटल/हैक्टर तक उपज प्राप्त की जा सकती है। यदि प्रथम सिंचाई बीजाई के 10 से 20 दिन में नहीं हुई है तो आलू की उपज आधी रह जाती है।

फसलोत्तर प्रबंधन तथा भंडारण

खुदाई के बाद, कंदों को छाया में छोटे ढेरों में 15 दिनों तक रख देना चाहिए ताकि उचित उपचार दिया जा सके और अतिरिक्त पानी को निकाला जा सके। क्षतिग्रस्त/कटे/सड़े और दरार वाले कंदों को अलग छाँट लेना चाहिए। शेष कंदों को बहुत छोटे (20 ग्राम), छोटे (20–40 ग्राम), बीज के आकार के कंद (40–80 ग्राम), मध्यम कंद (80–150 ग्राम) और बड़े कंद (150 ग्राम) में विभाजित किया जा सकता है।

आलू शीघ्र खराब होने वाली फसल है, अतः इसके लिए अच्छे भंडारण की सुविधा होना आवश्यक है। पर्वतीय क्षेत्रों में कम तापमान होने के कारण भंडारण की कोई विशेष समस्या नहीं होती है। मैदानी क्षेत्रों में आलू को खराब होने से बचाने के लिए

शीत भंडार गृहों में रखने की विशेष आवश्यकता होती है। बीज के लिए आलू का भंडारण 2–4 डिग्री सेल्सियस और खाने तथा प्रसंस्करण के उद्देश्य से 10–12 डिग्री सेल्सियस पर किया जाना चाहिए। मैदानी इलाकों में आलू को भंडारण से पहले अंकुरण अवरोधक जैसे आइसोप्रोपाइल एन–(3–क्लोरोफेनिल) कार्बामेट से उपचारित करके स्टोर किया जाता है और उपचार के बाद दो दिनों तक स्टोर को वायुरोधी रखा जाता है। खाद्य सुरक्षा में आलू का योगदान तथा बढ़ती जनसंख्या के भरण पोषण हेतु इसकी अनिवार्यता को देखते हुए आलू उत्पादन को बढ़ाना एक कारगर उपाय है। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए आलू के अन्तर्गत क्षेत्र को बढ़ाना आवश्यक है। इस आवश्यकता को पूरा करने के लिए यह जरूरी है कि जो क्षेत्र आलू के लिए प्रतिकूल हैं, फसल उत्पादन के लिए अनुकूल बनाया जाए। हमारे देश का एक महत्वपूर्ण क्षेत्र लवणीय समस्या से ग्रस्त है जिसे उपरोक्त प्रक्रियाओं द्वारा सुधारकर आलू उत्पादन को बढ़ाया जा सकता है।

सुधारी गयी लवणीय भूमि पर आलू की फसल

समाप्त

जहाँ प्रयत्नों की ऊंचाई अधिक होती है,
वहाँ किस्मत को भी झुकना पडता है।

यशपाल सिंह, विनय कुमार मिश्र, संजय अरोड़ा एवं पुलकित श्रीवास्तव
भाकृअनुप–केन्द्रीय मृदा लवणता अनुसंधान संस्थान, क्षेत्रीय अनुसंधान केन्द्र, लखनऊ–226002 (उत्तर प्रदेश)
E-mail: ypsingh.agro@gmail.com

ऊसर भूमियों में समन्वित खाद प्रयोग से धान–गेहूँ की उत्पादकता में वृद्धि

भारतवर्ष में लगभग 6.74 मिलियन हैक्टर भूमि लवण प्रभावित है। इन भूमियों को भौतिक, रसायनिक एवं जैविक विधियों द्वारा सुधारकर कृषि योग्य बनाया जा सकता है। उत्तर प्रदेश में लगभग 8 लाख हैक्टर ऊसर भूमि को सुधारकर कृषि योग्य बनाया जा चुका है जिसमें धान–गेहूँ फसल चक्र ही मुख्य रूप से अपनाया जाता है। इन भूमियों में कार्बनिक पदार्थ की मात्रा बहुत कम (0.1 प्रतिशत) होने के कारण इनमें फसलों की पैदावार सामान्य भूमियों की अपेक्षा बहुत कम होती है। कार्बनिक पदार्थों की कमी के कारण इन भूमियों की पानी सोखने की क्षमता भी कम होती है, और खेत में अधिक समय तक पानी भरा रहता है जो फसलों को प्रभावित करता है। लवणों की मात्रा अधिक होने के कारण पौधों को पोषक तत्वों की उपलब्धता में भी कमी आ जाती है। रासायनिक खादों के लगातार प्रयोग से मृदा स्वास्थ्य पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है, साथ ही मृदा के भौतिक एवं रासायनिक गुण भी प्रभावित होते हैं। उपरोक्त समस्याओं को ध्यान में रखते हुए केन्द्रीय मृदा लवणता अनुसंधान संस्थान के क्षेत्रीय अनुसंधान केन्द्र, लखनऊ पर ऊसर भूमि में रासायनिक खादों पर निर्भरता को कम करने के लिए विभिन्न कार्बनिक खादों जैसे – केंचुआ खाद, महानगरीय ठोस अपशिष्ट कम्पोस्ट, गन्ने की खाद एवं गोबर की खाद को रासायनिक खादों की विभिन्न मात्रा के साथ प्रयोग कर ऊसर भूमि की उर्वरकता एवं धान–गेहूँ की उत्पादकता पर होने वाले प्रभावों का अध्ययन किया गया।

प्रयोग में कार्बनिक एवं अकार्बनिक खादों के विभिन्न उपचारों का प्रयोग धान–गेहूँ, फसल चक्र में किया गया। प्रयोग में धान एवं गेहूँ की लवण सहनशील किस्में सीएसआर 36 और केआरएल 210 का उपयोग किया गया। पौधों की वृद्धि, उपज को प्रभावित करने वाले कारकों एवं फसल की उपज के आंकड़े समयानुसार लिये गये।

कार्बनिक एवं रासायनिक खादों के संयुक्त प्रयोग का फसलों की वृद्धि एवं उपज पर प्रभाव

कार्बनिक एवं रासायनिक खादों के संयुक्त प्रयोग से धान के पौधों की लंबाई में भी वृद्धि देखी गयी जो कि औसतन 134 से 140 सेंमी. तक नापी गई। सबसे अधिक वृद्धि उपचार $टी_{13}$ में पायी गयी। कार्बनिक एवं अकार्बनिक खादों के संयुक्त प्रयोग से पौधों में उत्पादक कल्लों की संख्या में भी वृद्धि देखी गयी जो केवल रासायनिक खादों के प्रयोग ($टी_1$) की तुलना में अधिक थी। गेहूँ में पौधों की लंबाई, सबसे अधिक (101.7 सेंमी.) उपचार $टी_7$ में प्राप्त की गयी जो उपचार $टी_1$, $टी_3$, $टी_4$ और $टी_6$ के लगभग बराबर थी (तालिका 1)।

धान में सबसे लम्बी बाली $टी_7$ में (28.06 सेंमी) और गेहूँ में 14.22 सेंमी पायी गयी। धान के पुआल की उपज (116.66 कुंटल/हैक्टेयर) सबसे अधिक उपचार $टी_7$ में पायी गयी वहीं गेहूँ में (68.96 कुंटल/हैक्टेयर) उपचार $टी_4$ में पायी गयी। धान में सबसे अधिक पैदावार (68.80 कुंटल/हैक्टेयर) उपचार $टी_7$ में और गेहूँ में (43.90 कुंटल/हैक्टेयर) उपचार $टी_4$ में पायी गयी (तालिका 1)।

कार्बनिक एवं रासायनिक खादों के संयुक्त प्रयोग का मृदा के भौतिक, रासायनिक एवं जैविक गुणों पर प्रभाव

कार्बनिक एवं रासायनिक खादों के संयुक्त प्रयोग से धान–गेहूँ की पैदावार के साथ–साथ मृदा के भौतिक एवं रासायनिक गुणों में भी सुधार देखा गया। कार्बनिक एवं रासायनिक खादों के संयुक्त प्रयोग से मृदा के पीएच मान में भी गिरावट देखी गयी। सभी उपचारों में मृदा के पीएच मान में बदलाव 8.43 ($टी_7$) से 8.93 ($टी_1$) तक पाया गया जो कि प्रारंभिक पीएच मान से कम था। पीएच मान में सबसे अधिक गिरावट $टी_7$ (8.43), $टी_{13}$ (8.45), $टी_{10}$ (8.6) और $टी_4$ (8.53) में पाया गया। कार्बनिक एवं रासायनिक खाद के संयुक्त इस्तेमाल से मृदा की वैद्युत चालकता में भी कमी पायी गयी। रासायनिक खादों के प्रयोग ($टी_1$) की तुलना में संयुक्त प्रयोग से मृदा के जैविक कार्बन में 43 से 76 प्रतिशत तक वृद्धि हुयी। मृदा के कार्बन में सबसे अधिक

वृद्धि उपचार टी$_7$ में पायी गयी जो कि उपचार टी$_4$ के लगभग बराबर थी। विनिमययोग्य सोडियम प्रतिशत में सबसे ज्यादा गिरावट उपचार टी$_7$ (46.4 प्रतिशत) और टी$_4$ (71.1 प्रतिशत) में पायी गयी। कार्बनिक एवं रासायनिक खादों के संयुक्त प्रयोग से मृदा में कैल्शियम एवं मैग्नीशियम की मात्रा में वृद्धि गन्ने की खोई को रासायनिक खादों के साथ मिलाकर प्रयोग करने पर देखी गयी। कार्बनिक एवं रासायनिक खादों के संयुक्त प्रयोग से टी$_{13}$ में 64.7 से 71.6 प्रतिशत तक मृदा में सोडियम की मात्रा में गिरावट दर्ज की गयी (तालिका 2)।

तालिका 1. कार्बनिक एवं रासायनिक खादों के संयुक्त प्रयोग का धान एवं गेहूँ की वृद्धि व उपज पर प्रभाव

उपचार	धान				गेहूँ			
	पौधों की लंबाई (सेंमी.)	बाली की लम्बाई (सेंमी.)	पुआल (कुंटल / हैक्टर)	पैदावार (कुंटल / हैक्टर)	पौधों की लंबाई (सेंमी.)	बाली की लम्बाई (सेंमी.)	पुआल (कुंटल / हैक्टर)	पैदावार (कुंटल / हैक्टर)
टी1	136.0	26.2	94.2	55.4	99.2	13.1	57.5	41.1
टी2	134.00	26.6	84.5	51.5	93.67	13.8	51.9	38.6
टी3	138.3	27.2	93.7	55.7	97.3	13.7	60.3	40.2
टी4	138.0	27.3	102.3	61.6	100.3	13.9	68.9	43.9
टी5	134.0	26.3	95.6	58.5	91.7	13.1	53.9	38.5
टी6	137.7	269	103.3	63.3	96.7	13.7	61.8	41.2
टी7	139.7	28.1	116.7	68.8	101.7	14.2	65.8	43.1
टी8	138.0	26.8	97.2	57.4	86.7	12.6	51.4	36.5
टी9	139.3	27.3	107.5	63.2	90.1	13.5	57.1	38.1
टी10	140.0	27.8	111.1	64.2	93.2	14.0	54.4	42.9
टी11	134.0	26.1	97.4	58.0	85.1	12.2	52.5	37.5
टी12	136.7	26.9	103.5	62.2	88.7	13.7	57.6	38.6
टी13	140.3	27.7	104.4	63.9	90.2	13.4	61.9	41.5
क्रांतिक अंतर (0.05)	3.55	0.68	5.51	3.28	4.96	0.82	3.76	1.54

टी$_1$ (100 प्रतिशत रासायनिक खादों की संस्तुत मात्रा), टी$_2$ (महानगरीय ठोस अपशिष्ट कम्पोस्ट+10 टन / हैक्टर+50 प्रतिशत रासायनिक खादों की संस्तुत मात्रा), टी$_3$ (महानगरीय ठोस अपशिष्ट कम्पोस्ट+10 टन / हैक्टर+75 प्रतिशत रासायनिक खादों की संस्तुत मात्रा), टी$_4$ (महानगरीय ठोस अपशिष्ट कम्पोस्ट+10 टन / हैक्टर+100 प्रतिशत रासायनिक खादों की संस्तुत मात्रा, टी$_5$ (वर्मीकम्पोस्ट +10 टन / हैक्टर+50 प्रतिशत रासायनिक खादों की संस्तुत मात्रा), टी$_6$ वर्मीकम्पोस्ट+10 टन / हैक्टर+75 प्रतिशत रासायनिक खादों की संस्तुत मात्रा, टी$_7$ (वर्मीकम्पोस्ट +10 टन / हैक्टर+100 प्रतिशत रासायनिक खादों की संस्तुत मात्रा), टी$_8$ (गोबर की खाद+10 टन / हैक्टर+50 प्रतिशत रासायनिक खादों की संस्तुत मात्रा), टी$_9$ (गोबर की खाद+10 टन / हैक्टर+75 प्रतिशत रासायनिक खादों की संस्तुत मात्रा), टी$_{10}$ (गोबर की खाद+10 टन / हैक्टर+100 प्रतिशत रासायनिक खादों की संस्तुत मात्रा), टी$_{11}$ (गन्ने की खोई (प्रेसमड)+10 टन / हैक्टर+50 प्रतिशत रासायनिक खादों की संस्तुत मात्रा), टी$_{12}$ (गन्ने की खोई+10 टन / हैक्टर+75 प्रतिशत रासायनिक खादों की संस्तुत मात्रा) और टी$_{13}$ (गन्ने की खोई+10 टन / हैक्टर+100 प्रतिशत रासायनिक खादों की संस्तुत मात्रा),

तालिका 2. कार्बनिक एवं रासायनिक पदार्थों के संयुक्त प्रयोग से मृदा के भौतिक, रासायनिक एवं जैविक गुणों पर प्रभाव

उपचार	कुल घनत्व (किग्रा / मी^{3})	पीएच	वैद्युत चालकता (डेसी. / मी.)	जैविक कार्बन (प्रतिशत)	विनिमय योग्य सोडियम (प्रतिशत)	जैविक बायोमास नत्रजन (मिग्रा / किग्रा)	जैविक बायोमास कार्बन (मिग्रा / किग्रा)	जैविक बायोमास फॉस्फोरस (मिग्रा / किग्रा)
प्रारंभिक	1.56	9.30	1.12	0.21	52	112.20	1.10	0.02
टी1	1.54	8.93	0.83	0.26	28	117.90	1.51	0.11
टी2	1.53	8.69	0.66	0.30	25	229.25	4.55	0.40
टी3	1.51	8.61	0.55	0.35	20	254.90	6.04	0.44
टी4	1.48	8.53	0.55	0.35	15	256.28	7.56	0.56
टी5	1.52	8.63	0.71	0.30	20	256.28	7.56	1.23
टी6	1.51	8.55	0.61	0.35	16	288.50	9.07	1.38
टी7	1.43	8.43	0.58	0.37	15	292.25	10.58	2.76
टी8	1.53	8.64	0.63	0.30	20	186.00	3.02	0.21
टी9	1.53	8.61	0.61	0.31	18	229.25	4.50	0.22
टी10	1.52	8.50	0.58	0.31	16	254.92	4.75	0.26
टी11	1.54	8.63	0.68	0.30	20	143.88	2.61	0.12
टी12	1.53	8.54	0.61	0.32	16	168.30	3.02	0.14
टी13	1.52	8.45	0.58	0.33	16	227.60	4.50	0.17
क्रांतिक अंतर(0.05)	0.02	0.11	0.14	0.03	1.21	4.32	0.42	0.11

ऊसर भूमि में कार्बनिक खादों को रासायनिक खादों के साथ मिलाकर प्रयोग करने से मृदा के जैविक बायोमास एवं जैविक गतिविधियों में भी वृद्धि दर्ज की गयी। सबसे अधिक जैविक बायोमास कार्बन, जैविक बायोमास नत्रजन और जैविक बायोमास फॉस्फोरस, वर्मीकम्पोस्ट एवं रासायनिक खाद के संयुक्त प्रयोग में दर्ज की गयी। कार्बनिक खादों के प्रयोग से ऊसर भूमियों में एन्जाईम और उनकी गतिविधियों में भी वृद्धि दर्ज की गयी जो कि मृदा की उर्वरता बढ़ाने में सहायक है।

निष्कर्ष

प्रयोगों से यह निष्कर्ष निकाला गया कि कार्बनिक खाद जैसे महानगरीय ठोस अपशिष्ट खाद और वर्मीकम्पोस्ट का उपयोग अगर रासायनिक खादों की कम मात्रा के साथ किया जाये तो यह मृदा की भौतिक, रासायनिक एवं जैविक गुणों एवं सूक्ष्मजीवाणुओं की गतिविधियों में सुधार कर सकता है। इसके अलावा ऊसर भूमि में धान और गेहूँ की पैदावार और मृदा उर्वरता में भी सुधार होता है। कार्बनिक खाद के संयुक्त उपयोग से ऊसर भूमि की लवणता में भी गिरावट आती है। वर्मीकम्पोस्ट और महानगरीय ठोस अपशिष्ट कम्पोस्ट खादों का रासायनिक खादों की संस्तुत मात्रा के 75 प्रतिशत के साथ प्रयोग किया जाये तो ऊसर भूमि में सुधार के साथ–साथ फसल की उत्पादकता में भी वृद्धि होती है और रासायनिक खादों पर निर्भरता में भी कमी की जा सकती है।

समाप्त

क्रोध मूर्खता से शुरू होता है
और पश्चाताप पर खत्म होता है।

कालूराम कुमावत, गजेन्द्र, मधु चौधरी, देवेन्द्र दम्बीवाल एवं कौशल कुमार
भाकृअनुप–केन्द्रीय मृदा लवणता अनुसंधान संस्थान, करनाल–132001 (हरियाणा)
E-mail: Gajender@icar.gov.in

बीजीय मसाला फसल मेथी में एकीकृत पोषक तत्व प्रबंधन

बीजीय मसाले कृषि उत्पादों का एक महत्वपूर्ण समूह है, जो राष्ट्रीय कृषि अर्थव्यवस्था में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। भारत में विभिन्न प्रकार के बीजीय मसालों का प्रयोग सदियों से चला आ रहा है। राजस्थान और गुजरात "बीजीय मसालों के कटोरे" के रूप में जाने जाते हैं, क्योंकि भारत में उत्पादित होने वाले कुल बीजीय मसालों का 80 प्रतिशत से अधिक योगदान इन्हीं दो राज्यों का है।

भारत दुनिया में बीजीय मसालों का सबसे बड़ा उत्पादक और उपभोक्ता है, लेकिन वर्तमान में हमारे देश में बीजीय मसालों की कम उत्पादकता के कारण कुल वैश्विक माँग की केवल 51 प्रतिशत आपूर्ति ही संभव है। देश में कुल मसालों का 16 प्रतिशत क्षेत्रफल एवं 17 प्रतिशत उत्पादन बीजीय मसालों के अन्तर्गत है। भारत कच्चे मसालों के निर्यात के साथ–साथ दुनिया के लगभग 70 देशों में मूल्यवर्धित वस्तुओं का निर्यात करता है। वर्तमान में बीजीय मसालों की वैश्विक माँग 98000 टन है, जिसमें भारत प्रति वर्ष 57000 टन बीजीय मसालों का निर्यात करता है। अतः किसान बीजीय मसालों के उत्पादन को बढ़ाकर अधिक लाभ कमा सकते हैं।

बीजीय मसालों में मेथी (ट्राइगोनेला फीनिम–ग्रीकम) का एक महत्वपूर्ण स्थान है। मेथी मसालों के अलावा हरी सब्जी और चारे के रूप में भी उपयोग की जाती है। यह एक पौष्टिक फसल होने के साथ–साथ इसके बीज में औषधीय गुण भी होते हैं, इसलिए पुरानी पेचिश, पुरानी दस्त और खाँसी, लीवर, मधुमेह, प्लीहा और रिकेट्स के निवारण में इसका इस्तेमाल किया जाता है। बीजों में महत्वपूर्ण स्टेरॉयड "डायोजेंजिन" सामग्री 0.62 से 2.20 प्रतिशत के बीच होती है, जिसका उपयोग सेक्स हार्मोन और अंडाकार गर्भ निरोधकों के संश्लेषण में किया जाता है। मेथी की वृद्धि एवं उत्पादन के लिए पाले रहित, मध्यम ठंडे और साफ मौसम की आवश्यकता होती है। मेथी एक लेग्युम फसल है, जिसकी जड़ों मे राइज़ोबियम नामक बैक्टीरिया नाइट्रोजन स्थिरीकरण करते हैं।

समन्वित/एकीकृत पोषक तत्व प्रबंधन का महत्व

कृषि उत्पादों की बढ़ती माँग व घटते क्षेत्र की वजह से विभिन्न प्रकार के उर्वरकों की खपत दिन–ब–दिन बढ़ती जा रही है। असंतुलित एवं अपर्याप्त उर्वरकों के उपयोग तथा जैविक खादों के प्रतिबंधित उपयोग या कम उपयोग के कारण मिट्टी को न केवल पोषक तत्वों की कमी हुई है, बल्कि मिट्टी के स्वास्थ्य पर भी विपरीत प्रभाव पड़ा है। अत्यधिक उर्वरकों के उपयोग से फसलों की प्रतिक्रिया में भी गिरावट आई है। ऐसी स्थिति में, एकीकृत पोषक तत्वों के प्रबंधन का महत्व बहुत बढ़ जाता है और मिट्टी की उर्वरता और उत्पादकता को बनाये रखने में इसका महत्वपूर्ण योगदान है। एकीकृत पोषक तत्वों के प्रबंधन के अन्तर्गत पौधे के पोषक तत्वों के जैविक स्रोत (कार्बनिक खादें, हरी खादें एवं जैविक उर्वरकों) और अकार्बनिक स्रोतों (रासायनिक उर्वरकों) का संयुक्त उपयोग न केवल क्षेत्रीय फसलों के उत्पादन की लाभ प्रदता को बढ़ाता है, बल्कि यह मिट्टी की स्थायी प्रजनन क्षमता (भौतिक–रासायनिक और जैविक गुणों) को बनाए रखने में सहायता करता है। यह पोषक तत्वों को उपलब्ध अवस्था में लाता है एवं आवश्यक मात्रा में प्रदान करता है, जिससे मृदा की उर्वराशक्ति बढ़ती है। एकीकृत पोषक तत्वों के प्रबंधन में पौधे के आवश्यक पोषक तत्वों के उपलब्ध स्रोतों का चयन आर्थिक आधार पर किया जाता है, जिससे कम लागत में फसल का पूरा उत्पादन प्राप्त हो सके।

मेथी में समन्वित पोषक तत्वों पर परीक्षण हेतु शोध कार्य रबी 2015–16 के दौरान सरदार कृषिनगर दांतीवाड़ा कृषि विश्वविद्यालय के चिमनभाई पटेल कृषि महाविद्यालय के सस्यविज्ञान के फार्म पर किया गया। इस स्थान की मृदा बलुई–रेतीली थी, जिसमें कार्बनिक पदार्थ एवं नाइट्रोजन कम व फॉस्फोरस मध्यम मात्रा में थे।

एकीकृत पोषक तत्वों के प्रबंधन के रूप में हमने उर्वरकों के साथ–साथ जैविक उर्वरकों की विभिन अवस्था जैसे ठोस एवं तरल अवस्था को विभिन्न उपचार विधि जैसे बीज एवं मृदा उपचार के रुप में प्रयोग किया। जैविक उर्वरकों का उपयोग करने का हमारा उद्देश्य था कि मृदा में रासायनिक उर्वरकों के स्थान पर अधिक से अधिक जैविक उर्वरकों का उपयोग हो। ये वैश्विक स्तर पर

175 मिलियन टन नाइट्रोजन प्रतिवर्ष मृदा में स्थिरीकरण करते हैं, जो कुल नाइट्रोजन स्थिरीकरण का लगभग 40 प्रतिशत हिस्सा है। यह अनुमान लगाया गया है कि राइज़ोबियम स्पीसीज द्वारा विभिन्न प्रकार की फसलों में 40–250 कि॰ग्रा॰ नाइट्रोजन प्रति हैक्टर प्रतिवर्ष स्थिरीकरण होता है।

फॉस्फोरस घुलनशील जीवाणु (पीएसबी) जैसे स्यूडोमोनस और बैसीलस मिट्टी में अघुलनशील फॉस्फोरस को घुलनशील अवस्था में परिवर्तित करके पौधों को फॉस्फोरस की उपलब्धता में वृद्धि करते हैं। पीएसबी जैसे स्यूडोमोनास जीवाणु के बारे में पाया कि एक बार प्रयोग करने पर ये 50 कि॰ग्रा॰ सुपरफॉस्फेट प्रति हैक्टर फॉस्फोरस पौधों को उपलब्ध कराते हैं।

बायो/जैव उर्वरकों को प्रयुक्त करने की विधि

बीज उपचारः बीज उपचार के लिए 125 ग्राम गुड़ को एक लीटर पानी में उबाल कर कमरे के तापमान पर ठंडा किया। फिर राइज़ोबियम और पीएसबी ठोस वाहक 30 ग्राम प्रति कि॰ग्रा॰ बीज और तरल वाहक 5 मिली प्रति कि॰ग्रा॰ बीज के हिसाब से इसे गुड़ के घोल में डाला और अच्छी तरह से मिश्रण बनाया। अब इस घोल को बीजों पर फैलाकर अच्छी तरह मिलाया। अब बीजों को अच्छी तरह छाया में सूखा कर बीजों उसी दिन बुवाई की गई।

मृदा उपचार/अनुप्रयोगः राइज़ोबियम और पीएसबी जैव उर्वरकों को ठोस वाहक के रूप में 2.0 कि॰ग्रा॰ प्रति एकड़ भूमि के हिसाब से तथा तरल वाहक रूप में 1.0 लीटर प्रति हैक्टर भूमि के लिए उपयोग किया गया। इनकी मात्रा को 50 कि॰ग्रा॰ मिट्टी के साथ या गोबर की खाद के साथ अच्छी तरह मिलाया और खेत के पहले से खोले हुए कुडों में डाला गया और तत्काल बुवाई करके सिंचाई दी गई।

पौधे के वृद्धि गुणों में सुधारः मेथी में एकीकृत पोषक तत्व प्रबंधन किया गया एवं फसल बुवाई के 30, 60 दिन और फसल कटाई की अवस्था पर पौधे की ऊंचाई ली गई। फसल बुवाई के 30 एवं 60 दिन बाद सबसे अच्छा उपचार–3 (75 प्रतिशत पोषक तत्व उर्वरकों के साथ राइज़ोबियम ठोस अवस्था (वाहक) + पीएसबी ठोस अवस्था (वाहक) मृदा उपचार) था एवं उपचार–9 (100 प्रतिशत पोषक तत्व उर्वरकों द्वारा) की तुलना में उपचार–3 में क्रमशः 12.57 प्रतिशत बुवाई के 30 दिन बाद एवं 11.33 प्रतिशत बुवाई के 60 दिन बाद अधिक ऊंचाई दर्ज की गई। जबकि फसल कटाई की अवस्था पर उपचार–9 (100 प्रतिशत पोषक तत्व उर्वरकों द्वारा) की तुलना में उपचार–7 (75 प्रतिशत पोषक तत्व उर्वरकों के साथ राइज़ोबियम तरल अवस्था + पीएसबी तरल अवस्था मृदा उपचार) में 12.20 प्रतिशत अधिक ऊंचाई दर्ज की गई।

इस परीक्षण के दौरान फसल बुवाई के 45 दिन बाद पौधे की जड़ों में गाँठों की संख्या और ताजा जड़ों की गाँठो का वजन सबसे ज्यादा उपचार–7 (75 प्रतिशत पोषक तत्व उर्वरकों के साथ राइज़ोबियम तरल अवस्था + पीएसबी तरल अवस्था मृदा उपचार) में दर्ज किया गया जो उपचार–9 (100 प्रतिशत पोषक तत्व उर्वरकों द्वारा) की तुलना में क्रमशः 32.25 एवं 35.83 प्रतिशत अधिक था।

पौधे की उपज एवं उपज गुण : मेथी के पौधे में फलियों की संख्या, फली में बीजों की संख्या एवं फली की लम्बाई में वृद्धि सबसे ज्यादा उपचार–7 (75 प्रतिशत पोषक तत्व उर्वरकों के साथ राइज़ोबियम तरल अवस्था + पीएसबी तरल अवस्था मृदा उपचार) में दर्ज की गई, जो उपचार –9 (100 प्रतिशत पोषक तत्व उर्वरकों द्वारा) की तुलना में क्रमशः 24.70 प्रतिशत, 13.91 प्रतिशत एवं 11.06 प्रतिशत अधिक थी।

तालिका 1. उपचार विवरण

उपचार	उपचार विवरण
1	75 प्रतिशत पोषक तत्व उर्वरकों के साथ राइज़ोबियम ठोस अवस्था (वाहक) मृदा उपचार
2	75 प्रतिशत पोषक तत्व उर्वरकों के साथ राइज़ोबियम ठोस अवस्था (वाहक) बीज उपचार
3	75 प्रतिशत पोषक तत्व उर्वरकों के साथ राइज़ोबियम ठोस अवस्था (वाहक) + पीएसबी ठोस अवस्था (वाहक) मृदा उपचार
4	75 प्रतिशत पोषक तत्व उर्वरकों के साथ राइज़ोबियम ठोस अवस्था (वाहक) + पीएसबी ठोस अवस्था (वाहक) बीज उपचार
5	75 प्रतिशत पोषक तत्व उर्वरकों के साथ राइज़ोबियम तरल अवस्था मृदा उपचार
6	75 प्रतिशत पोषक तत्व उर्वरकों के साथ राइज़ोबियम तरल अवस्था बीज उपचार
7	75 प्रतिशत पोषक तत्व उर्वरकों के साथ राइज़ोबियम तरल अवस्था + पीएसबी तरल अवस्था मृदा उपचार
8	75 प्रतिशत पोषक तत्व उर्वरकों के साथ राइज़ोबियम तरल अवस्था + पीएसबी तरल अवस्था बीज उपचार
9	100 प्रतिशत पोषक तत्व उर्वरकों द्वारा (नियंत्रण 1)
10	75 प्रतिशत पोषक तत्व उर्वरकों द्वारा (नियंत्रण 2)

चित्र 1. मेथी की वृद्धि अवस्था

चित्र 2. मेथी की पकने की अवस्था

इस परीक्षण में बीज एवं भूसे की उपज उपचार–7 (75 प्रतिशत पोषक तत्व उर्वरकों के साथ राइज़ोबियम तरल अवस्था + पीएसबी तरल अवस्था मृदा उपचार) में सबसे ज्यादा दर्ज की गई, जो क्रमशः 1799 कि॰ग्रा॰ प्रति हैक्टर बीज और 3413 कि॰ग्रा॰ प्रति हैक्टर भूसा थी एवं यह उपचार–9 (100 प्रतिशत पोषक तत्व उर्वरकों द्वारा) की तुलना में क्रमशः 11.94 प्रतिशत बीज में एवं 13.50 प्रतिशत भूसे में अधिक थी।

बीज एवं भूसे में नाइट्रोजन एवं फॉस्फोरस की मात्रा : मेथी के बीज एवं भूसे में नाइट्रोजन एवं फॉस्फोरस की मात्रा में सबसे ज्यादा वृद्धि उपचार–7 (75 प्रतिशत पोषक तत्व उर्वरकों के साथ राइज़ोबियम तरल अवस्था + पीएसबी तरल अवस्था मृदा उपचार) में हुई, जो उपचार–9 (100 प्रतिशत पोषक तत्व उर्वरकों द्वारा) की तुलना में क्रमशः 19.58 प्रतिशत नाइट्रोजन एवं 24.14 प्रतिशत फॉस्फोरस अधिक थी।

मृदा में उपलब्ध नाइट्रोजन एवं फॉस्फोरस की उपलब्धता में वृद्धिः इस परीक्षण में मृदा में उपलब्ध नाइट्रोजन, फॉस्फोरस एवं पोटाश की उपलब्धता में काफी वृद्धि हुई। इस परीक्षण के दौरान दिए गये विभिन्न उपचारों में उपचार–7 (75 प्रतिशत पोषक तत्व उर्वरकों के साथ राइज़ोबियम तरल अवस्था + पीएसबी तरल अवस्था मृदा उपचार) सबसे अच्छा रहा एवं नाइट्रोजन और फॉस्फोरस की उपलब्धता में उपचार–9 (100 प्रतिशत पोषक तत्व उर्वरकों द्वारा) की तुलना में क्रमशः 4.78 एवं 4.3 प्रतिशत की वृद्धि हुई।

निष्कर्ष

एकीकृत पोषक तत्वों का प्रबंधन करने से उपज के साथ–साथ मृदा की उर्वराशक्ति भी बढती है। ये आर्थिक रूप से उपयोगी है, जो नाइट्रोजन एवं फॉस्फोरस की बचत करते हैं, जिससे किसानों के उर्वरक की बचत होती है एवं उपज अच्छी होती है। अतः एकीकृत पोषक तत्वों का प्रबंधन करने पर 25 प्रतिशत पोषक तत्वों की मात्रा की बचत होती है और यह उत्पादन को सुरक्षित रखता है। अतः ये किसानों के लिए एक लाभदायक प्रबंधन तकनीक साबित हो सकती है।

समाप्त

जो समय को बर्बाद करते हैं,
समय उनको बर्बाद करने में समय नहीं लगाता है।

मीना लूथरा
भाकृअनुप–केन्द्रीय मृदा लवणता अनुसंधान संस्थान, करनाल (हरियाणा)
E-mail: meena.luthra@icar.gov.in

भावी पीढियों के लिए प्राकृतिक संसाधनों का संरक्षण व संचालन

प्राकृतिक सम्पदा हमारे पर्यावरण द्वारा प्रदत्त अनमोल संसाधन व सेवाएं है। बीते समय में जब लोग मात्र भरण पोषण के स्तर पर निर्वाह करते थे, तब प्राकृतिक सम्पदा का प्रयोग स्थानीय स्तर तक ही सीमित रहता था। परन्तु अब इस दोहन का प्रभाव स्थानीय स्तर से हटकर कहीं बड़े पैमाने पर होता है। मानव जाति के हस्तक्षेप के कारण हमारे प्राकृतिक संसाधनों में कई कारणों से गिरावट आ रही है। बढ़ती हुई जनसंख्या की बढ़ती हुई मांग, साधनों के प्रयोग के लिए तकनीकी ज्ञान के प्रयोग के साथ–साथ प्रति व्यक्ति संसाधन उपयोग दर में वृद्धि। उपभोक्ता और उपभोक्तावाद के तेजी से बढ़ते हुए प्रभाव के कारण यह आवश्यक हो जाता है कि हम अपने प्राकृतिक संसाधनों का आगामी पीढियों के लिए संरक्षण करें।

जैव विविधता

जैव विविधता परितंत्र की स्थिरता तथा संचालन के नियंत्रण तथा मानव जाति के संरक्षण व सुख समृद्धि के लिए एक बहुत ही अहम भूमिका अदा करती है। मानवीय प्रक्रियाओं एवं पर्यावरणीय अवक्रमण दोनों के कारण जैव विविधता में भारी कमी हो रही है। यह एक बहुत ही चिंता का विषय है क्योंकि हम यह ठीक से समझ नहीं पा रहे हैं कि हम कैसी अनमोल सम्पदा को खो रहे हैं। जैव विविधता निम्नलिखित रूपों में एक अनमोल सम्पदा है:

- नए पौधों के रूप में
- औषधीय पौधों के रूप में
- खनिज तेल के अनुकल्पों के रूप में
- बायोसाइड़ औषधियों एवं अन्य उत्पादों के रूप में

पृथ्वी की पर्यावरण व्यवस्था के सही संचालन के लिए नए प्रकार के जीवों की आवश्यकता होती है। जैव विविधता की हानि से नए जीव की विकास प्रक्रिया या तो रूक जाएगी अथवा परिवर्तित पर्यावरण की स्थिति के उपयुक्त नए प्राणिओं की विकास प्रक्रिया में रोक लगेगी। जैव विविधता का ह्रास संसार की सबसे चिंताजनक समस्याओं में से एक है। ऐसा भी हो सकता है कि हम उन पौधों को खो रहे हों जो हमें कैंसर व संक्रामक रोगों से मुक्ति दे सके। भावी पीढ़ियों के लिए हमें जैव विविधता को संरक्षित करने की आवश्यकता है ताकि आने वाली पीढी जीव जगत से प्रत्यक्ष एवं परोक्ष रूप से लाभ उठा सकें। भावी पीढ़ियों के लिए यह आवश्यक हो जाता है कि हम अपनी पर्यावरण व्यवस्था को संरक्षित रखें। इस व्यवस्था में हमारे परितंत्र जैसे वन, मरुस्थल, चरागाह तथा समुद्र शामिल हैं, उनको भी इसी जैव विविधता का प्रयोग करने का अवसर मिलना चाहिए। यही नहीं आने वाली पीढ़ियों को उन नए पौधों और जंतुओं से मिलने का अवसर मिलना चाहिए। यह उनके लिए भी भोजन, औषधि, लकड़ी, रेशे इत्यादि को प्रदान करने के काम आ सकती है, जो अपनी प्रजाति को बनाए रखने के लिए निरंतर विकसित होते रहते हैं।

मानवीय गतिविधिओं द्वारा भूमि, वायु और जल के स्तर में गिरावट, उन प्राकृतिक संसाधनों को नुकसान पहुँचा सकती है जिसका पूरे पारिस्थितिकी तंत्र पर प्रभाव पड़ता है। यह प्राकृतिक संपदा पृथ्वी पर बसे सब प्राणियों का निवास स्थल भी है। इन प्राणियों में मानव जाति भी शामिल है। हमें ध्यान रखना चाहिए कि हम इसी जैव विविधता के अंग हैं और यह हमारी ज़िम्मेदारी है कि हम इस पृथ्वी के संरक्षण की भरपूर कोशिश करें। यदि हम इन निवास स्थलों को अन्य प्राणियों के लिए नहीं बचाएंगे तो यह हमारी ही बड़ी भूल होगी।

पर्यावरणीय अवक्रमण

पर्यावरणीय अवक्रमण का अर्थ है वातावरण के स्तर में गिरावट। वातावरण के स्तर में गिरावट तभी होती है जब संसाधनों के दोहन की दर पुनः स्थापित होने की दर से अधिक हो। इन नवीनीकृत होने वाले तत्वों में भूमि, चरागाह, वन तथा वन्य जीव शामिल हैं। यदि एक सीमा से अधिक इनका दोहन होता जाए तब ये साधन या तो अनवीनीकृतों की श्रेणी में पहुँच जाएँगे

अथवा विलुप्त हो जाएंगे। अतः हमारा प्रयास होना चाहिए कि इन साधनों का उचित ढंग से प्रयोग करें। हमारा प्रयास एक ऐसे संपोषित विकास के लिए होना चाहिए जोकि पर्यावरण को अत्यधिक हानि पहुंचाए बिना अपनी अर्थव्यवस्था व जनसंख्या को सही तरह से संचालित करता है। हमारा प्रयास इस ओर भी होना चाहिए कि पृथ्वी की पर्यावरण से संबंधी क्रियाओं को सोख लेने की क्षमता कायम रहे तथा वह अपनी प्राकृतिक सम्पदा को पुनः स्थापित कर सके। इस दौरान समाज का प्रयास होना चाहिए कि वह न केवल वर्तमान में लोगों की आवश्यकताओं की पूर्ति करे बल्कि आने वाली पीढ़ियों के लिए भी इस प्राकृतिक सम्पदा को बचाकर रख सकें।

पृथ्वी के सही संरक्षण एवं संचालन की हम सभी की नैतिक ज़िम्मेदारी है। सच तो यह है कि पृथ्वी को हमारी इतनी जरूरत नहीं है जितनी कि हमें पृथ्वी की। हमारा संरक्षण पृथ्वी की सही देखरेख पर निर्भर है। जब भी पृथ्वी के प्राकृतिक संसाधनों का प्रयोग करते हैं हम पृथ्वी की आने वाली पीढ़ियों के ऋणी हो जाते हैं। हमारी नैतिक ज़िम्मेदारी बनती है कि हम इस ऋण को चुकाएँ, कम से कम पृथ्वी को वर्तमान दशा में कायम रखें।

बिना विनाश के विकास करें

आज से पहले शायद ही कभी हमारे वातावरण को हुई क्षति और विनाश इतने स्पष्ट रूप से दिखाई पड़े हों जैसा कि वर्तमान में दिख रहे हैं। जिन पर्वतों के ढाल कभी हरे भरे वृक्षों से घिरे रहते थे वे ही आज वीरान और बंजर दिखाई पड़ते हैं। जो नदियां एक समय में स्वच्छ जल से भरी रहती थी वह आज मटमैले पानी और गंदगी से भरी हुई है। कभी–कभी हम प्रदूषित हवा में सांस लेने को भी मजबूर हो रहे हैं। हम गंदगी और कूड़े आदि का प्रबंध करने में विफल रहे हैं और इसकी कीमत हमें अपने स्वास्थ्य की गिरावट के माध्यम से चुकानी पड़ रही है। अतः हम यह कह सकते हैं कि हमने एक खास किस्म के विकास के नाम पर अपने पर्यावरण को हानि पहुंचाई और उसका विनाश किया है। अब प्रश्न यह है कि हम अपनी इस बची हुई धरोहर को किस प्रकार सुरक्षित रख सकते हैं। इस दिशा में उठाए जाने वाले ठोस कदम निम्नलिखित हैं:

- ऊर्जा और प्राकृतिक सम्पदा को बचाने का प्रयास करें।
- कूड़े –कर्कट और विषैले पदार्थों को न्यूनतम करने के लिए नई तकनीकों की खोज एवं प्रयोग।
- जैव–निम्नीकरणीय, नवीकरणीय एवं पुनः उपयोग में लाये जाने वाले पदार्थों का उपयोग।
- जन सामान्य में पर्यावरण संबंधी चेतना एवं शिक्षा का विकास करना।

पर्यावरणीय समस्याओं को तीन स्तरों पर उठाने की आवश्यकता है

- स्थानीय समस्याएँ जैसे जल प्रदूषण, अपशिष्ट प्रबंधन आदि को जन समुदाय के समक्ष लाने की आवश्यकता है।
- राष्ट्रीय एवं क्षेत्रीय स्तर पर अम्ल वर्षा, बाढ़, वायु प्रदूषण, वनस्पति विनाश जैसी समस्याओं को रोका जाए।
- मौसमी परिवर्तन, ओज़ोन स्तर में गिरावट तथा अन्य संबंधित वैश्विक स्तर की समस्याओं को सुलझाने में वैश्विक स्तर के संगठनों का सहयोग लिया जाए।

न्यूनतम कार्य जो हम कर सकते हैं: हमारे प्राकृतिक संसाधनों के संरक्षण व पर्यावरण के बचाव के लिए हर एक व्यक्ति निम्नानुसार एक जिम्मेदार भूमिका अदा कर सकता है:

जीवाष्म ईंधनों का संरक्षण

- आवश्यकता होने पर ही पंखों और लाईटों का प्रयोग करें।
- वातानुकूल यंत्रों का प्रयोग कम से कम करें।
- बिजली के उपकरणों का न्यूनतम प्रयोग करें।

जल संरक्षण

- आवश्यकतानुसार जल का उपयोग करें।
- लीक करते नालों एवं पाइपों की शीघ्र मरम्मत करें।

- नदियों, तालाबों और जलाशयों को प्रदूषित न करें।
- प्रतिदिन गाड़ियों एवं वाहनों की धुलाई न करें।
- ब्रश करते समय एवं दाढ़ी बनाते समय पानी खोलकर न रखें।
- विपरित परासरण यंत्र (आर ओ) से निकलने वाले जल से पौंछा लगाएँ अथवा क्यारियों में उपयोग करें।
- वर्षा जल का संचय आगामी उपयोग के लिए करें।
- नदी बचाओ आंदोलन में नदी सफाई कार्यक्रम में सहयोग करें।

वृक्षों का संरक्षण

- कागज और कागज से बने पदार्थों का कम प्रयोग करें।
- कागज का पुनः उपयोग करें।
- वृक्षारोपण कर उनकी देखभाल करें।

वायु संरक्षण

- धूम्रपान न करें।
- सूखे पत्ते, कागज एवं अन्य कूडे को न जलाएँ अपितु जैविक खाद बनाएँ।
- फसल अवशेषों को न जलाएँ।
- प्रदूषण रहित वाहनों का सड़क पर प्रयोग करें।
- वाहनों की भली–भांति देख–रेख करें।
- फैक्ट्रियों में प्रदूषण नियंत्रण विधियों को अपनाएं।

न्यूनतम कूड़ा कर्कट फैलाएँ

- केवल उस सामान को खरीदें जिसमें या तो कम पैकिंग हो या पैकिंग पदार्थ का पुनः प्रयोग किया जा सके।
- कागज, धातु, शीशे, प्लास्टिक पदार्थों का पुनः प्रयोग एवं चक्रण करें।
- बाज़ार से सामान लाने के लिए अपने घर से कपड़े का थैला लेकर जाएँ।
- रसोई तथा बाग–बगीचे से ज़ो कूड़ा निकले उसे खाद में परिवर्तित करें।
- पौधों में खाद के लिए प्राकृतिक पदार्थों का प्रयोग करें।

समाप्त

जो व्यक्ति व्यवस्थित ढंग से काम नहीं कर सकता,
वह सुखी नहीं हो सकता।

भारती देशमुख एवं नीरज कश्यप
गुरु अंगद देव पशु चिकित्सा एवं पशुपालन विश्वविद्यालय, लुधियाना–141004 (पंजाब)
E-mail: bharti.vet@gmail.com

सूकर पालन द्वारा न्यूनतम निवेश में अधिकतम लाभ कमाएं

भारत में दिन प्रतिदिन बढ़ती जनसंख्या के कारण वर्तमान एवं भविष्य में खाद्य एवं पोषण सुरक्षा के क्षेत्र में चुनौतियों का सामना करना पड़ सकता है, जिसका एकमात्र हल एकीकृत कृषि द्वारा ही संभव प्रतीत होता है क्योंकि देश की ग्रामीण आजीविका और आर्थिक विकास के लिए पशुपालन और पशुधन क्षेत्र अत्यंत महत्वपूर्ण है। वैश्विक समुदाय में हमारे देश को पशुधन के क्षेत्र में परिपूर्ण और समृद्ध आँका गया है। पशुधन द्वारा सकल कृषि घरेलू उत्पाद में लगभग एक चौथाई भाग योगदान दिया जाता है। खाद्य एवं पोषण सुरक्षा के लिए प्रोटीन की आवश्यकता की पूर्ति केवल वनस्पति स्त्रोत पर निर्भर रह कर नहीं हो सकती और पशु स्त्रोत प्रोटीन की आवश्यकता दिन प्रति दिन बढ़ती जा रही है। वर्तमान में पशु स्त्रोत मांस की आपूर्ति हेतु सूकर पालन को एक महत्वपूर्ण अवसर के रूप में देखा जा रहा है क्योंकि इसमें न केवल प्रारंभिक निवेश न्यूनतम है अपितु थोड़े अंतराल में ही अधिक से अधिक लाभ अर्जित किया जा सकता है। पहले के समय में सूकर पालन मुख्यतः समाज के सामाजिक–आर्थिक रूप से पिछड़े एवं कमजोर वर्गों द्वारा किया जाता था, फलस्वरूप उनके पास बेहतर आनुवंशिक क्षमता वाले पशुओं के साथ ही उचित आवास, संतुलित आहार और वैज्ञानिक ढंग से सूकर पालन प्रबंधन करने के लिए उचित साधन एवं जानकारी की कमी रही है। इन अभावों के कारण शुरुआती दौर में सूकर पालन से उचित लाभ न होने के कारण यह क्षेत्र किसानों को आकर्षित कर पाने में असफल रहा। इसलिए, भारतीय सूकर उद्योग को आधुनिक बनाने और छोटे आकार के ग्रामीण सूकर फार्मों की उत्पादकता में सुधार करने के लिए पर्याप्त वित्तीय प्रावधानों के साथ अधिक मात्रा में श्रेष्ठ गुणवत्ता वाले मांस का उत्पादन करने में सक्षम सूकर के वैज्ञानिक प्रजनन के लिए उपयुक्त योजनाएं आवश्यक हैं। आधुनिक बाजार में बढ़ती हुई मांग के कारण सूकर पालन करने से होने वाली लाभप्रदत्ता को देखते हुए वर्तमान में सभी कृषक वर्गों में यह उद्यम उत्तरोत्तर स्वीकार्यता अर्जित कर रहा है। ग्रामीण गरीबों के उत्थान में सूकर पालन की संभावनाओं को देखते हुए भारत सरकार ने अपनी पंचवर्षीय योजनाओं के तहत वैज्ञानिक स्तर पर सूकर पालन को प्रोत्साहित करने के लिए कई योजनाएँ कार्यान्वित की हैं। उच्च आनुवंशिक गुणवत्ता वाले प्रजनक नर एवं मादा सूकर उपलब्ध कराने के लिए पूरे देश में विभिन्न स्थानों पर 100 से अधिक सूकर प्रजनन प्रक्षेत्र स्थापित किए गए। इसके अलावा राज्यों के पशुपालन विभाग द्वारा विभिन्न वर्ग के किसानों द्वारा सूकर पालन के लिए अनुदान एवं अंशदान योजनाएँ वर्तमान में कार्यान्वित हो रही है।

सूकर पालन की संभावनाएँ

देश में सूकरों की संख्या लगभग 111 लाख है जोकि कुल पशुधन का नगण्य हिस्सा है, साथ ही सूकर के मांस का उत्पादन भी सीमित है, जो देश के पशु प्रोटीन स्रोतों का केवल 7 प्रतिशत है। सूकर के मांस का उत्पादन मुख्य रूप से देश के पूर्वोत्तर क्षेत्रों में केंद्रित है और इसमें मुख्य रूप से घरेलू या छोटे स्तर पर सूकर पालन करने वाले उत्पादक शामिल हैं। पशुधन गणना के आंकड़ों के अनुसार, भारत में स्वदेशी और संकर विदेशी सूकरों की आबादी में बदलाव देखा गया है। भारत में सूकर की आबादी का अधिकांश हिस्सा स्वदेशी नस्लों (76 प्रतिशत) का है, हालांकि 19वीं पशुधन गणना (2012) के अनुसार संकर और विदेशी सूकरों की संख्या वर्ष 2003 से 2012 तक 12.7 प्रतिशत बढ़ी है।

सूकर मांस के कुल उत्पादन का अधिकांश हिस्सा स्थानीय उपभोग में प्रयुक्त होता है, परिणामस्वरूप सूकर के मांस से बनाए जाने वाले संसाधित उत्पादों के परिप्रेक्ष्य में भारतीय बाजार की उपस्थिति नगण्य है। देश में सुकर मांस के संसाधित उत्पादों के मांग की आपूर्ति विदेशों से आयात के माध्यम से की जाती है। यह भी उल्लेखनीय है कि भारत में अंतरराष्ट्रीय मानकों को पूरा करने वाले सूकर वधगृह वर्तमान में बहुत ही कम संख्या में है परंतु इनकी संख्या निश्चित रूप से बढ़ रही है। गुणवत्ता वाले मांस एवं प्रसंस्कृत उत्पाद बनाने की क्षेत्रीय क्षमता एवं वैश्विक मांग होने के कारण इस क्षेत्र में निर्यात की प्रबल संभावनाएँ हैं। सरकार द्वारा सूकर पालन को प्रोत्साहित करने वाली नीतियों एवं मांग से कम आपूर्ति के कारण सूकर पालकों में प्रतिस्पर्धा अन्य पशुपालन क्षेत्रों के अपेक्षाकृत कम है। जिसके कारण सूकर पालन से लाभ का भाग निवेश के अनुपात में श्रेष्ठ है। सूकर पालन द्वारा अधिक से अधिक लाभ निम्नलिखित कारणों से प्राप्त किया जा सकता है:

- **उच्चतम आहार रूपांतरण दक्षता:** अन्य मांस उत्पादन करने वाले पशुओं जैसे बकरी, भेड़ एवं भैंस की तुलना में सूकर में खिलाये गए आहार द्वारा अधिकतम शारीरिक भार प्राप्त करने की क्षमता होती है। यह आहार रूपांतरण दक्षता सुकरों में 1:3 अर्थात प्रति किलोग्राम शारीरिक भार वृद्धि के लिए 3 किलोग्राम या उससे भी कम आहार (सूखा भार) द्वारा होती है।
- **आहार सामग्री की विस्तृत विविधता:** सूकर न्यूनतम या गुणवत्ताहीन अनाज, दाना, सब्जियों की छटन आदि खाकर भी मूल्यवान पौष्टिक मांस में परिवर्तित कर देते हैं। हालांकि, गुणवत्ताहीन एवं असंतुलित आहार खिलाने से आहार रूपांतरण दक्षता कम हो सकती है।
- **लघु पीढ़ी अंतराल:** सूकर में प्रजननशीलता के अधिक होने से एक से अगली पीढ़ी का अंतराल कम देखा जाता है। एक मादा सूकर 8–9 महीने में गर्भ धारण करने के लिए तैयार हो जाती है और प्रतिवर्ष दो बार संतति जनन कर सकने की क्षमता होती है। प्रति प्रसव एक मादा सूकर 6 से 12 संतानों को जन्म देती है।
- **आवास उपकरणों पर न्यूनतम निवेश:** सूकर पालन के लिए विशेष एवं महंगे उपकरण आदि की आवश्यकता नहीं होती है।
- **मांस उत्पादन:** सूकर द्वारा मांस उत्पादन अन्य पशुधन प्रजातियों की तुलना में अधिक होता है एवं इसके कुल भार का 65 से 80 प्रतिशत भाग उपभोग के लिए प्रयुक्त मांस का होता है।
- **गुणवत्तायुक्त मांस:** सूकर के मांस में वसा की उच्च और आद्रता की कम मात्रा होने के कारण यह तुलनात्मक रूप से अधिक पौष्टिक होता है और अन्य पशुओं के मांस की तुलना में अधिक ऊर्जा प्राप्त होती है। साथ ही सूकर के मांस में आवश्यक पोषक तत्वों जैसे थाइमिन, नियासिन और राइबोफ्लेविन आदि की भी प्रचुर मात्रा होती है।
- **चमड़ा एवं खाद का स्रोत:** सूकर मांस प्रदान करने के अलावा, चमड़ा, ब्रिसल्स (कड़े सीधे बाल) और खाद का भी स्रोत है। खाद को व्यापक रूप से कृषि फार्मों और मछली तालाबों के लिए उर्वरक के रूप में उपयोग किया जाता है।
- **त्वरित लाभ:** 6 से 8 महीने की शीघ्र आयु अवधि में सुकरों का शारीरिक भार बढ़कर विपणन योग्य प्राप्त किया जा सकता है जिसके कारण सूकर व्यवसाय द्वारा त्वरित लाभ कमाया जा सकता है।
- **अतिरिक्त मांग:** दिन प्रतिदिन जनता में बढ़ती हुई जागरूकता और गुणवत्ता मांस के कारण मांस, बेकन, हैम, सॉसेज, लार्ड आदि जैसे सूकर उत्पादों के लिए घरेलू और निर्यात बाजार में अच्छी मांग है।
- **रोजगार के अवसर:** सूकर पालन से मौसमी रूप से कार्यरत ग्रामीण किसानों को रोजगार के अवसर मिलेंगे और उनके जीवन स्तर में सुधार के लिए पूरक आय होगी।

सूकर पालन की चुनौतियाँ

देश में कृषि योग्य भूमि की उपलब्धता सीमित होने के कारण इसे बढ़ाया नहीं जा सकता है तथा भविष्य में शहरीकरण के कारण भूमि की उपलब्धता और भी सिमट सकती है। देश में वनों की सीमित मात्रा और सिंचाई के अल्प साधनों के कारण कृषि द्वारा भविष्य की खाद्य आपूर्ति पर्याप्त नहीं होगी। फलस्वरूप पोषण सुरक्षा के लिए पशु प्रोटीन पर निर्भरता का होना वर्तमान एवं भविष्य की मांग है। संसाधनों की सीमित उपलब्धता और पर्यावरण पर दिन प्रतिदिन बढ़ते दबाव को कम करने की दृष्टि से न केवल मनुष्य के लिए बल्कि पशुपालन के लिए भी आहार का उत्पादन एवं उपलब्धता निश्चित करना मुख्य चुनौती होगी। भारत में सूकर पालन के लिए मुख्य चुनौतियाँ निम्नानुसार हैं:

- देश में पर्याप्त संख्या में उत्तम नस्ल और इनके प्रजनक नर एवं मादा सूकरों की कमी।
- उपभोक्ताओं का स्थानीय नस्ल के सूकरों के मांस को कम प्राथमिकता।
- वैज्ञानिक ढंग से सूकर पालन संबंधित जानकारी की कमी (उत्तम आवास एवं प्रबंधन के साथ–साथ रोगों से बचाव संबंधी जानकारी की आवश्यकता)।
- स्थानीय बाजार की सीमित एवं विच्छिन्न उपलब्धता।

सूकर पालन संबंधित महत्त्वपूर्ण तथ्य

व्यवसायिक स्तर पर सूकर पालन प्रारम्भ करने से पहले इस व्यवसाय से संबंधित हर संभव जानकारी ज्ञात करना अधिक श्रेयस्कर होगा। सूकर पालन व्यवसाय शुरू करने के लिए कुछ आवश्यक बातें निम्नलिखित हैं:

स्थान का चयनः सूकर पालन प्रारम्भ करने से पहले सर्वप्रथम उपयुक्त जगह का चयन करना बहुत महत्वपूर्ण है। सूकर पालन के लिए भूमि का चयन करते हुए सूकरों के सभी मूलभूत सुविधाओं की उपलब्धता सुनिश्चित करने का प्रयास करें एवं भूमि का चयन करते समय निम्न बिन्दुओं को ध्यान में अवश्य रखना चाहिए :

- सुकरों की संख्या के अनुसार जगह व स्वच्छ ताजे पानी की पर्याप्त उपलब्धता।
- उपयुक्त बाजार से समीपता व फार्म से बाजार तक अच्छी परिवहन व्यवस्था।
- क्षेत्र में पशु चिकित्सा सेवा की उपलब्धता।
- जल निकास (निस्तारी) एवं अपशिष्ट अपवहन की व्यवस्था।

उत्तम नस्ल का चयनः भूमि का चयन करने के बाद अच्छी नस्लों के उत्पादक सूकरों का चयन सबसे महत्वपूर्ण चरण है। वैश्विक स्तर पर सूकरों की कई विकसित प्रजातियां उपलब्ध है परंतु वह सभी नस्ल भारतीय परिप्रेक्ष्य में उपयुक्त हो यह जरूरी नहीं। अधिकतर भारतीय कृषक कम उत्पादकता वाले छोटे आकार एवं स्थानीय सूकर नस्लों का पालन कर रहे हैं, फलस्वरूप वांछित उत्पादन प्राप्त नहीं हो पाता। अधिक मांस उत्पादन के लिए अधिक मांस उत्पादक सूकर नस्लें जैसे बडे/मध्यम सफेद यॉर्कशायर, लैंड्रेस, बर्कशायर, हेम्पशायर आदि का चयन करना होगा। इन सूकर नस्लों के मुख्य लक्षण निम्नलिखित हैं :

बड़े/मध्यम सफेद यॉर्कशायरः यह सबसे अधिक प्रचलित विदेशी सूकर नस्ल है। इनका रंग सफेद, चमड़ी गुलाबी, कान खड़े, चेहरा मोटा, शरीर भारी और थूथन मध्यम लंबाई के होते हैं। एक वयस्क नर सूकर और मादा सूकर का वजन औसतन क्रमशः 300 से 400 कि॰ग्रा॰ एवं 230 से 320 कि॰ग्रा॰ होता है। यह सूकर नस्ल संकरण के उद्देश्य से एक उत्कृष्ट नस्ल है। मादा सूकर 10–14 बच्चे/प्रसव पैदा करती है।

लैंड्रेसः लैंड्रेस एक अधिक मांस उत्पादक सूकर नस्ल है। इनका शरीर लंबा, कान लटके हुए और थूथन लम्बे होते हैं। मूलतः सफेद रंग परंतु शरीर में कभी काले धब्बे भी मिल सकते हैं। इनमें वयस्क सूकर का वजन 270 से 360 कि॰ग्रा॰ और वयस्क मादा का लगभग 200 से 320 कि॰ग्रा॰ होता है। मादा सूकर 8–10 बच्चे/प्रसव पैदा करती है। भारत में वाणिज्यिक सूकर पालन के लिए यह सबसे उपयुक्त है।

उपरोक्त नस्लों के साथ, कुछ अन्य नस्लें भी भारत के मौसम के अनुसार सूकर पालन के लिए उपयुक्त हैं जैसे हेम्पशायर, बर्कशायर एवं कुछ स्थानीय नस्ल जैसे घुंघरू इत्यादि। लेकिन बड़े/मध्यम सफेद यॉर्कशायर और लैंड्रेस व्यवसायिक उत्पादन के लिए सबसे ज्यादा उपयुक्त माने जाते हैं।

आवास प्रबंधन

सफल सूकर व्यवसाय के लिए उपयुक्त आवास अनिवार्य है क्योंकि यह उन्हें न केवल आरामदायक आश्रय देता है बल्कि खराब मौसम, परजीवी और विभिन्न प्रकार के रोगों से भी सुरक्षित रखता है। सूकरों के लिए आवास का निर्माण करते समय सभी प्रकार की आवश्यक सुविधाएं जैसे पानी, चारा पात्र, वायुसंचार, खुली जगह आदि उपलब्ध कराने चाहिए और साथ–साथ निम्न विशेष बिन्दुओं का अवश्य ध्यान रखना चाहिएः

- सस्ता, मजबूत, हवादार एवं आरामदायक आवास।
- जनक नर सूकर, गर्भवती मादा और बढ़ते युवा सूकरों के लिए पृथक आवास।
- नवजात सूकरों के लिए क्रेच का निर्माण।
- आवास में छत की ऊंचाई पर्याप्त होनी चाहिए ताकि अधिक ताप से बचाव हो सके।
- शुद्ध विदेशी नस्ल के सूकरों के लिए गर्मी में कूलर–पंखे व छायादार खुली जगह की व्यवस्था।

आहार प्रबंधन

सूकर पालन में निवेश का सबसे महत्वपूर्ण और बड़ा हिस्सा आहार पर होता है। सूकरों का शारीरिक भार, प्रजनन और स्वास्थ्य, आहार की गुणवत्ता और पोष्टिकता पर निर्भर करता है। अतः आहार तैयार करते समय सस्ते परंतु पोष्टिक घटक

का चुनाव करना चाहिए। सूकर आहार की मूल सामग्री में ऊर्जा स्त्रोत मक्का, गेहूँ, चावल, जई, ज्वार और बाजरा इत्यादि प्रोटीन स्त्रोत जैसे तिलहन केक, मछली और मांस के अवशेष से तैयार आहार में लवण एवं खनिज पूरक और विटामिन होते हैं। यदि सूकरों को थोड़ी देर चरागाह में घास और फलियां चरने दें तो उत्तम है। सूकरों को उनकी आयु और वजन के अनुसार आहार देना चाहिए। पोष्टिक भोजन के साथ–साथ, स्वच्छ और ताजे पानी की पर्याप्त मात्रा में उपलब्धता अति आवश्यक है।

प्रजनन प्रबंधन एवं चयन

सामान्यतः 6–8 महीने की आयु में नर एवं मादा सूकर प्रजनन के लिए उपयुक्त हो जाते हैं। मादा सूकर की गर्मी की अवधि 2 से 3 दिन लम्बी होती है। गर्भाधान के लिए युवा मादा सूकर की गर्मी की अवधि का पहला दिन और वयस्क मादा के लिए दूसरा दिन सबसे अच्छा होता है। गर्भ काल लगभग 114 दिनों का होता है और एक मादा सूकर दो से दस दिन दूध पिलाने के बाद फिर से प्रजनन के लिए तैयार हो जाती है। इस प्रकार एक मादा सूकर वर्ष में दो बार बच्चों को जन्म देती है और प्रत्येक प्रसव में 8 से 12 बच्चे दे सकती है।

सामान्य प्रबंधन

नवजात सूकरों की विशेष देखभाल करें क्योंकि उनकी अधिकतम उत्तरजीविता ही लाभ का निर्धारण करती है। सूकर बुखार, एफएमडी आदि के अनुशंसित टीकाकरण कार्यक्रम का पालन करें एवं उन्हें रोगों से मुक्त रखने की कोशिश करें। प्रजनन उद्देश्य के लिए कुछ नर सूकरों को रख कर शेष की 3 से 4 सप्ताह बाद नसबंदी की जा सकती है। इसके अलावा प्रजनन सूकर, बच्चे और गर्भवती मादा के बारे में बहुत सावधानी रखें। सूकरों को शांत वातावरण में रखें, परिसर में आवारा पशुओं पर नियंत्रण रखें एवं स्वच्छता का विशेष ध्यान दें।

विपणन एवं मंडीकरण

वर्तमान में सूकर मांस की भारत में कई स्थानों पर अच्छी घरेलू मांग है। पशुपालक अपने उत्पादों को स्थानीय बाजार या निकटतम शहरी बड़े बाजारों में सुगमतापूर्वक बेच सकते हैं। प्रगतिशील सूकर पालक सूकर मांस प्रसंस्करण द्वारा निर्यात और वैश्विक बाजार को भी लक्षित कर सकते हैं। आवश्यकता है तो सूकर पालन व्यवसाय के आर्थिक महत्व के बारे में जागरूकता एवं जानकारी होने की। यदि कृषक घरेलू अथवा वाणिज्यिक सूकर पालन इकाई की स्थापना में रुचि रखते हैं तो अपने राज्य के कृषि पशुपालन विश्वविद्यालयों से संपर्क कर कौशल विकास संबंधित प्रशिक्षण कार्यक्रमों में हिस्सा लेकर अपनी जानकारी बढ़ा सकते हैं।

निष्कर्ष

वाणिज्यिक सूकर पालन एक बहुत ही लाभप्रद व्यवसाय है, जिसकी भारतीय एवं वैश्विक बाजार में व्यापक संभावनाएँ हैं। वर्तमान में केंद्र एवं विभिन्न राज्य सरकारों द्वारा भी इस व्यवसाय के विशिष्ट गुणों की महत्ता को देखते हुए सीमांत किसानों के लिए सूकर पालन को बहुत प्रोत्साहित किया जा रहा है। प्रायः पशुपालकों द्वारा इस व्यवसाय को पांरपरिक पद्धति से किया जाता रहा है जिसके लिए स्थानीय तौर पर पायी जाने वाली सूकर नस्लों का उपयोग किया जाता रहा है। परंतु अधिक लाभ लेने के लिए वैज्ञानिक पद्धति द्वारा सूकर पालन किया जाना अधिक श्रेयस्कर होगा। अप्रत्यक्ष रूप से यह गरीब परिवारों के लिए नियमित आय का एक महत्वपूर्ण स्रोत है तथा न्यूनतम खर्च एवं बहुत कम देखरेख में सूकर पालन को किया जा सकता है जोकि किसानों के सामाजिक एवं आर्थिक सशक्तिकरण में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभा सकता है। अतः वर्तमान समय में आवश्यकता केवल यह है कि सूकर पालन की उपयोगिता एवं महत्ता से संबंधित प्रशिक्षण एवं जागरूकता कार्यक्रमों में भी तेजी लायी जाए जिससे अधिक से अधिक पशुपालकों को लाभ मिल सके।

समाप्त

नीरज कश्यप, भारती देशमुख एवं बी॰के॰ बंसल
गुरु अंगद देव पशु चिकित्सा एवं पशु पालन विश्वविद्यालय, लुधियाना (पंजाब)
E-mail: Neeraj.vety@gmail.com

संतति परीक्षण द्वारा दुधारू पशुओं का आनुवंशिक सुधार

भारत एक कृषि प्रधान देश है जिसमें पशुपालन भी एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है क्योंकि यह दो तिहाई से अधिक आबादी की आजीविका सुरक्षा का साधन है। यद्यपि वर्तमान में कृषि के क्षेत्र में वृद्धि लगभग स्थिर सी हो गयी है, लेकिन कृषि, पशुपालन, मत्स्य पालन और वानिकी क्षेत्र में कुल उत्पादन के वर्तमान मूल्य पर पशुधन का योगदान लगभग एक चौथाई (25.8 प्रतिशत) है। वर्ष 2012–13 के दौरान कुल सकल घरेलू उत्पादन में पशुधन का कुल योगदान मौजूदा कीमतों पर लगभग 4.11 प्रतिशत है जोकि वर्ष 2015–16 में लगभग 4.5 प्रतिशत दर्ज किया गया। 19वीं पशुधन गणना (2012) के अनुसार गायों और भैंसों में प्रजनन योग्य पशुओं की संख्या (दूधारू व सूखे) 111.09 मिलियन से बढ़कर 118.59 मिलियन हो गई जिसमें 6.75 प्रतिशत की वृद्धि हुई है। इसी तरह, गायों और भैंसों में दुधारू पशुओं की संख्या 77.04 मिलियन से बढ़कर 80.52 मिलियन होकर 4.5 प्रतिशत की वृद्धि दर्ज हुई है। विदेशी/संकर दुधारू पशु 14.4 मिलियन से बढ़कर 19.42 मिलियन हो गए, जिसमें 34.78 प्रतिशत की वृद्धि हुई, जबकि देशी दुधारू मवेशियों में मामूली रूप से 48.04 मिलियन से बढ़कर 48.12 मिलियन के साथ 0.17 प्रतिशत की वृद्धि हुई। पिछली पशु गणना में 4.95 प्रतिशत की वृद्धि के साथ दुधारू भैंस 48.64 मिलियन से बढ़कर 51.05 मिलियन हुई। क्षेत्रवार गौवंश गणना से यह प्रतीत होता है कि हरियाणा सहित उत्तर क्षेत्र में भैंस की संख्या सबसे अधिक है, दक्षिण में सबसे अधिक संकर गायें हैं और पूर्वी क्षेत्र में देशी नस्ल के पशुओं की संख्या अधिकतम है।

भारत में दूध उत्पादन एवं इसकी प्रवृत्ति

वर्ष 2017–18 में 176.3 मिलियन टन दूध उत्पादन के साथ भारत ने कुल दूध उत्पादन में विश्व में अग्रणी स्थान प्राप्त किया है और देश में प्रति दिन प्रति व्यक्ति 375 ग्राम दूध की उपलब्धता सुनिश्चित हुई है। हमारे देश में वर्ष 2017 में विश्व के गाय एवं भैंस के दूध उत्पादन का क्रमशः 12.38 और 71.67 प्रतिशत योगदान रहा है। देश में दूध उत्पादन के आंकडों से स्पष्ट होता है कि कुल दूध उत्पादन का लगभग 39.71 प्रतिशत गायों और 54.47 प्रतिशत भैंसों से उत्पादित हुआ और शेष उत्पादन बकरियों द्वारा किया गया। संकर गायों द्वारा लगभग 24 मिलियन टन दूध का योगदान किया गया। यद्यपि देश में संकर गायों की संख्या कुल गायों का केवल 12.08 प्रतिशत ही है तथापि इनका योगदान गायों के कुल दूध उत्पादन का लगभग 44.67 प्रतिशत है, जो यह दर्शाता है कि हम देश में कुछ कृषि जलवायु क्षेत्रों में संकर गायों की उपेक्षा नहीं कर सकते। क्षेत्र आधारित दूध उत्पादन से यह पता चलता है कि भारत में केवल 16 राज्यों द्वारा कुल गौवंश दूध का लगभग 94.67 प्रतिशत उत्पादन किया जाता है, जबकि शेष 5.33 प्रतिशत गौवंश दूध 12 अन्य राज्यों और 7 केंद्र शासित प्रदेशों द्वारा उत्पादित किया जाता है। भारत में दूध व दूध उत्पादों की मांग 2020 तक 191.3 मिलियन टन हो जाने का अनुमान है।

घरेलू और अंतर्राष्ट्रीय बाजार में दूध की मांग और भी बढ़ने की उम्मीद है क्योंकि हमारे देश में जनसंख्या वृद्धि, शहरीकरण और आय के स्तर में लगातार सुधार हो रहा है। दूध और दूध उत्पादों की बढ़ती मांग से संभावित आर्थिक लाभों के दोहन के लिए, भारतीय डेयरी क्षेत्र को मौजूदा विकास की तुलना में उच्चतर दर पर दूध उत्पादन में वृद्धि करने के साथ–साथ मूल्यवर्धित गुणवत्तापूर्ण डेयरी उत्पादों के उत्पादन में भी वृद्धि की आवश्यकता है। हमारे देश में उपस्थित सुपरिभाषित दुग्ध उत्पादक नस्लों की गायों के उत्पादन संबंधी आर्थिक लक्षणों में बहुत अधिक विविधता होने के कारण उत्पादन के साथ ही विपणन के क्षेत्र में भी विकास की बहुत अधिक संभावनाएं हैं। देश में डेयरी पशुओं के समग्र सुधार के लिए विभिन्न राज्यों, केंद्र शासित प्रदेशों, सरकारी संस्थानों, डेयरी विकास एजेंसियों और सार्वजनिक–निजी भागीदारियों की मदद से विभिन्न नस्ल सुधार योजनाओं का कार्यान्वयन किया जा रहा है।

दुधारू पशुओं में आनुवंशिक सुधार

दुधारू पशुओं के दुग्ध उत्पादन में सुधार के दो तरीके हैं, पशु प्रबंधन एवं आहार में सुधार एवं नस्ल सुधार। प्रबंधन में सुधार से त्वरित परिणाम प्राप्त होते हैं। जबकि नस्ल सुधार द्वारा पशु की उत्पादकता में किए गए सुधार न केवल स्थायी होते हैं अपितु

अगली पीढ़ियों में भी वंशानुगत होते हैं। डेयरी पशुओं का आनुवंशिक सुधार चयनात्मक पशु प्रजनन संबंधित तकनीकों पर निर्भर करता है। भारत सहित अधिकांश विकासशील देशों में पशु प्रजनन प्रौद्योगिकियाँ अधिक उन्नत नहीं हो पायी है, क्योंकि यह पर्यावरणीय भौगोलिक विभिन्नता, खंडित खेती, पर्याप्त पशुधन आनुवंशिक विविधता, ग्रामीण परिवारों में जागरूकता, कुशल प्रजनन तकनीक, तकनीशियन एवं संसाधनों की उपलब्ध्ता जैसे अन्य कई प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष कारणों से प्रभावित होते हैं। परिणामस्वरूप, देश में उपलब्ध महत्वपूर्ण आनुवंशिक संसाधनों के बावजूद, विकसित देशों के डेयरी पशुओं की तुलना में भारत में सामान्य रूप से डेयरी पशुओं की उत्पादकता बहुत कम है। इस प्रकार दुधारू पशुओं के आनुवंशिक सुधार संस्थागत/संगठित झुंड और क्षेत्र की स्थिति में बिलकुल भिन्न होगा।

डेयरी पशुओं के आनुवंशिक सुधार में निम्न सुधार शामिल हैं :

- डेयरी पशुओं का प्रजनन लक्ष्य
- आनुवंशिक संसाधनों के प्रकार
- डेयरी पशु प्रजनन नीति और कार्यक्रम
- वैज्ञानिक हस्तक्षेप और मानव संसाधन
- प्रदर्शन संबंधित अभिलेख
- संतति परीक्षण – प्रजनन सांड का मूल्यांकन
- उत्तम जनन द्रव्य का उपयोग और प्रसार
- भविष्य की पशु प्रजनन प्रौद्योगिकियों को प्रचारित करना

पशुधन उत्पादकता की वृद्धि में मार्गदर्शन करने के लिए पशु प्रदर्शन अभिलेख प्रमुख साधन रहा है और सभी विकसित देशों में पशु उत्पादकता के अभिलेखन हेतु स्पष्ट दिशा निर्देश एवं सुगम तकनीक किसानों को उपलब्ध है। पशुधन उत्पादकता के विकास एवं पशुओं के सटीक आनुवंशिक मूल्यांकन के लिए प्रजनन, आहार, आवास, सामान्य एवं विशेष देखरेख संबंधी प्रबंधन में प्रगतिशील सुधार की आवश्यकता होती है जिसमें अभिलेख की अत्यंत महत्वपूर्ण भूमिका है।

भारत में कई शासकीय और गैर–शासकीय संगठनों द्वारा दुग्ध उत्पादक पशुओं के लिए नस्ल सुधार कार्यक्रमों का संचालन किया जा रहा है। हालांकि पशुओं के प्रदर्शन संबंधी अभिलेख बहुत कम पशुपालकों द्वारा उचित ढंग से रखी जाती है। सरकारी (राष्ट्रीय कृषि अनुसंधान परिषद, राष्ट्रीय डेयरी विकास बोर्ड तथा राज्य पशुपालन विभाग) एवं गैर सरकारी संगठन जैसे भारत एग्रो इंडस्ट्रीज फाउंडेशन आदि भी डेयरी पशु प्रदर्शन अभिलेख एवं सांड के संतति परीक्षण की दिशा में विकास के लिए प्रयासरत रहे हैं।

अधिकांशतः पशुपालक सीमांत किसान या भूमिहीन परिवार है जिन्होंने परंपरागत रूप से फसल–पशुधन एकीकृत कृषि प्रणाली को अपनाया है। कृत्रिम गर्भाधान की सुविधा का आगमन और इसकी व्यापक तौर पर स्वीकृति से दुधारू पशुओं में कृत्रिम गर्भाधान व्यापक स्तर पर संभव हो सका है। परंतु अभी भी आनुवंशिक रूप से प्रमाणित उन्नत सांडों के तरल एवं हिमकृत वीर्य की उपलब्धता वर्तमान में देश के कुल पशुधन के आधे से भी कम के लिए ही पर्याप्त हो पाएगी। भविष्य में उन्नत जननद्रव्य की यह मांग और तेजी से बढ़ने की संभावना को देखते हुए उन्नत सांडों की अधिक संख्या को आनुवंशिक रूप से प्रमाणित करने की आवश्यकता है।

संतति परीक्षण कार्यक्रम

जब नर (सांड) का मूल्यांकन उसकी मादा संतति के उत्पादन एवं प्रजनन प्रदर्शन की उत्कृष्टता के आधार पर किया जाता है, तो इस प्रक्रिया को संतति परीक्षण कहा जाता है। पशुओं के आनुवंशिक परीक्षण की पारंपरिक तकनीकों में संतति परीक्षण को सर्वश्रेष्ठ और सटीक माना गया है। यदि किसी क्षेत्र में एक नस्ल के पशुओं की बड़ी संख्या उपस्थित है और वहाँ कृत्रिम गर्भाधान की सुविधा है, तो उस नस्ल में आनुवंशिक सुधार करने के लिए संतति परीक्षण सर्वोत्तम विकल्प है।

लघु स्तर पर संतति परीक्षण कार्यक्रम की रूपरेखा

उत्तम सांड एवं मादा से उत्पन्न कुछ श्रेष्ठ युवा सांड को परीक्षण में रखने से इस कार्यक्रम का प्रारम्भ किया जा सकता है। प्रजनक सांडों का प्रथम चयन उसकी माता और पिता की माता के दूध उत्पादन की श्रेष्ठता के आधार पर जन्मोपरांत ही हो सकता है। युवा सांडों का द्वितीय चयन 1 से 2 वर्ष की आयु के मध्य उनकी नस्ल संबंधित विशेषताओं, वृद्धि दर और स्वभाव के आधार पर होता है। चयन के तृतीय चरण में युवा सांडों का चयन उनकी जनन कुशलता संबंधित गुणों जैसे वीर्य की गुणवत्ता एवं मात्रा, कामवृत्ति सूचकांक, वृषणकोष की परिधि आदि के आधार पर किया जाता है। चयनित सांडों का जननद्रव्य पर्याप्त संख्या में हिमकृत करके परीक्षण के लिए गांवों में वितरित किया जाता है। यह सुनिश्चित करना आवश्यक है कि आनुवंशिक आंकलन करने के लिए प्रति सांड कम से कम 30 मादा संतति के प्रथम ब्यांत का पूर्ण एवं विश्वसनीय अभिलेख उपलब्ध हो। परीक्षण में से अग्रणी 10–20 प्रतिशत सांडों को प्रमाणित सांडों के रूप में स्वीकृत किया जाता है एवं इन सांडों के हिमकृत वीर्य का उपयोग व्यापक तौर पर नस्ल सुधार के लिए किया जा सकता है। अब झुंड के अभिलेख से ज्ञात सर्वोत्तम उत्पादकता वाली 10 प्रतिशत गायों का उपयोग इन उत्तम प्रमाणित सांडों के साथ मनोनीत मिलाप द्वारा अगली पीढ़ी के युवा सांड के उत्पादन के लिए किया जाता है। इन युवा सांडों को फिर से परीक्षण के लिए रखा जाता है और यह चक्र दोहराया जाता है।

संतति परीक्षण द्वारा आनुवंशिक लाभ

संतान परीक्षण का मुख्य उद्देश्य प्रजनक सांड का एकल या अधिक झुंड में उसकी मादा संततियों के 305 दिन की दूध की पैदावार के अभिलेख का उपयोग करके आनुवंशिक सूचकांकों के आधार पर मूल्यांकन करना है। सभी सांडों को उनके सूचकांक के आधार पर क्रमबद्ध किया जाता है, जिसमें शीर्ष क्रम के 20–30 प्रतिशत सांडों को उत्तम जननद्रव्य के उत्पादन के लिए प्रमाणित सांड के रूप में भविष्य में उपयोग के लिए चुना जाएगा। संतति परीक्षण कार्यक्रम के अंतर्गत गायों और भैंसों में आनुवंशिक सुधार के लिए भारत में अन्य संस्थानों के साथ संपर्क स्थापित करके बड़े पैमाने पर उत्तम जननद्रव्य के निरंतर रख–रखाव और उत्पादन को सुनिश्चित करके किया जाना चाहिए।

देश मे कार्यान्वित हो रहे पारंपरिक प्रजनन कार्यक्रमों ने निःसंदेह दूध उत्पादन में आनुवंशिक उत्थान के संदर्भ में महत्वपूर्ण योगदान दिया है। गायों और भैंसों में दुग्ध उत्पादन के लिए अपेक्षित आनुवंशिक उन्नति लगभग 1–2 प्रतिशत प्रतिवर्ष तक होता है।

उत्तम जननद्रव्य का उपयोग एवं प्रसार

देश के विभिन्न राज्यों में गाय एवं भैंस की विभिन्न नस्लों में आनुवंशिक सुधार के लिए संतति परीक्षण कार्यक्रम केंद्र अथवा राज्य सरकार द्वारा चलाये जा रहे हैं। कुलीन झुंडों की स्थापना के लिए संगठित झुंड में आनुवंशिक रूप से श्रेष्ठ एवं संतति परीक्षित सांडों के वीर्य का उपयोग श्रेष्ठ मादा द्वारा मिलाप के लिए किया जाता है जिससे सर्वश्रेष्ठ कुलीन सांडो को उत्पन्न किया जा सके। इन सिद्ध एवं सर्वश्रेष्ठ कुलीन सांडों का उपयोग देश के विभिन्न डेयरी विकास संस्थाओं के साथ–साथ किसानों के गायों एवं भैंसों के झुंड में आनुवंशिक सुधार लाने के लिए उपयोग किया जाता है।

संतति परीक्षण की चुनौतियाँ

संतति परीक्षण एक सतत चलने वाला चक्र है जिसमें समय और संसाधनों के बड़े निवेश की आवश्यकता होती है। फलस्वरूप इस तकनीक के कुछ सीमांकन कारक भी हैं। संतति परीक्षण क्रमशः सांडों के प्रजनन परिपक्वता, वीर्य संचयन, परीक्षण झुंड में कृत्रिम गर्भाधान, पुत्रियों की प्रजनन परिपक्वता और अंततः पुत्रियों के 305 दिनों के दूध उत्पादकता के अभिलेखन तक चलता है। इस प्रक्रिया में सांडों के प्रमाणित होने में लगभग 5–8 वर्ष का लंबा समय लग जाता है। इस समय अंतराल के बाद सांड या तो वीर्य संकलन के दृष्टिकोण से अधिक आयु के हो चुके होते हैं या किन्हीं कारणवश उन्हें झुंड से प्रतिस्थापित कर दिया जाता है। अतः भविष्य में परीक्षित सांड का उपयोग नस्ल सुधार में करने के लिए प्रति सांड न्यूनतम 10,000 हिमकृत वीर्य डोज संरक्षित करके रखे जाएं। प्रति सांड न्यूनतम 30 मादा संतति प्राप्त करने के लिए कम से कम प्रति सांड 100–120 मादाओं का कृत्रिम गर्भाधान अनिवार्य होता है। इस प्रकार 10 सांडों के संतति परीक्षण के लिए 1000 से 1200 प्रजनन योग्य मादा पशुओं की आवश्यकता होती है। संतति परीक्षण के दौरान अवांछनीय गर्भाधान रोकने के लिए चिन्हित सांडों के

अतिरिक्त अन्य सभी सांडों का बंध्यकरण अनिवार्यतः करना चाहिए। यह आवश्यक होता है कि जिन पशुओं का चयनित सांडों से कृत्रिम गर्भाधान किया गया है, उनके मादा संतानों को यथासंभव प्रथम ब्यांत के 305 दिन के दूध उत्पादन तक अनुकूल एवं समान प्रबंधन परिस्थितियों में रखा जाए। क्योंकि संतति परीक्षण में सांडों का मूल्यांकन पुत्रियों के अभिलेख के आधार पर होता है अतः इन मादा संतानों के सभी प्रकार के वृद्धि, उत्पादन एवं प्रजनन संबंधी त्रुटिहीन अभिलेखन की उपलब्धता भी सुनिश्चित करनी चाहिए। इन समस्त प्रक्रियाओं के लिए बड़ी संख्या में प्रशिक्षित कर्मियों की आवश्यकता होती है। त्रुटिहीन अभिलेखन के लिए पशुपालकों में जागरूकता एवं प्रशिक्षण अनिवार्य है। सभी बिन्दुओं पर ध्यान देने से यह स्पष्ट है कि संतति परीक्षण एक कुशल संस्थान के नेतृत्व एवं मार्गदर्शन व आर्थिक अनुदान/निवेश की उपलब्धता में ही संभव है।

अंत में यह उल्लेख करना अनिवार्य होगा कि एक सफल संतति परीक्षण से जो लाभ पशुओं के आनुवंशिक उत्थान के रूप में प्राप्त होता है वह समस्त चुनौतियों से कहीं बढ़कर और स्थायी है। पशुपालकों को जागरूक रहकर पता करना चाहिए कि आपके क्षेत्र में संतति परीक्षण किसी संस्थान द्वारा चलाया जा रहा है। यदि हाँ, तो कोशिश करें उसका हिस्सा बनने की, और यदि नहीं तो प्रयास करें कि आप तक यह तकनीक पहुँच सके। यदि पशुपालक किसान पहले से ही संतति परीक्षण कार्यक्रम के भागीदार हैं, तो वे जागरूक हों और त्रुटिहीन अभिलेखन द्वारा इस कार्यक्रम की सफलता में अपना अमूल्य योगदान दें।

समाप्त

हमें जो मिलता है, उससे जीविका बना सकते हैं,
लेकिन जो देते हैं, वह जीवन बनाता है।

प्रदीप कुमार मिश्रा, प्रदीप कुमार, एस॰ एन॰ सिंह, मिथलेष कुमार पाण्डेय एवं डी॰ पी॰ सिंह
कृषि विज्ञान केन्द्र, नरेन्द्र देव कृषि एंव प्रौद्योगिक विश्वविद्यालय, सिद्धार्थनगर
E-mail: drpardeepviro@gmail.com

जैविक खाद उपयोग द्वारा कृषि में टिकाऊ उत्पादन

भारत में हरित क्रान्ति की शुरूआत से रासायनिक उर्वरकों के अत्यधिक मात्रा में प्रयोग से फसल उत्पादन में काफी वृद्धि हुई है। लेकिन रासायनिक उर्वरकों के अन्धाधुंध प्रयोग का मृदा के स्वास्थ्य पर भी प्रतिकूल असर पड़ा है। इससे मृदा की संरचना, भौतिक, रासायनिक और जैविक दशा पर प्रतिकूल असर हुआ है, तथा भूमि जल स्तर एवं कृषि उत्पादों की गुणवत्ता में गिरावट आ रही है। इसका सीधा प्रभाव हमारे स्वास्थ्य पर भी पड़ रहा है एवं अनेक घातक बीमारियाँ मनुष्यों एवं पशुओं में हो रही है।

देश का खाद्यान्न उत्पादन वर्ष 2000 में 196 मिलियन टन था जो 2019 में बढ़कर लगभग 281 मिलियन टन है। जिस अनुपात में देश की जनसंख्या बढ़ रही है उसे देखते हुए हमें 2025 तक लगभग 250 मिलियन टन खाद्यान्नों की आवश्यकता पड़ेगी। पिछले दशक में कुल घरेलू सकल उत्पादन में औसतन वृद्धि कम हो रही है, जिसका कारण हमारी मृदा का स्वास्थ्य खराब हो जाना है। हरित क्रान्ति के पश्चात् हमारी परंपरागत खेती धीरे–धीरे उच्च तकनीकी वाले व्यवसाय में बदल गई। नतीजन हम मृदा को महत्व देना भूल गये जो हमें भरपूर पैदावार देती है। रासायनिक उर्वरकों के लगातार प्रयोग से खेत के मित्र कीट भी धीरे–धीरे समाप्त होने लगे और हमें रोगों से बचाव के लिए कीटनाशकों के प्रयोग पर निर्भर होना पड़ा। लम्बे समय से लगातार कीटनाशकों का प्रयोग हमारे आस–पास की हवा, पानी व जमीन को खराब कर रहे हैं और खेतों में प्रयोग किये गये रासायनिक उर्वरक नदियों और तालाबों में जाकर शैवाल के उगने में मदद कर रहे हैं। ज्यादातर जगहों पर खेती के काम आने वाले रसायन भूमि जल में भी पहुँच गये हैं। ज्यादा सिंचाई होने से मिट्टी खारी होने लगी है जिससे उसकी उर्वरता नष्ट होने लगी है। इन परिस्थितियों को देखते हुए भूमि की उर्वरता बनाये रखने, टिकाऊ फसल उत्पादन हेतु जैविक खेती का महत्व बढ़ गया है।

कृषि रसायनों के विकल्प के रूप में जैविक खेती की उपयोगिता आने वाले भविष्य में अधिक कारगार सिद्ध होगी। जिस तरह से रासायनिक उर्वरकों की कमी एवं इसके दामों में बेतहाशा वृद्धि हो रही है ये किसानों की पहुँच से बाहर होते जा रहे हैं, अतः उपरोक्त बातों को ध्यान में रखते हुए हमें जैविक खादों का उत्पादन बढ़ाना होगा एवं इनकी गुणवत्ता को भी बनाये रखना होगा।

जैविक खाद कृषि योग्य भूमि में पाये जाने वाले उपयोगी सूक्ष्म जीवों का कल्चर है जो वायुमण्डलीय नाइट्रोजन को जमीन में स्थिर करते हैं एवं इसके प्रयोग से मृदा में कार्बन प्रतिशत की मात्रा बढ़ती है। मृदा की भौतिक एवं रासायनिक दशा में सुधार होता है, पोषक तत्वों की उपलब्धता व जल धारण क्षमता बढ़ती है। जैविक खादों के प्रयोग से रासायनिक उर्वरकों की खपत में कमी आयेगी एवं इसके साथ ही हमारा पर्यावरण भी सुरक्षित रहेगा। जैविक खादों का विवरण निम्न प्रकार हैं :

- नाइट्रोजन जैविक खाद
- राइजोबियम कल्चर
- फॉस्फोरस विलेयक जीवाणु (पी॰एस॰बी॰ कल्चर)
- एजोला
- नील हरित शैवाल
- केंचुआ खाद (वर्मी कम्पोस्ट)

नाइट्रोजन जैविक खाद

नाइट्रोजन जैविक खाद मुख्य जैविक खाद के रूप में हमारे देश में प्रचलित है जिन्हें आमतौर पर टीका या कल्चर के नाम से भी जाना जाता है। जैविक खादों को फसलों में प्रयोग के आधार पर तीन श्रेणियों में बांटा जा सकता है, जैसे दलहनी फसलों के लिए राइजोबियम, गेहूँ, ज्वार, बाजरा, मक्का जैसी खाद्य फसलों के लिए एजोटोबैक्टर या एजोस्पिरिलम और धान के लिए नील हरित शैवाल एवं एजोला।

राइजोबियम में उपस्थित जीवाणु दलहनी फसलों की जड़ों की गांठों में पाया जाता है जो वातावरण में उपस्थित निष्क्रिय नाइट्रोजन को यौगिकीकृत कर पौधों के लिए नाइट्रेट के रूप में उपलब्ध कराते हैं। प्रत्येक दलहनी फसलों की गांठों में भिन्न–भिन्न जाति के जीवाणु गांठे बनाते हैं। अतः जिस दलहनी फसल को बोना हो उसी फसल का राइजोबियम कल्चर उपयोग करना चाहिए।

दलहनी फसलों में कुल आवश्यकता की 80 से 85 प्रतिशत नत्रजन की आपूर्ति राइजोबियम द्वारा की जा सकती है। जिस खेत में राइजोबियम का इस्तेमाल करना हो उसमें पर्याप्त मात्रा में नमी होनी चाहिए व खेत अधिक अम्लीय या अधिक क्षारीय न हो। राइजोबियम कल्चर किसी विश्वसनीय संस्था से ही खरीदना चाहिए। कल्चर का ज्यादा प्रभाव उस खेत में होता है जिसमें विगत कई वर्षों से दलहनी फसलें नहीं ली गई हों। कल्चर को फॉस्फोरस के साथ मिलाकर प्रयोग करना उत्तम रहता है, कल्चर द्वारा उपचारित करने से खेत में राइजोबियम बैक्टीरिया जो नत्रजन वातावरण से एकत्रित करते हैं वह अगले वर्ष की फसल हेतु भी काम आती है।

राइजोबियम कल्चर से बीज उपचार

राइजोबियम कल्चर हेतु लगभग 200 मिली. पानी को गर्म करके इसमें 50 ग्राम गुड़ घोल लिया जाता है। ठण्डा होने पर एक एकड़ के बीज पर राइजोबियम पाउडर छिड़ककर बीजों पर मिला दें। इस उपचारित बीज को छाया में सुखा लें एवं के 2–3 घण्टे बाद बुवाई अवश्य कर दें। ध्यान रखने वाली बात यह है कि उपचारित बीज की बुवाई सांयकाल ही करें।

फॉस्फोरस विलेयक जीवाणु (पी॰एस॰बी॰ कल्चर)

पौधों में फॉस्फोरस अत्यन्त महत्वपूर्ण तत्व है एवं इसकी पूर्ति हम सिंगल सुपर फास्फेट तथा डी॰ए॰पी॰ खादों के माध्यम से करते हैं। आपूर्तित फॉस्फोरस की मात्रा 20 से 25 प्रतिशत ही घुलनशील अवस्था में पौधों की जड़ों को मिल पाता है। बाकी बची फॉस्फोरस की मात्रा अघुलनशील अवस्था में खेत में ही पड़ी रहती है और पौधों की जड़ों को उपलब्ध नहीं हो पाती। इस प्रकार लगातार फॉस्फोरस के प्रयोग से मृदा में फॉस्फोरस की मात्रा बढ़ती जाती है जिससे उत्पादन पर विपरीत प्रभाव पड़ता है। पी॰एस॰बी॰ कल्चर से बीज उपचारित करने पर यह अघुलनशील फॉस्फोरस को घुलनशील अवस्था में बदल देता है जो पौधों को उनकी जड़ों द्वारा मिल जाता है तथा पैदावार में बढोत्तरी हो जाती है।

एजोला

एजोला पानी में पाया जाने वाला फर्न है जो काफी जगह पाया जाता है। इसमें सहजीवी नील हरित शैवाल (*एनाबिना एजोली*) होते हैं जो नाइट्रोजन स्थिरीकरण द्वारा पौधों को नाइट्रोजन उपलब्ध कराने में मदद करतें हैं। यह धान फसल में 100 कि॰ग्रा॰ नाइट्रोजन प्रति हैक्टर तक एकत्रित कर सकती हैं। इसके प्रयोग से 25–35 कि॰ग्रा॰ नाइट्रोजन की बचत हो सकती है तथा मिट्टी का स्वास्थ्य भी सुधारा जा सकता है। एजोला का हरी खाद के रूप में इस्तेमाल करने हेतु खेत में रोपाई से पूर्व खेत को समतल करके एक माह पूर्व 50 से 100 वर्गमीटर आकार की क्यारियाँ बनाकर उसमें 30–50 कि॰ग्रा॰ सिंगल सुपर फास्फेट प्रति हैक्टर की दर से मिला देना चाहिए। इसके पश्चात् क्यारियों को पानी से भर देना चाहिए एवं एजोला फर्न का 100–500 ग्राम प्रति वर्गमीटर की दर से पानी के ऊपर छिड़काव कर देना चाहिए। 15–20 दिनों के पश्चात् एजोला क्यारी को पूरी तरह से ढक लेता है। इसके पश्चात् क्यारी को सुखने दिया जाता है तथा पपड़ी जम जाने पर जुताई करके इसे मिट्टी में मिला दिया जाता है। इसके एक सप्ताह बाद खेत में धान की रोपाई कर दी जाती है।

नील हरित शैवाल

नील हरित शैवाल सभी प्रकार की मृदाओं तथा विभिन्न जलवायु में पायी जाती है जो धान के खेत के लिए अत्यन्त लाभकारी है। नील हरित शैवाल प्रकाश संश्लेषण द्वारा अपनी वृद्धि व विकास कर धान की फसल को नत्रजन उपलब्ध कराती है। स्थिर की गई नत्रजन का कुछ भाग फसल एवं शेष भाग आगामी फसलों को मिलता है एवं इससे मृदा में कार्बन का प्रतिशत बढ़ जाता है।

शैवाल खाद बनाने की विधि

– गैल्वेनाइज्ड (जंगरोधी) लौहे की सीट से बना 02 मीटर लम्बा, 01 मीटर चौड़ा तथा 15 सेंमी. ऊँचा एक चौकोर बरतन लें। किसान इसे ईंट व सीमेन्ट द्वारा भी बना सकतें हैं अथवा खाली पड़ी भूमि में इस आकार का गडढा खोदकर उसमें पोलीथीन सीट बिछाकर भी काम में ले सकते हैं।

- किसी भी विधि से तैयार पात्र/गडढे में 10 कि॰ग्रा॰ दोमट मिट्टी, 200 ग्राम सुपर फास्फेट खाद एवं 02 ग्राम सोडियम नमक डालकर अच्छी तरह से मिला लें। यदि मिट्टी अम्लीय है तो 10 ग्राम चूना भी डाल दें। इसमें 05 से 10 सेंमी. तक पानी भरकर कुछ घंटे के लिए छोड़ दें जिससे मिट्टी अच्छी तरह से बैठ जाये।
- इस पर एक मुट्ठी एल्गी कल्चर (एल्गी बीज) छिड़क दें।
- इसके बाद धूप में रखें जहाँ अच्छी तरह से हवा आती हो। गर्मी के मौसम में धूप की गर्मी से एल्गी की बढ़वार ज्यादा एवं जल्दी होती है। 10 दिनों के पश्चात् पानी की सतह पर काई (एल्गी) की मोटी परत दिखाई देने पर पानी देना बन्द कर देना चाहिए।
- पानी सूखने पर इस परत को खुरच कर एक पोलीथीन बैग में भर लें।
- इस प्रक्रिया को पुनः दोहरायें। इस प्रकार एक बार भरे गये ट्रे से 02 से 03 बार एल्गी फसल ली जा सकती है। एक बार में एक ट्रे से लगभग 1.5 से 02 कि॰ग्रा॰ तक खाद प्राप्त की जा सकती है।

शैवाल प्रयोग करने की विधि

- रोपाई के एक सप्ताह बाद खेत में 03–04 सेंमी. पानी भरकर 10 कि॰ग्रा॰ प्रति हैक्टर की दर से एल्गी खाद छिड़क दें।
- कीटनाशक एवं रोगनाशक दवाओं के प्रयोग से इस पर कोई प्रतिकूल असर नहीं पड़ता।
- एक ही खेत में कई साल तक एल्गी खाद डाली जाती है तो यह पूरी तरह से उस खेत में स्थापित हो जायेगा।

केंचुआ खाद (वर्मीकम्पोस्ट)

वर्मीकम्पोस्ट खाद केंचुए से बनायी जाती है। मिट्टी में मौजूद केंचुए उपलब्ध कार्बनिक और खनिज पदार्थ को ग्रहण करते हैं। मिट्टी में वायु संचार बढ़ाते हैं। केंचुए द्वारा बनाई गई खाद साधारण कम्पोस्ट खाद से कहीं अधिक उपयोगी होती है। केंचुए की विष्ठा हजम की हुई मिट्टी और जैविक पदार्थों से बनी होती है। इसमें हजारों लाभदायक सूक्ष्मजीव एवं केंचुए के अण्डे भरे होते हैं। केंचुए मिट्टी में उपलब्ध पत्तियाँ, टहनियां खाकर खाद बनाते हैं। हानिकारक फफूंदियों को नष्ट करते हैं, जैविक कचरे को विटामिन, एंजाईम, एंटिबायोटिक, हार्मोन और प्रोटीन से भरपूर खाद में बदलते हैं। मिट्टी में जलधारण क्षमता का विकास करते हैं। केंचुआ खाद व देशी गोबर की खाद में पोषक तत्वों की तुलना तालिका 1 में दी गई है।

जैविक खेती के सिद्धान्त

प्राकृतिक संसाधनों का अधिकतम प्रयोग करते हुए भूमि का जीवंत उपयोग करना होता है जिससे टिकाऊ उर्वरता एवं उत्पादकता बनी रहती है। संसाधनों के संरक्षण हेतु प्राकृतिक तकनीकों व कुशल जल प्रबंधन के साथ ही प्राकृतिक सूझबूझ पर आधारित कृषि क्रियाएँ की जाती है। इस प्रकार पर्यावरण मित्र प्रौद्योगिकी अपनाकर टिकाऊ खाद्यान्न सुरक्षा प्रदान की जाती है।

जैविक खेती से लाभ

- जैविक खेती पद्धति से मुनष्य, पशु, पक्षी, कीड़े–मकोडे, भूमि, जल, वायु तथा विभिन्न जैविक व अजैविक घटकों के बीच संतुलन बना रहता है।
- आधुनिक व रासायनिक कृषि की अपेक्षा सस्ती, सरल व स्थान विशेष के अनुकूल है।
- कम लागत व अधिक उपज प्राप्त होने से किसान स्वावलम्बी बनता है।
- कचरे का उचित प्रबंधन होता है जिससे स्वास्थ्य पर प्रतिकूल असर नहीं पड़ता है।
- लाभदायक जीवों का संरक्षण होता है तथा प्राकृतिक संतुलन बना रहता है।
- खेत एवं उसके आस–पास के क्षेत्रों में प्राकृतिक जैव विविधता की सुरक्षा होती है।
- उत्पाद में स्वाद व पौष्टिकता की वृद्धि के साथ उत्पादकता में वृद्धि होती है। मृदा में दीर्घकालीन उर्वरता में वृद्धि होती है।

तालिका 1. वर्मीकम्पोस्ट व देशी गोबर की खाद में पोषक तत्वों की तुलना

पोषक तत्व (प्रतिशत)	वर्मीकम्पोस्ट	गोबर की खाद
नाईट्रोजन	1.6	0.5
फॉस्फोरस	0.7	0.2
पोटैशियम	0.8	0.5
कैल्शियम	0.5	0.9
मैग्नीशियम	0.2	0.2
कार्बन : नाइट्रोजन अनुपात	15.5	31.3

जैविक खेती संबंधी भ्रम

वर्तमान में खेती में रासायनिक उर्वरकों के अन्धाधुन्ध प्रयोग के कारण भूमि का उर्वरता स्तर कम हो रहा है। इस बात को किसान भी समझ रहा है, किन्तु आधुनिक खेती को छोड़कर जैविक खेती अपनाने को बहुत कम किसान तैयार है, क्योंकि उनको भ्रम है कि प्रति हैक्टर उनका उत्पादन कम न हो जाये कि लागत भी प्राप्त न हो और जैविक खेती करने हेतु जैविक खादों की आपूर्ति पूरी होगी या नहीं। यह सही है कि हमारे देश में जैविक खादों का उत्पादन अभी इतना नहीं है कि किसान इसे अपनाकर पूर्ण रूप से जैविक खेती कर सकें।

एक अध्ययन के अनुसार देश में प्रतिवर्ष 280 मिलियन टन गोबर, 6351 मिलियन क्यूबिक मीटर गंदा पानी, 273 मिलियन टन फसल अवशेष, 285 मिलियन टन ग्रामीण कचरा, 66 मिलियन टन औद्योगिक खराब पानी, जंगल की पत्तियाँ 19 मिलियन टन, शहरी कूड़ा 15 मिलियन टन तथा गन्ने की मैली 03 मिलियन टन प्राप्त होता है। तालिका 2 के अनुसार उपर्युक्त जैविक एवं औद्योगिक पदार्थों से 19.419 मिलियन टन नाइट्रोजन, फास्फोरस एवं पोटाश प्राप्त किया जा सकता है। इसके अतिरिक्त लगभग 25–26 मिलियन हैक्टर क्षेत्रफल में दलहनी फसलें उगाई जाती है जो अपनी जड़ों की ग्रन्थियों में राइजोबियम बैक्टीरिया द्वारा नत्रजन का कुछ भाग अगली फसल हेतु छोड़ देती हैं। यदि प्रति हैक्टर 20–25 कि॰ग्रा॰ नत्रजन अवशेष के रूप में इन फसलों से मिलने का अनुमान लगाया जाय तो लगभग 0.5–0.6 मिलियन टन नत्रजन का लाभ प्रति वर्ष प्राप्त किया जा सकता है।

तालिका 2. विभिन्न कार्बनिक स्रोतों द्वारा उपलब्ध पोषक तत्वों की मात्रा

कार्बनिक स्रोत	उपलब्धता (मिलियन टन/वर्ष)	कुल पोषक तत्व (मिलियन टन/वर्ष)	कुल मात्रा		
			नत्रजन	फॉस्फोरस	पोटाश
फसल अवशेष	273	1.28	1.97	3.91	7.16
पशुओं का गोबर	280	2.81	2.00	2.07	6.88
ग्रामीण कचरा	285	1.43	0.86	1.42	3.71
जंगल की पत्तियाँ	19	0.10	0.04	0.10	0.24
शहरी कूड़ा	15	0.23	0.15	0.23	0.61
गन्ने की मैली (प्रेसमड)	03	0.03	0.0079	0.055	0.164
गंदा पानी (मिलीयन मी3)	6351	0.32	0.14	0.19	0.65
औद्योगिक खराब पानी	66	0.003	0.001	0.001	0.005
कुल	–	6.203	5.20	7.976	19.417

निष्कर्ष

देश की बढ़ती जनसंख्या को देखते हुए यह आवश्यक हो गया है कि हम टिकाऊ खाद्य सुरक्षा के साथ ही पोषण सुरक्षा को भी प्राप्त करें। हमारे देश के लगभग 81 प्रतिशत से अधिक लघु व सीमांत किसान जैविक खेती तकनीक को अपनाकर अपनी भूमि की उर्वरता को संरक्षित करके फसल उत्पादन बढ़ाकर आर्थिक रूप से आत्म निर्भर बन सकते हैं एवं पर्यावरण की रक्षा भी कर सकते हैं।

समाप्त

सतीश कुमार सनवाल, अनीता मान, अश्वनी कुमार एवं गुरप्रीत कौर
भाकृअनुप–केन्द्रीय मृदा लवणता अनुसंधान संस्थान, करनाल–132001 (हरियाणा)
E-mail: satishsanwal@rediffmail.com

संकर सब्जी बीज उत्पादन - समस्याएं एवं तकनीकी समाधान

भारत दुनिया का अग्रणी सब्जी उत्पादक देश है। वर्तमान में यह 166.5 मिलियन टन (बागवानी सांख्यिकी, 2015) के वार्षिक उत्पादन के साथ 9.54 मिलियन हैक्टर क्षेत्र में उगाई जाती है। प्रकृति ने देश को विभिन्न जलवायु और विशिष्ट मौसमों का आशीर्वाद दिया है, जिससे सौ से अधिक प्रकार की सब्जियां उगाना संभव है। सब्जियां, उनकी छोटी अवधि, उच्च उपज, पोषण समृद्धि, आर्थिक व्यवहार्यता, खेत और ऑफ–फार्म रोजगार की क्षमता की वजह से भारतीय कृषि और पौष्टिक सुरक्षा के महत्वपूर्ण घटक हैं। सब्जियाँ हमारे दैनिक आहार में प्रोटीन, विटामिन, खनिज, आहार फाइबर, सूक्ष्म पोषक तत्व, एंटीऑक्सीडेंट और पादप रसायन (फाइटोकेमिकल्स) का महत्वपूर्ण स्रोत है। पोषण के अलावा, इनमें कैंसर प्रतिरोधी गुण और एंटीऑक्सीडेंट्स (जैसे फ्लैवोनोइड्स, ग्लूकोसिनोलेट्स और आईसोथायोसिनेट्स) जैसे संभावित पादप रसायनों की एक विस्तृत श्रृंखला भी होती है। आलू (28.9 प्रतिशत), टमाटर (11.3 प्रतिशत), प्याज (10.3 प्रतिशत) और बैंगन (8.1 प्रतिशत) 4 प्रमुख सब्जियां हैं जो हमारे देश में कुल सब्जी उत्पादन का 58.6 प्रतिशत योगदान देती है। अन्य महत्वपूर्ण सब्जियों में गोभी (5.4 प्रतिशत), फूलगोभी (4.6 प्रतिशत), भिंडी (3.9 प्रतिशत) और मटर (2.4 प्रतिशत) हैं। भारत विश्व के 73 प्रतिशत भिंडी उत्पादन के साथ पहले स्थान पर है।

2000–01 के दौरान सब्जियों की उत्पादकता 15 टन/हैक्टर थी जो वर्तमान में बढ़कर 17.3 टन/हैक्टर हो गई है। विभिन्न फसलों की बेहतर किस्मों/संकरों के गुणवत्ता वाले बीजों का उपयोग करने से सब्जी उत्पादन और उत्पादकता में जबरदस्त वृद्धि देखी गई है। हमारे राष्ट्रीय परिप्रेक्ष्य में खुले परागित किस्मों के बीज का उत्पादन पहले ज्यादा होता था परन्तु अब संकर बीज का उत्पादन बढ़ता जा रहा है। देश में सब्जियों के संकर बीज की मांग का एक बड़ा हिस्सा निजी बीज कंपनियों द्वारा पूरा किया जाता है। बीज व्यापारियों का प्रावधान है जो सीधे उत्पादकों से बीज खरीदते हैं। कुछ अच्छी तरह से स्थापित बीज कंपनियां हैं जिनके पास अपना स्वयं का अनुसंधान और विकास स्थापन है। ये कंपनियां संकर बीज पैदा करती है और साथ ही वे अपने विदेशी समकक्षों से बीज आयात करते हैं और उन्हें भारत के बाजार में बेचते हैं। तालिका 1 में विभिन्न सब्जियों के कुल बीज की आवश्यकता, उत्पादन और कमी दर्शायी गयी है।

तालिका 1. भारत में सब्जी बीज की अनुमानित आवश्यकता व उत्पादन

फ़सल	कुल आवश्यकता (टन)	संगठित क्षेत्र से उत्पादन (टन)	अन्य गुणवत्ता बीज (टन)	कमी (टन)	फ़सल	कुल आवश्यकता (टन)	संगठित क्षेत्र से उत्पादन (टन)	अन्य गुणवत्ता बीज (टन)	कमी (टन)
टमाटर	360	190	80	90	प्याज	1200	200	400	600
बैंगन	465	85	50	330	भिंडी	4250	1350	800	2100
मिर्च	200	68	80	52	मूली	650	300	200	150
फूलगोभी	280	130	35	115	गाजर	700	200	250	250
खीरा	70	37	20	13	चुकंदर	400	100	120	180
खरबूजा	110	37	40	33	मटर	6000	1500	2000	2500
तरबूज	320	135	100	85	पत्तागोभी	200	80	60	60
लौकी	615	105	100	410					

सब्ज़ियों के संकर बीज उत्पादन का वर्तमान परिदृश्य एवं प्रणाली

सब्जियों के उत्पादन में संकर प्रौद्योगिकी सबसे नवीन विकल्पों में से एक है। अनाज फसलों की तुलना में संकर सब्जी फसलों की क्षमता 4 से 5 गुना अधिक है। सब्जी प्रजनक संकर प्रजनन का चयन करना पसंद करते हैं क्योंकि एफ 1 संकर में जैविक और अजैविक तनाव के लिए प्रतिरोधी जीन को शामिल करना आसान है और नवविकसित संकर का अधिकार पैतृक संदर्भ में संरक्षित होता है। संकर बीजों की अत्यधिक कीमत के बावजूद संकर किस्मों की खेती पर उत्पादकों की सोच बढ़

रही है क्योंकि उपयुक्त फसल उत्पादन और संरक्षण प्रबंधन के तहत एफ 1 संकर बीज से उगाई फसलों में बेहतर उपज, प्रतिकूल परिस्थितियों के प्रति अनुकूलता सहित कई अलग–अलग फायदे हैं। इसके अलावा संकर बीज उपभोक्ताओं की पसंदीदा गुणवत्ता वाले लक्षणों के साथ–साथ कई जैविक और अजैविक तनावों का प्रतिरोध करने की क्षमता रखते हैं। एफ 1 संकर जापान, नीदरलैंड, डेनमार्क, फ्रांस, कनाडा, ऑस्ट्रेलिया, यूके और यूएसए में टमाटर, पत्तागोभी, ककड़ी, स्क्वैश, खरबूजे, प्याज और मीठी काली मिर्च की खुली परागित किस्मों को लगभग पूरी तरह से प्रतिस्थापित कर चुके हैं। हालांकि भारत ने विशेष रूप से पत्तागोभी, फूलगोभी, टमाटर, ककड़ी, लौकी और करेले के मामले में एक क्रांतिकारी प्रगति की है। भारत में लौकी का पहला सब्जी हाइब्रिड (पुसा मेघदूत) 1971 में भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान के कटराईन केन्द्र द्वारा विकसित किया गया था, इसके बाद समर स्क्वाश (पुसा अलंकार) और ककड़ी (पुसा संजोग) के एफ 1 संकर का विकास हुआ। निजी क्षेत्र में इंडो अमेरिकन संकर बीज कंपनी अग्रणी थी, जिसने 1973 में अपने टमाटर संकर 'कर्नाटक' और शिमला मिर्च संकर 'भारत' का विकास किया। उसके बाद कई सार्वजनिक और निजी क्षेत्रों द्वारा सब्जी फसलों में संकर बीजों के विकास में जबरदस्त प्रगति की है। सार्वजनिक क्षेत्र के संकर बीजों के कम प्रसिद्ध होने के मुख्य कारण प्रचार की कमी, बड़ी मात्रा में पैतृक बीज की अनुपलब्धता और उनके विपणन नेटवर्क की अनुपलब्धता है। निजी क्षेत्र की सफलता का कारण बदलती मांगों, बीज लागत को समायोजित करने में दक्षता, उच्च मूल्य कम मात्रा वाली सब्जियों पर ध्यान और किसान के दरवाजे के पास बीज को उपलब्ध करवाना मुख्य है। अनुमानित सब्जी एफ 1 संकर बीज की आवश्यकता निम्न तालिका 2 में दिए गए विवरण के अनुसार लगभग 3000 टन है।

राष्ट्रीय बीज उत्पादन श्रृंखला में एफ 1 संकर की पैतृक वंशावली के प्रमाणीकरण के प्रावधान भी हैं, लेकिन निजी कंपनियां अपने संकर शामिल करने में रुचि नहीं रखते और पैतृक वंशावली के प्रमाणीकरण की अनुमति नहीं देते हैं। इसलिए निजी क्षेत्र से एफ 1 संकर की पैतृक वंशावलियां आसानी से उपलब्ध नहीं होती है।

संकर बीजों का उत्पादन ज्यादातर निजी बीज कंपनियों द्वारा किया जाता है। क्षेत्र की मृदु जलवायु के कारण अधिकांश अच्छी तरह से स्थापित निजी बीज कंपनियां दक्षिणी भारत विशेष रूप से कर्नाटक और महाराष्ट्र में केंद्रित हैं। यह अनुमान है कि निर्यात के लिए क्षेत्र को छोड़कर, लगभग 25000 एकड़ क्षेत्र घरेलू बाजार के लिए संकर बीज उत्पादन के अधीन है।

भारत में संकर सब्जी बीज बाजार लगभग 105 मिलियन अमेरिकी डॉलर होने का अनुमान है। 1998–2008 के दशक के दौरान, सब्जी के संकर बीजों (194 प्रतिशत) के बाजार में उल्लेखनीय वृद्धि हुई थी। सब्जी बीज उद्योग में निजी क्षेत्र का योगदान बाजार कारोबार का लगभग 9 प्रतिशत है। समशीतोष्ण सब्जियों के एफ 1 संकर बीज हिमाचल प्रदेश और जम्मू व कश्मीर राज्यों में उत्पादित होते हैं। अब उत्तराखंड इस प्रयास में गति प्राप्त कर रहा है। इन फसलों में प्रमुख रूप से फूलगोभी, पत्तागोभी, चुकंदर, समशीतोष्ण गाजर, मूली और शलगम हैं। आमतौर पर हस्त विपुंसीकरण तथा परागण प्रविधि का उपयोग टमाटर, बैंगन, शिमला मिर्च और भिंडी के संकर बीजों के उत्पादन के लिए किया जा रहा है। अब तक भारत में इन फसलों में कोई नर बाँझ प्रणाली का उपयोग नहीं किया गया है। पंजाब में किसानों को मिर्च और खरबूजा के संकर बीज उत्पादन के लिए नर बन्ध्यता के उपयोग के लिए प्रशिक्षित किया जाता है।

संकर बीज उत्पादन के लिए, सब्जियों को दो समूहों में विभाजित किया जा सकता है। (1) हाथ से परागण और (2) जीन–नियंत्रण परागण प्रजातियाँ। आनुवंशिक नियंत्रण प्रणाली स्व–असंगत प्रणाली के कारण हो सकती है जहां एक ही पौधे या फूल के पराग स्वयं को या नर–बाँझ आनुवंशिक तंत्र में परागण कर सकते हैं जहाँ मादा के पौधे में कोई पुरुष, विकृत अंग या कोई कार्यात्मक पराग स्वयं परागण के लिए नहीं होता है। जब ऐसी कोई आनुवंशिक नियंत्रण प्रणाली नहीं मिलती है या जब इसे जन्मजात पैतृक वंशावली में प्रस्तावित नहीं किया जाता है तो संकर बीज बनाने के लिए हस्त विपुंसीकरण तथा परागण का उपयोग किया जाना चाहिए। उच्च जीन आनुवंशिक शुद्धता प्राप्त करने के लिए दोनों विधियों जीन–नियंत्रण प्रणाली और हाथ से परागित प्रजातियों में पर्याप्त क्षेत्र या मादा फूल पृथक्करण दूरी बनाए रखनी चाहिए।

तालिका 2. अनुमानित सब्जी एफ 1 संकर बीज की आवश्यकता

सब्जी	एफ 1 संकर बीज आवश्यकता (टन)	सब्जी	एफ 1 संकर बीज आवश्यकता (टन)
भिंडी	1700	मिर्च	80
लौकी	800	बैंगन	75
तरबूज	130	खीरा	30
गोभी वर्गीय सब्जियां	110	शिमला मिर्च	4
टमाटर	90	अन्य	20

तालिका 3. एफ 1 सब्जी बीज उत्पादन (घरेलू बाजार) के तहत अनुमानित उत्पादन व क्षेत्र

सब्जी	घरेलू उपादन (टन)	क्षेत्र (एकड़)	सब्जी	घरेलू उपादन (टन)	क्षेत्र (एकड़)
टमाटर	67	1787	बैंगन	50	625
तरबूज	120	2400	खीरा	40	667
मिर्च	70	933	तोरी	50	500
भिंडी	1500	15000	करेला	100	1000
खरबूजा	15	250	लौकी	120	640

क्रूसिफेरी सब्जियाँ जैसे *ब्रेसिका ओलेरेशिया* (पत्तागोभी, फूलगोभी, ब्रोकोली, कोल्हाबी), *ब्रेसिका रेपा* (चीनी गोभी, शलजम और एशियाई पत्तेदार ब्रेसिका) और *रेफेनस सेटाइवस* (मूली) में अत्यधिक विकसित आत्म–असंगतता प्रणाली है। क्रूसिफेरी फसलों में आत्म–असंगतता प्रणाली की आनुवंशिकी इतनी अच्छी तरह से विकसित है कि उनमें जीन (लोकाई) और एलील की एक श्रृंखला शामिल है।

संकर सब्जियों के अधिकांश बीज हाथ परागण द्वारा उत्पादित होते हैं। सिद्धांत में विधि सरल है क्योंकि इसमें पराग पैदा करने वाले अंग जैसे परागकणों के अंडकोश निकालना, पुरुष पैत्रिक के पराग के साथ हाथ द्वारा परागण और फिर अन्य पराग से परागण वाले फूलों को दूषित करने से रोकना शामिल है। लागत प्रभावी होने के लिए यह प्रणाली केवल उन प्रजातियों में काम करती है जहाँ मादा फूल का एक परागण कई बीज पैदा करता है। यह सभी फल वाली सब्जियों और बेल वाली सब्जियों के लिए है। इसके विपरीत फलियों में प्रति फूल प्रति फली प्रति बीज की छोटी संख्या हाथ परागण को प्रभावी होने से रोकती है और इस प्रकार कोई संकर बीज आज तक नहीं बनाया गया है। इस मामले में जीन नियंत्रण परागण का उपयोग किया जाना चाहिए।

संकर बीज उत्पादन में बाधाएं

- संकर बीजों का प्राथमिक नुकसान यह है कि बीज को साल–दर–साल बचाया नहीं जा सकता है। संकर पौधों से बचाए गए बीज से आमतौर पर अगले वर्ष उसी प्रकार का पौधा पैदा नहीं होता है।
- उच्च उत्पादन लागतः संकर बीजों को ज्यादातर निजी बीज कंपनियों द्वारा उत्पादित किया जाता है और इसमें उच्च उत्पादन लागत शामिल होती है।
- संकर बीज उत्पादन हस्त विपुंसीकरण तथा परागण के कारण अधिक मानव श्रम वाला उद्यम है।
- संकर बीज उत्पादन केवल तकनीकी रूप से प्रशिक्षित मानव श्रम द्वारा किया जा सकता है।
- संकर बीजों का उच्च मूल्य होने के कारण गरीब किसान इनका उपयोग करने के इच्छुक नहीं होते क्योंकि से कई महंगा बीज नहीं खरीद सकते हैं।
- सार्वजनिक क्षेत्र के संकर बीजों की कम लोकप्रियता और पर्याप्त मात्रा में बीज की अनुपलब्धता।
- आजकल सब्जियों में ज्यादातर संकर बीज निजी क्षेत्र से हैं और वे राष्ट्रीय बीज उत्पादन श्रृंखला के अंतर्गत नहीं आते हैं जिससे उनकी कीमतों पर कोई नियंत्रण नहीं होता है।

बाधाओं को सुलझाने के लिए सुझाव

- उत्पादन लागत कम होनी चाहिए। इसके लिए कम लागत वाली संकर बीज उत्पादन तकनीक विकसित की जानी चाहिए।
- संकर बीज उत्पादन में शामिल श्रम को कम करने के लिए नर बन्ध्यता पुरुष बाँझ और केवल मादा फूलों वाली वंशावली का उपयोग प्रोत्साहित किया जाना चाहिए।
- संकर बीज उत्पादन तकनीकों में किसानों को प्रशिक्षित करने के लिए विभिन्न संस्थानों द्वारा नियमित प्रशिक्षण कार्यक्रम आयोजित किए जाने चाहिए।

- किसानों को उचित मूल्य पर सार्वजनिक क्षेत्र के संकर बीज अधिक से अधिक उपलब्ध कराए जाने चाहिए। इस उपलब्धता से निजी क्षेत्र पर प्रतिस्पर्धी मूल्य प्रभाव हो सकता है और निजी क्षेत्र के संकरों की कीमतों को कम करने में भी मदद करेगा।
- किसानों के बीच सार्वजनिक क्षेत्र के संकरों को अग्रपंक्ति प्रदर्शन आदि के माध्यम से लोकप्रिय किया जाना चाहिए।

निरंतर विकास के लिए सुझाव

यद्यपि देश के सब्जी बीज परिदृष्य के सुधार के लिए बहुत कुछ किया गया है फिर भी अच्छी गुणवत्ता वाली संकर सब्जियों के बीजों में आत्मनिर्भरता प्राप्त करने के लिए और भी कुछ करने की आवश्यकता है। इस दिशा में निम्नलिखित बिंदुओं पर ध्यान देने की आवश्यकता है:

सब्जियों के तहत क्षेत्र का आंकलन : सब्जियों के अन्तर्गत क्षेत्र का एक नया अनुमान लगाने की तत्काल आवश्यकता है। उद्देश्य प्राप्त करने के लिए राष्ट्रीय स्तर पर कृषि/बागवानी, एसएयू, आईसीएआर संस्थानों और गैर सरकारी संगठनों के राज्य विभागों को शामिल करके एक संपूर्ण सर्वेक्षण कार्यक्रम शुरू किया जाना चाहिए ताकि कुल सब्जी क्षेत्र तहसील/तालुका, जिला स्तर पर काम किया जा सके।

बीज की आवश्यकता का आंकलन : एक बार सभी सब्जियों के क्षेत्र के आंकड़े उपलब्ध हो जाते हैं तो कुल बीज की आवश्यकता का आंकलन आसानी से किया जा सकता है। इसके आधार पर प्रजनक, आधारीय और प्रमाणित जैसे बीज की विभिन्न श्रेणियों की आवश्यकता भी तैयार की जा सकती है। इससे विभिन्न बीज उत्पादन कार्यक्रमों की अग्रिम योजना बनाने में मदद मिलेगी ताकि वांछित मात्रा में अच्छी गुणवत्ता के बीज उचित समय और स्थान पर उपलब्ध कराए जा सके और कमियों को पूरा करने के लिए बीज आयात की मात्रा को भी राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था के हित में घटाया जा सके।

भंडारण सुविधाओं का विकास : क्योंकि देश में बीज, सब्जी की खेती की रीढ़ है, इसलिए इन्हें सर्वोच्च प्राथमिकता दी जानी चाहिए। ऐसी सुविधाओं को विकसित करने की आवश्यकता है कि जिस वर्ष में ज्यादा पैदावार हुई है उनको कम तापमान पर भंडारण करके रख सकें और जिस वर्ष बीज कम उत्पन्न हो तो भंडारण किये बीज काम में लाये जा सके। व्यापक परिस्थितियों में बीज लंबे समय तक संग्रहीत नहीं किए जा सकते हैं, उनकी व्यवहार्यता और इस प्रकार बीज के रूप में बहुमूल्य संसाधन खो सकते हैं।

संगठित निजी क्षेत्र का विकास : वर्तमान स्थिति में निजी बीज कंपनियों के अलावा बीज व्यापारियों का प्रावधान है जो अनियंत्रित है, इसलिए उनके द्वारा किए गए बीज कारोबार का कोई रिकॉर्ड नहीं है। यह सब्जी के बीज की कुल राष्ट्रीय मांग और आपूर्ति के बीच में कमी के रूप में कार्य करता है। यद्यपि बाजार में बीज व्यापार पर नजर रखने के लिए बीज अधिनियम है और बीज की गुणवत्ता को सुनिश्चित करते हैं। अनियंत्रित व्यापारी सीधे उत्पादकों से निपटने के लिए इस जाल से बचते हैं और इस प्रकार असंगठित बीज व्यापार का एक हिस्सा बनाते हैं जिसमें कोई गुणवत्ता जांच नहीं होती है। इस प्रकार के बीज व्यापार को संगठित क्षेत्र की छतरी के नीचे भी लाने की तत्काल आवश्यकता है ताकि राष्ट्रीय स्तर पर गुणवत्ता वाले सब्जी के बीज की वास्तविक मांग और आपूर्ति आंकड़े अधिक प्रमाणिक हो जाएं।

सार्वजनिक क्षेत्र के बीज की लोकप्रियता : इस बात का कोई फर्क नहीं पड़ता कि एक सब्जी का बीज कितना अच्छा हो सकता है, लेकिन यदि यह निजी क्षेत्र से आता है, तो कीमतें अधिक होती है क्योंकि निजी कंपनियां मूल रूप से मुनाफा कमाने वाले संगठन है और उन्हें बीज की कीमतें अपनी उत्पादन लागत, प्रतिष्ठान को पूरा करना और उससे अधिक मुनाफा कमाने के हिसाब से रखनी होती है। इन परिस्थितियों में किसानों को सस्ती कीमतों पर अच्छी गुणवत्ता वाले बीज की आपूर्ति के लिए सार्वजनिक क्षेत्र के संगठनों की भूमिका बहुत महत्वपूर्ण हो जाती है। सार्वजनिक क्षेत्र के सब्जी संकर बीज की लोकप्रियता उत्पादकों के लाभ के लिए समान रूप से महत्वपूर्ण है। इसके लिए सार्वजनिक मीडिया का उपयोग और अग्रपंक्ति प्रदर्शन एक अच्छा माध्यम हो सकते हैं।

बीज गांवों का विकास : शुद्धता और गुणवत्ता वाले बीज के उत्पादन को बनाए रखने के लिए 'बीज गांव' की अवधारणा को लाया जाना चाहिए। विभिन्न सब्ज़ियों के तहत क्षेत्र को नियंत्रित करने में सरकार का हस्तक्षेप बीजों की शुद्धता के लिए संस्तुत पृथक्करण दूरी को बनाए रखने की समस्या से निपटने में सहायक होगा।

नए क्षेत्रों में बीज उत्पादन गतिविधियों का विस्तार : बीज उत्पादन कर्नाटक, महाराष्ट्र और गुजरात में केंद्रित है। देश के संभावित क्षेत्रों को, जहाँ बीज उद्योग अस्तित्व में नहीं है, लाने का प्रयास करना चाहिए।

पुरुष बाँझ प्रणाली का उन्नत उपयोग : संकर बीज उत्पादन मुख्य रूप से हस्त विपुंसीकरण तथा परागण के माध्यम से किया जाता है जो संकर बीज की लागत को बढ़ाता है। लागत को कम करने के लिए विभिन्न सब्जी फसलों में पुरुष बाँझ प्रणाली के उपयोग के लिए अधिक जोर देने की आवश्यकता है।

सार्वजनिक क्षेत्र के बीज संगठनों को वित्तीय सहायता : भाकृअनुप की एक निधि योजना पहले से ही चल रही है लेकिन दुर्भाग्यवश बहुत कम संगठन इसका लाभ उठा रहे हैं। क्योंकि बीज उत्पादन एक जोखिम भरा और चुनौतीपूर्ण उद्यम है, इसलिए कर्मचारी इसे स्वीकार करने में संकोच करते हैं। यह जरूरी है कि सार्वजनिक क्षेत्र के कर्मचारियों को बीज उत्पादन की चुनौती स्वीकार करने के लिए कुछ प्रोत्साहन प्रदान किए जाएं। सब्जी फसलों में संकर प्रणाली टिकाऊ हो सकती है अगर निजी बीज कंपनियों के साथ सार्वजनिक क्षेत्र में स्थानीय संकर विकसित किए जाये ताकि पर्याप्त उपलब्धता सुनिश्चित की जा सके और सामान्य उत्पादकों के हिसाब से संकर बीजों की उच्च लागत का ख्याल रखा जा सके। आणविक जीवविज्ञान के औजारों का उपयोग परंपरागत प्रजनन कार्यक्रमों के साथ भी किया जा सकता है जिससे अस्थिर समस्याओं से निपटने के लिए अधिक प्रगति होती है जैसे टमाटर में टीएलसीवी प्रतिरोध। आणविक जीवविज्ञान के क्षेत्रों में सार्वजनिक संस्थानों के साथ संबंध और संयुक्त परिचालन परियोजनाएं निजी बीज कंपनियों को सार्वजनिक संस्थानों में उपलब्ध वैज्ञानिक प्रतिभा का उपयोग करने और अंतिम लाभार्थी–सब्जी उत्पादक को लागत प्रभाविता के हस्तांतरण के लिए अनुसंधान की लागत से लाभ लेने में मदद कर सकती है।

समाप्त

अच्छी पुस्तकें पढ़ना शताब्दियों के बेहतरीन व्यक्तियों के साथ संवाद करने जैसा है।

प्रियंका चंद्रा, अवतार सिंह, कैलाश प्रजापत, मधु चौधरी, पूजा वर्मा एवं राजेन्द्र कुमार यादव
भाकृअनुप–केन्द्रीय मृदा लवणता अनुसंधान संस्थान, करनाल–132001 (हरियाणा)
E-mail: priyanka.chandra921@gmail.com

पौधों में वृद्धि तथा लवण सहनशीलता बढ़ाने के लिए माइकोराइजा की भूमिका

भारत एक ऐसा विकासशील देश है जिसकी कुल कार्यशील जनसंख्या का लगभग 64.5 प्रतिशत कृषि पर निर्भर है। इसी कारण भारत को एक कृषि प्रधान देश और कृषि को भारतीय अर्थव्यवस्था की रीढ़ कहा जाता है। भारत के कुल क्षेत्रफल के लगभग 51 प्रतिशत भू–भाग पर कृषि, 4 प्रतिशत पर चरागाह, 21 प्रतिशत पर वन और 24 प्रतिशत बंजर और अनुपयोगी है। भारत की बढती जनसंख्या की खाद्यान्न मांग की आपूर्ति के लिए भविष्य में कृषि उत्पादन में वृद्धि की आवश्यकता होगी तथा सभी प्रकार की भूमि पर खेती करना अनिवार्य होगा। शुष्क तथा अर्धशुष्क क्षेत्रों में कृषि की दृष्टि से मृदा लवणता एक गंभीर समस्या है। देश का लगभग 6.74 मिलियन हैक्टर क्षेत्रफल लवणता से प्रभावित है तथा इसका 56 प्रतिशत भाग क्षारीय एवं 44 प्रतिशत भाग लवणीय है। लवणीय मृदाओं में सोडियम, मैग्नीशियम, कैल्शियम एवं उनके क्लोराइड तथा सल्फेट आयनों की मात्रा अधिक पाई जाती है जिसके कारण बीजों के अंकुरण तथा फसल की उत्पादन क्षमता पर विपरीत असर पड़ता है। जबकि क्षारीय भूमि में विनिमयशील सोडियम एवं कार्बोनेट और बाईकार्बोनेट लवणों की अपेक्षाकृत अधिकता होने के कारण इन मृदाओं की भौतिक संरचना खराब हो जाती है। क्षारीय भूमि को सुधारने के लिए विभिन्न प्रकार के रासायनिक भूमि सुधारक पदार्थों का उपयोग किया जाता है जैसे जिप्सम, पाईराइट, फॉस्फोजिप्सम एवं गंधक आदि। सघन खेती से मृदा में पोषक तत्वों का स्तर धीरे–धीरे गिर रहा है। रासायनिक उर्वरकों के प्रयोग से इस कमी को पूरा किया जाता है किन्तु रासायनिक उर्वरकों के अधिक उपयोग से मृदा स्वास्थ्य पर भी विपरीत प्रभाव पड़ रहा है। अनेक शोधों में पाया गया है कि पादप वृद्धिकारक सूक्ष्मजीव पौधों की जड़क्षेत्र में मौजूद रहते हैं तथा उनकी वृद्धि में सहायक होते हैं साथ ही लवणों के दुष्प्रभाव को कम करने में भी सहायक होते हैं। ये सूक्ष्मजीव मृदा की उर्वराशक्ति को भी स्थायी बनाए रखने में सहायक है। पादप वृद्धिकारक जड़ीय जीवाणु (पीजीपीआर), माइकोराइजा तथा कई प्रकार के कवक जैसे ट्राईकोडर्मा इस प्रकार के सूक्ष्मजीवों के उदाहरण है। ये सूक्ष्मजीव, पोषक तत्वों की उपलब्धता बढ़ाते हैं तथा विभिन्न प्रकार के मेटाबोलाईट्स और इंडोल ऐसिटिक अम्ल का उत्पादन करते हैं और इनके साथ–साथ फसलों की लवण सहनशीलता को बढ़ाने में भी मदद करते हैं। ऐसी स्थिति में रासायनिक खादों एवं भूमि सुधारकों के प्रयोग के साथ–साथ इस प्रकार के सूक्ष्मजीवों का प्रयोग करना भी एक अच्छा विकल्प है।

ये सूक्ष्मजीव विशिष्ट प्रकार के होते हैं जिनको मुख्यतः दो श्रेणियों में रखा जा सकता है। पहला जीवाणु तथा दूसरा माइकोराइजा है।

1. जीवाणु

कई प्रकार के पादप वृद्धि संवर्धक जीवाणु मृदा की उर्वरता, पौध वृद्धि एवं विकास को बढ़ावा देने के साथ–साथ पौधों में रोग फैलाने वाले सूक्ष्मजीवों को रोकने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। इस प्रकार के जीवाणु विभिन्न तरह की प्रक्रियाओं द्वारा पौधों की वृद्धि एवं विकास को विविध पर्यावरण परिस्थितिओं में बढ़ाते हैं साथ ही मृदा गुणवत्ता पर सकारात्मक प्रभाव डालते हैं। ये जीवाणु कई प्रकार के होते हैं और पौधों की वृद्धि को बढ़ावा देने के लिए पोषक तत्वों जैसे नत्रजन, फॉस्फोरस, पोटेशियम और अन्य आवश्यक खनिजों की उपलब्धता को बढ़ाते है। इनमें नत्रजन का यौगिकीकरण करने वाले सहजीवी जीवाणु जो वायुमण्डलीय नत्रजन को मृदा में स्थिर करके पौधों को उपलब्ध कराते हैं। नाइट्रोजन पूर्ति करने वाले यह जीवाणु सभी दलहनी व तिलहनी फसलों जैसे–सोयाबीन और मूँगफली की जड़ों में छोटी–छोटी ग्रन्थियों में पाए जाते हैं जो सहजीवन के रूप में कार्य करते हुए वायुमण्डल में उपलब्ध नाइट्रोजन को पौधों को उपलब्ध कराते हैं। राइजोबियम, एजोटोबेक्टर, एजोस्पीरिलम आदि इस प्रकार के जीवाणुओं के उदाहरण हैं। दूसरा फॉस्फोरस घोलक जीवाणु होते हैं जो मृदा में उपस्थित अघुलनशील फॉस्फोरस को घुलनशील अवस्था में परिवर्तित करके पौधों को उपलब्ध कराते हैं।

2. माइकोराइजा

माइकोराइजा पारिस्थितिकी तंत्र का एक महत्वपूर्ण घटक हैं। माइकोराइजा का अर्थ (माइको – कवक, राइजा – जड़) कवक जड़ होता है। "माइकोराइजा" कवक और पौधों की जड़ों के बीच के सहजीवी संबंध को कहते हैं। यह संबंध लगभग 95 प्रतिशत पौधों में पाया जाता है। इस प्रकार के सहजीवी संबंध में कवक, पौधे की जड़ों पर आश्रित होते हैं तथा ये कवक पौधों को अनेक प्रकार से फायदा पहुचाते हैं। माइकोराइजा पौधों द्वारा फॉस्फोरस के अवशोषण में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है तथा मृदा की उर्वराशक्ति में सुधार कर पौधों की वृद्धि को बढ़ाते हैं। माइकोराइजा मृदा से पौधों के लिए विभिन्न पोषक तत्व जैसे फॉस्फोरस और सूक्ष्म पोषक तत्वों को ग्रहण करने में मदद करता है और फसलों की अंत:प्रक्रिया को बढ़ाकर पैदावार बढ़ाने में अहम भूमिका निभाते हैं। सूखे तथा लवणता जैसी तनाव की परिस्थितियों में भी यह पौधों को हरा रखने में मदद करते हैं।

फसलों में लवण सहनशीलता को बढ़ाने में माइकोराइजा की भूमिका

माइकोराइजा कवक पौधों के साथ साझेदारी कर मृदा में होने वाली लाभदायक जैविक तथा रासायनिक क्रियाओं के सुचारू रूप से संचालन में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं तथा पौधों के लिए मृदा से विभिन्न पोषक तत्व जैसे फॉस्फोरस, नत्रजन और अन्य सूक्ष्म पोषक तत्वों के अवशोषण में मदद करते हैं। माइकोराइजा पौधों द्वारा जल के अंतग्रहण की क्रिया दर को बढ़ाते हुए उन्हें सूखे तथा लवणता की परिस्थिति में प्रतिरोधी बनाते हैं। इस कारण इन्हें प्राकृतिक जैव उर्वरक के नाम से भी जाना जाता है। साथ ही साथ यह रोग उत्पन्न करने वाले सूक्ष्मजीवों से भी पौधे को सुरक्षा प्रदान करते हैं। माइकोराइजा के कवक तन्तु जड़ की सतह पर फैले रहते हैं तथा मृदा की गहराई में प्रवेश कर जाते है। माइकोराइजा विभिन्न प्रकार के एन्जाइमों का स्त्राव करते हैं और मृदा में मौजूद कार्बनिक पदार्थों को घुलनशील बना कर खुद उपयोग करते है साथ ही कार्बनिक पदार्थ को परिवर्तित करके मृदा की उर्वराशक्ति को भी बढ़ाते हैं। इस प्रकार अवशोषित कार्बनिक पदार्थ जड़ की कोशिकाओं में स्थित कवक तन्तु में पहुँच जाता है जिसके द्वारा पौधे का पोषण होता है। यह कवक तन्तु मृदा से कार्बनिक पदार्थों के अलावा खनिजों तथा नत्रजन पदार्थों का अवशोषण करके पौधों को पोषण प्रदान करते हैं। इस सहजीवी सम्बन्ध में कवक पौधों से शर्करा, विटामिन एवं अमीनो अम्ल प्राप्त करते हैं। कवक जड़ों के क्षेत्रफल को बढ़ाने में सहायक होता है जिससे उनकी अवशोषण करने की क्षमता बढ़ती है, फलस्वरूप पौधे पोषक तत्व तथा पानी अधिक मात्रा में अवशोषित कर पाते है। इस प्रकार पोषक एवं कवकों का सम्बन्ध लवणता की स्थिति में बहुत लाभदायक होता है क्योंकि माइकोराइजा वाले पादपों में खनिज लवणों को अवशोषित करने की क्षमता में वृद्धि हो जाती है। वैज्ञानिक प्रयोगों द्वारा यह स्पष्ट कर दिया है कि लवणता की स्थिति में मृदा की भौतिक संरचना खराब हो जाती है तथा पोषक तत्वों का अवशोषण जटिल हो जाता है, माइकोराइजा मृदा से नत्रजन, फॉस्फोरस तथा पोटैशियम आदि का अवशोषण कर पौधों को पोषण देते हैं। यह कवक लाभदायक वृद्धि हार्मोन भी स्त्रावित करते हैं जो फसल के विकास में सहायक है जिससे उपज में वृद्धि होती है।

माइकोराइजा के प्रकार

माइकोराइजा मुख्य रूप से दो प्रकार के होते हैं, एण्डोट्रोपिक और एक्टोट्रोपिक माइकोराइजा। एण्डोट्रोपिक माइकोराइजा में कवक पादप की जड़ के कोर्टीकल कोशिका तक प्रवेश कर जाता है, जबकि एक्टोट्रोपिक माइकोराइजा में कवक जड़ के मूलग्र के ऊपर और कोर्टीकल कोशिका के ऊपर एक प्रकार का आवरण बना लेता है। कभी–कभी यह कवक जड़ की कोर्टीकल कोशिका के अंदर प्रवेश कर जाते हैं, तब इन्हें एक्ट–एंडो माइकोराइजा कहते हैं।

माइकोराइजा की पादप वृद्धि तथा पौधों में लवण सहनशीलता बढ़ाने में भूमिका

(क) एण्डोट्रोपिक माइकोराइजा : एण्डोट्रोपिक माइकोराइजा में कवक तन्तु पौधों की जड़ों की कार्टेक्स की कोशिकाओं के भीतर प्रवेश कर जाते हैं और

अन्तर–कोशिकीय स्थानों में विकसित होते रहते हैं तथा वृद्धि करते हैं। एण्डोट्रोपिक माइकोराइजा के कवक तन्तु पोषक पौधे की जड़ पर परत नहीं बनाते किन्तु जड़ की सतह पर फैले रहते है। एण्डोट्रोपिक माइकोराइजा जिनको एंडो माइकोराइजा भी कहते है, इसमें आर्बसकल और वेसीकल नामक संरचनाएं पाई जाती हैं। अतः इन्हें वेसिकुलर–आर्बसकुलर माइकोराइजा (वाम) कहा जाता है। इन संरचनाओं के फलस्वरूप जड़ों के आकार में बदलाव हो जाता है और जडें द्विशाखित हो जाती है किन्तु मूलरोम संलग्न रहते हैं। वेसिकुलर–आरबस्कुलर माइकोराइजा (वाम) विभिन्न प्रकार के पेड़–पौधे, सब्जियों, धान, दलहनी एवं चारे वाली फसलों के साथ साझेदारी कर फसलों को लाभान्वित करता है।

ज्यादातर एंडो माइकोराइजा ऑर्किड्स तथा कोनिफर्स में पाए जाते हैं और एंडो माइकोराइजा के ज्यादातर कवक बेसीडीओमाइसीटस परिवार से संबंधित है। इसके अतिरिक्त एरीकेसी तथा जेन्सियनेसी परिवार के सदस्यों में भी इस प्रकार के माइकोराइजा का सम्बन्ध पाया जाता है।

(ख) एक्टोट्रोपिक माइकोराइजा : एक्टोट्रोपिक माइकोराइजा को एक्टो माइकोराइजा भी कहते है, इस प्रकार में कवक तन्तु पोषक पौधे की जड़ की सतह पर एक पर्त बना लेते हैं। पौधे की जड़ की एपीब्लेमा पर स्थित कवक तन्तु प्रवेश करके एक जाल सा बना लेते हैं। इनका संगठन किसी भी विशिष्ट पौधे के लिए नहीं होता है। अतः ये किसी भी पौधे के साथ अपना संगठन स्थापित कर सकते हैं। इस प्रकार के पौधों की जड़ों की एपीब्लेमा पर मूलरोम नहीं पाये जाते हैं जैसे–पाइनस (कोनीफरेसी परिवार), ओक (फेगेसी परिवार), तथा बिर्च (बेटूलेसी परिवार) है। कई पौधे जो मोनोट्रोपा एवं सारकोड्स से संबंधित है, माइकोराइजा कवक पर पूर्ण तरह से आश्रित होते हैं क्योंकि इन पौधों में पर्णहरित का अभाव होता है।

माइकोराइजा के लाभ

माइकोराइजा को जैव उर्वरक के रूप में प्रयोग करने से फसलों में रासायनिक उर्वरकों की 25–30 प्रतिशत तक बचत की जा सकती है। इसके उपयोग से फसलों की उत्पादकता भी बढाई जा सकती है। इसके पृथक करने की कठिन तकनीक तथा बाजार में कम उपलब्धता के कारण फसलों में इसका सीमित प्रयोग ही किया जा रहा है। माइकोराइजा के उपयोग से निम्नलिखित लाभ मिलते हैं :

- फॉस्फोरस की उपलब्धता को 60–80 प्रतिशत तक बढ़ाता है।
- माइकोराइजा के उपयोग से जड़ों का बेहतर विकास होता है।
- माइकोराइजा की मदद से पोषक तत्वों का बेहतर अवशोषण होता है ।
- लवणता की स्थिति में पौधों के आसपास नमी बनाए रखने मे सहायक होता है।
- लवणीय तथा क्षारीय मृदाओं में जड़ों को होने वाली क्षति को कम करता है।
- सूक्ष्म पोषक तत्वों की उप्लब्धता को भी बढ़ाता है।
- जड़ों और मृदा के बीच बेहतर जल संबंध द्वारा लवणता के प्रति पौधों में सहनशीलता को बढ़ाता है।
- फसलों का मृदाजनित रोगाणुओं से बचाव करता है।

निष्कर्ष

माइकोराइजा का जैविक खाद के रूप में उपयोग एक नई तकनीक के रूप में उभर कर आया है तथा इनका सफलतापूर्वक कृषि उपज बढ़ाने में प्रयोग किया जा रहा है। माइकोराइजा के उपयोग से मृदा स्वास्थ को सुधारने में भी काफी मदद मिलती है। माइकोराइजा के फसलों में उपयोग को बढ़ाने के लिए राष्ट्रीय एवं अंतरराष्ट्रीय स्तर पर काफी शोध किये जा रहे हैं जिससे आने वाले समय में इसको जैव उर्वरक के रूप में बड़े पैमाने पर उपयोग किया जा सके।

समाप्त

अरविन्द कुमार राय, पारुल सुन्धा, निर्मलेंदु बसाक, पूजा गुप्ता सोनी एवं सूबेदार पटेल
भाकृअनुप–केन्द्रीय मृदा लवणता अनुसंधान संस्थान, करनाल–132001 (हरियाणा)
E-mail: ak.rai@icar.gov.in

क्षारीय मृदाओं का फसलोत्पादन एवं आय बढ़ाने हेतु उचित प्रबंधन

क्षारीय और लवणीय भूमि में क्षार तथा लवण अधिक मात्रा में पाए जाते हैं। शुष्क जलवायु वाले स्थानों में यह लवण सफेद या भूरे रंग के रूप में भूमि पर जमा हो जाते हैं। यह भूमि पूर्णतया अनुपजाऊ एवं ऊसर होती है और इसमें शुष्क ऋतु में कुछ लवणसहिष्णु पौधों के अलावा किसी प्रकार की वनस्पति नहीं मिलती। उचित जलनिकास न होने के कारण बरसात में इन भूमि खंडों में पानी अत्यधिक मात्रा में भरा रहता है। यह पानी कृत्रिम नालियों के अभाव, प्राकृतिक ढाल की कमी एवं नीचे की मिट्टी के अपारगम्य होने के कारण भूमि खंडों से बाहर नहीं निकल पाता और गर्मी पड़ने पर वाष्पन द्वारा उड़कर सूख जाता है। बरसात में यह मटमैला बना रहता है और सूखने पर भूमि की सतह पर लवण छोड़ देता है।

लवणग्रस्त भूमि की तीन श्रेणियाँ होती हैं–

- केवल लवण की मात्रा अधिक हो,
- लवण तथा क्षार दोनों हो, और
- क्षार अधिक हो तथा लवण कम हो।

रासायनिक तरीकों द्वारा इस भूमि को पहचाना जाता है। अधिक लवणीय भूमि का सुधार करने के लिये अधिक मात्रा में पानी भरकर लवण को घुल जाने देते हैं। फिर इसे कृत्रिम नालियों द्वारा बाहर निकाल देते हैं परन्तु क्षारीय भूमि में जिप्सम का चूर्ण और विलेय कैल्शियम युक्त पदार्थ का प्रयोग आवश्यक हो जाता है। प्रारंभ में केवल लवण और जल प्रिय फसल जैसे धान व जौ उगाए जाते हैं।

क्षारीय (ऊसर) भूमि की पहचान

इनमें नमक की मात्रा कम (संतृप्त निचोड की वैद्युत चालकता 4.0 डेसी./मी. से कम) व पीएच प्रायः 8.5 से अधिक व विनिमयशील सोडियम (ईएसपी) 15 प्रतिशत से अधिक होता है। पानी के रिसने की क्षमता एक दम घट जाती है और भूमि सख्त हो जाती है। इनमें सोडियम कार्बोनेट और बाईकार्बोनेट की अधिकता हो जाती है। जैव पदार्थ घुलकर सतह पर आ जाते हैं अतः भूमि की सतह काली दिखाई देती है।

क्षारीय मिट्टी शुष्क एवं अर्धशुष्क क्षेत्रों में मिलती है। इसकी उत्पत्ति शुष्क एवं अर्धशुष्क क्षेत्रों में भूजल के उथला होने एवं जलप्रवाह के दोषपूर्ण होने के कारण होती है। ऐसी स्थिति में केशिका कर्षण की क्रिया द्वारा सोडियम, कैल्शियम एवं मैग्नीशियम लवण मृदा की ऊपरी सतह पर निक्षेपित हो जाते हैं। विभिन्न प्रांतों में इस भूमि को अलग–अलग नामों से पुकारते हैं, जैसे उत्तर प्रदेश में ऊसर या रेह, पंजाब में ठूर, कल्लर, मुंबई में चोपन, करल इत्यादि। ऐसी भूमि उत्तर प्रदेश, पंजाब, महाराष्ट्र, आन्ध्र प्रदेश एवं तमिलनाडु राज्यों में पाई जाती है।

क्षारीयता उत्पन्न करने वाले नमक प्राकृतिक रूप से मृदा तथा जल में पाए जाते हैं। मिट्टी का क्षारीयकरण प्राकृतिक प्रक्रिया या मानवजनित हो सकता है, जैसे खनिज अपक्षय या क्षारीय जल द्वारा सिंचाई। मृदा क्षारीयता के कारणों की चर्चा नीचे की गयी है:

- मिट्टी में खनिजों के अपक्षय के दौरान सोडियम कार्बोनेट और सोडियम बाइकार्बोनेट का उत्पादन होता है। यह मृदा में क्षारीयता उत्पन्न करता है।
- क्षारीय जल जिसमें अपेक्षाकृत उच्च मात्रा में सोडियम बाइकार्बोनेट और कम कैल्शियम और मैग्नीशियम होता है, इसके प्रयोग से मिट्टी में क्षारीयता उत्पन्न होती है।

विभिन्न राज्यों में क्षारीय भूमि का परिदृश्य उत्तर प्रदेश (एटा), महाराष्ट्र (बुलडाणा), तेलंगाना (मेहबूबनगर), मध्य प्रदेश (खरगोन), हरियाणा (कैथल), पंजाब (पटियाला)

क्षारीय भूमि का सुधार

भूमि सुधारक का प्रयोगः क्षारीय मृदा में फसलों को सफलतापूर्वक उगाने के भूमि सुधारक का प्रयोग अति आवश्यक है। यह कई प्रकार के होते हैं जैसे जिप्सम, सल्फ्यूरिक अम्ल, सल्फर, पाइराइट, कार्बनिक खाद आदि। इस प्रकार के सुधारक रासायनिक–जैविक क्रियाओं द्वारा क्षारीय भूमि में लगभग आवश्यक रूप से पाये जाने वाले कम घुलनशील कैल्शियम कार्बोनेट को कैल्शियम सल्फेट में बदल देते हैं और कैल्शियम मृदा को उपलब्ध हो जाता है। भूमि को सुधारने के लिए जिप्सम का प्रयोग सबसे अधिक किया जाता है। इसके बाद भूमि को सुधारने के लिए सल्फर का भी प्रयोग कर रहे हैं।

सुधारक की मात्राः क्षारीय मृदा को सुधारने के लिए सुधारकों आवश्यकता होती है जोकि विनिमय योग्य सोडियम की मात्रा पर आधारित होता है और सुधार की जाने वाली मृदा की गहराई पर आधारित होता है। इसके अलावा सुधारक की मात्रा भूमि की संरचना और उगाई जाने वाली फसलों की क्षारीय सहनशीलता पर भी निर्भर होती है कि कितना सुधारक डालना है। मात्रा के निर्धारण के लिए सबसे पहले कितना जिप्सम डालने की आवश्यकता होती है, यह अनुमान प्रयोगशाला में किया जाता है। मैदानी क्षेत्रों की मृदाओं में यह देखने में आया है कि ईएसपी तथा पीएच मान का आपस में काफी अच्छा संबंध है, इसलिए पीएच मान का प्रयोग जिप्सम की मात्रा निर्धारित करने के लिए किया जा सकता है।

जिप्सम द्वारा भूमि सुधारः क्षारीय भूमि को सुधारने में जिप्सम का बहुत बड़ा योगदान है। रासायनिक रूप में जिप्सम को कैल्शियम सल्फेट कहते हैं। यह खनिज के रूप में भूमिगत खानों में पाया जाता है। इसमें 23.3 प्रतिशत कैल्शियम एवं 18.5 प्रतिशत सल्फर होता है। जब यह पानी में घुलता है तो कैल्शियम एवं सल्फेट आयन प्रदान करता है तुलनात्मक रूप से कुछ अधिक धनात्मक होने के कारण कैल्शियम के आयन मृदा में विद्यमान विनिमयशील सोडियम के आयनों को हटाकर उनका स्थान ग्रहण कर लेते हैं। आयनों का मृदा के कणों पर यह परिर्वतन मृदा की रासायनिक एवं भौतिक अवस्था मे सुधार कर देता है तथा मृदा फसलोत्पादन के लिए उपयुक्त हो जाती है। साथ ही जिप्सम भूमि में सूक्ष्म पोषक तत्वों का अनुपात बनाने में सहायता करता है। जिप्सम का उपयोग करते समय भूमि की उपसतह के लिए पर्याप्त प्राकृतिक जल निकासी होनी चाहिए या फिर मिट्टी की रूपरेखा के माध्यम से बारिश या सिंचाई के पानी के परिसंचरण द्वारा अतिरिक्त सोडियम के निक्षालन के लिए कृत्रिम उपसतही जलनिकास प्रणाली मौजूद होनी चाहिए।

किसान फसल उगाने के लिए सामान्यतः नत्रजन, फॉस्फोरस तथा पोटैशियम का उपयोग करते हैं, कैल्शियम एवं सल्फर का उपयोग नहीं करते हैं। जिससे कैल्शियम एवं सल्फर की कमी की समस्या धीरे–धीरे विकराल रूप धारण कर रही है। इनकी कमी सघन खेती वाली भूमि, हल्की भूमि तथा अपक्षरणीय भूमि में अधिक होती है। कैल्शियम एवं सल्फर संतुलित पोषक तत्व प्रबंधन के मुख्य अवयवों में से है जिनकी पूर्ति के अनेक स्त्रोत है इनमें से जिप्सम एक महत्वपूर्ण उर्वरक है। भारत में जिप्सम का भंडार प्राकृतिक रूप से राजस्थान के जोधपुर, बीकानेर, नागौर तथा जैसलमेर जिलो में पाया जाता है। यह भारत के अन्य प्रदेशों में भी पाया जाता है, लेकिन कम मात्रा में पाया जाता है। भूमि सुधारक के रूप में प्रयोग होने वाले जिप्सम का अत्यधिक शुद्ध होने की जरूरत नहीं होती है, परन्तु फिर भी कृषि कार्य के लिए 70 प्रतिशत शुद्धता कम से कम होनी चाहिए। जिप्सम डालने से पहले एक बार गहरी सिंचाई कर देनी चाहिए, जिससे घुलनशील पदार्थ नीचे चले जाएं। खेत में जिप्सम डालने के बाद हल्की जुताई करें और जिप्सम को 10–12 सेंमी. तक की परत में अच्छी प्रकार से मिलाएं। जिप्सम को अधिक गहराई में मिलाने की तुलना में ऊपरी सतह में मिलाना अधिक लाभदायक होता है।

क्षारीय भूमि सुधार के कार्यों को प्रारम्भ करने का सबसे उत्तम समय गर्मी के महीनों में होता है। जिप्सम बिखेरने के तुरन्त बाद कल्टीवेटर या देशी हल से भूमि की ऊपरी 8–12 सेंमी. सतह में मिलाकर और खेत को समतल करके मेड़बन्दी करना जरूरी है ताकि खेत में पानी सब जगह बराबर लग सके। धान की फसल में जिप्सम की आवश्यक मात्रा को फसल लगाने से 10–15 दिन पहले डालना चाहिए। पहले 4–5 सेंमी. हल्का पानी लगाना चाहिए जब पानी थोड़ा सूख जाए तो पुनः 12–15 सेंमी. पानी भरकर रिसाव क्रिया सम्पन्न करनी चाहिए। क्षारीय भूमि में जिप्सम को बार–बार मिलाने की आवश्यकता नहीं होती है। यह पाया गया है कि यदि धान की फसल को क्षारीय भूमि में लगातार उगाते रहें तो भूमि के क्षारीयपन में कमी आती है। खेतों को लम्बी अवधि के लिए खाली नहीं छोड़ना चाहिए।

पाइराइट का प्रयोग : क्षारीय भूमि के सुधार हेतु पाइराइट का भी प्रयोग किया जाता है। जिन क्षेत्रों में पाइराइट आसानी से उपलब्ध हो वहाँ जिप्सम की जगह पाइराइट का प्रयोग करते हैं। देश में पाइराइट का भंडार राजस्थान के सीकर जिले और बिहार के अमझोर में पाया जाता है। पाइराइट में लगभग 22 प्रतिशत सल्फर होता है जबकि विलयशील सल्फर का अंश 1–11 प्रतिशत तक होता है।

पाइराइट का प्रयोग निम्नलिखित रूप से करते हैं:

- पाइराइट को प्रयोग से पहले अच्छी तरह से पीस लेना चाहिए।
- इसमें विलयशील सल्फर का अंश 5 प्रतिशत से अधिक होना चाहिए।
- पाइराइट का प्रयोग केवल उस समय करें जब खेत में प्रयाप्त नमी हो।
- पाइराइट को प्रयोग करते समय हाथों में दस्तानों का इस्तेमाल करना चाहिए क्योंकि इसमें गंधक का तेजाब पाया जाता है।

क्षारीय भूमि का प्रबंध

मेडबंदी व भूमि का समतलीकरण : क्षारीयता प्रभावित मृदाएं अधिकतर उपेक्षित पड़ी रहती है क्योंकि किसान का पूरा ध्यान इन भूमियों की अपेक्षा अच्छी भूमि की तरफ रहता है इसलिए भूमि सुधार का कार्यक्रम खेतों के विकास कार्यक्रम से होता है। सबसे पहला कार्य खेत की मेडबंदी करना तथा खेत को समतल करना है। खेत की मेडबंदी इसलिए आवश्यक है क्योंकि भूमि सुधारक डालने के बाद वर्षा का पानीं किसी दूसरे के खेत में न प्रवेश करे। मेडबंदी के बाद खेत का समतलीकरण करना चाहिए जिससे पूरा खेत एक समान हो जाये।

जलनिकास की उचित व्यवस्था : क्षारीय भूमि को कृषि योग्य बनाने के लिए जलनिकास की व्यवस्था अति आवश्यक है। जलनिकास के लिए खेत का समतल होना आवश्यक है। क्षारीय मृदाओं के जलनिकास के लिए त्रिस्तरीय वर्षा जल प्रबंध काफी लाभप्रद सिद्ध हुआ है:

– इस पद्धति के प्रथम चरण के अनुसार जहाँ तक हो सके वर्षा जल को मेडबंदी द्वारा धान के खेत में एकत्रित करें। धान के खेत में 15–20 सेंमी. तक एक दिन की वर्षा का पानी आसानी से एकत्रित कर सकते हैं।

– जो वर्षा का पानी धान के खेतों में एकत्र नहीं किया जा सकता उसे जलनिकास नाली द्वारा खेत के आस–पास तालाब में एकत्रित किया जा सकता है।

– दोनों प्रकार की पद्धति से संरक्षित न किये जाने वाले पानी को जलनिकास नाली द्वारा बाहर निकाल देना चाहिए।

पोषक तत्व का प्रबंध

क्षारीय मृदा का पीएच मान उच्च होता है। विनियमयोग्य सोडियम व कैल्शियम कार्बोनेट की मात्रा अधिक होती है। क्षारीय मृदाओं में साधारणतया कैल्शियम, नाइट्रोजन तथा जिंक की कमी होती है तथा फॉस्फोरस और पोटाश की अधिकता होती है।

क्षारीय मृदा में पोषक तत्व प्रबंधन निम्न प्रकार करना चाहिए :

– जैवपदार्थ तथा नाइट्रोजन की कमी को दूर करने के लिए प्रति वर्ष या दो वर्षों में कम से कम एक बार हरी खाद का प्रयोग करना चाहिए।

– नाइट्रोजन प्रमुख पोषक तत्व है और चावल और गेहूँ के लिए इसके 150 किलोग्राम/हैक्टर अनुप्रयोग की सिफारिश की जाती है। मृदा सुधार के प्रारंभिक वर्षों में फॉस्फोरस और पोटाश प्रयोग की आवश्यकता नहीं होती है। 5 साल के बाद फसल की सतत् पैदावार प्राप्त करने के लिए हर साल चावल और गेहूँ दोनों में 22 किलोग्राम फॉस्फोरस/हैक्टर देना चाहिएं। पोटाश का उपयोग मिट्टी परीक्षण के आधार पर करना चाहिए।

– चावल और गेहूँ के लिए जिंक सल्फेट 20 किलोग्राम/हैक्टर मृदा सुधार के प्रारंभिक वर्षों के दौरान आवश्यक है। 3 साल के बाद चावल में चावल–गेहूँ की फसल के लिए 10 किलोग्राम जिंक सल्फेट/हैक्टर डालना चाहिए।

सिंचाई जल का उचित प्रबंध : वैसे तो समय पर आवश्यकतानुसार सिंचाई प्रत्येक मृदा के लिए जरुरी है लेकिन क्षारीय मृदाओं के लिए अति आवश्यक है। इन मृदाओं में जल्दी–जल्दी सिंचाई की सिफारिश की जाती है। क्षारीय मृदा वाले क्षेत्रों में अधिकर भूमिगत जल मीठा होता है। अतः नलकूपों द्वारा भूमिगत जल का प्रयोग किया जा सकता है। ऊसर मृदा की जल चालकता कम होने से निचली सतह से ऊपरी सतह की तरफ जल संचालन वाष्पोत्सर्जन की आवश्यकता को पूरा नहीं कर पाता जिसके परिणामस्वरूप सतह में उपलब्ध जल तीव्र गति से समाप्त हो जाता है, अतः सिंचाई का अंतराल कम रखना चाहिए। जिन क्षेत्रों में अच्छी गुणवत्ता वाला जल सीमित मात्रा में उपलब्ध हो वहाँ इसे लवणीय जल के साथ मिला कर सिंचाई करनी होती है।

फसल की प्रजातियाँ

फसलों की लवण सहनशीलता उनकी प्रजातियों एवं मृदा के प्रकार पर भी निर्भर करती है। तुलनात्मक रूप से अधिक लवणीय जल का हल्की एवं रेतीली मृदा में उपयोग आसानी से किया जा सकता है। फसलों के साथ ही लवणों को अधिक सहन करने वाली प्रजातियों का चयन भी प्राथमिकता के आधार पर करना चाहिये। सिंचाई जल की लवणता/क्षारीयता को सहन करने एवं अधिक उपज देने वाली विकसित विभिन्न फसलों की किस्मों का विवरण तालिका 5 में दिया गया है।

जिप्सम के उपयोग में ध्यान देने योग्य बातें

– जिप्सम को अधिक नमी वाले स्थान पर न रखें तथा जमीन से कुछ ऊपर रखें।

– मृदा परीक्षण के उपरान्त जिप्सम की उचित मात्रा डालें।

– जिप्सम डालने से पहले अगर इसमें ढेले हैं तो इन्हें महीन कर लें एवं तेज हवा चलने पर जिप्सम का बुरकाव न करें।

– जिप्सम का बुरकाव करते समय हाथ सूखे होने चाहिए।

– जिप्सम का बुरकाव पूरे खेत में समान रूप से करें एवं तत्पश्चात् मिट्टी में अच्छी प्रकार से मिला दें।

किसानों के लिए जानकारी

खेत में जिप्सम आवश्यकता के लिए मिट्टी की जाच करवाएँ। सामान्यतः एक हैक्टर के लिये 7.5 से 12.5 टन तक जिप्सम की आवश्यकता होती है। भूमि सुधार से पहले यह देख लें कि सिंचाई के लिये बढ़िया पानी है या नहीं। अगर संभव हो तो उथले ट्यूबवेल का प्रबन्ध करें। ज्यादातर क्षारीय भूमि निचले इलाकों में होती है जहाँ आस–पास के ऊँचे इलाकों से पानी बहकर जमा हो जाता है। इसको रोकने के लिये खेत के चारों तरफ करीब 60 सेंमी. ऊँची मेड़ बनाएँ ताकि बाहर से पानी आकर जमा न हो और भूमि सुधार में बाधा न हो। जहाँ तक सम्भव हो भूमि को समतल बनाएँ जिससे पानी तथा उर्वरक एक समान पहुँच सके एवं उचित जल निकास हो सके। भारी वर्षा के दौरान सतही जलनिकास की व्यवस्था करें। भूमि को समतल करने के बाद क्यारी बनाएँ और उसमें करीब 10 सेंमी. पानी भर दें। अब मिट्टी के नम होते ही भूमि में मौजूद छोटे–छोटे कंकड़ों को निकाल दें और फिर 10 सेंमी. गहरी सिंचाई करें। इस तरह अधिकतर लवण सतही मिट्टी से 10–20 सेंमी. नीचे चला जाएगा। दूसरी सिंचाई के बाद जब खेत में नमी हो उस समय बारीक पिसे जिप्सम का छिडकाव करें और उस मिट्टी में 10 सेंमी. नीचे मिला दें। जिप्सम मिलाने के बाद फिर सिंचाई करें और पानी को खेत में 10–15 दिनों तक जमा रहने दें जिससे जिप्सम अच्छी तरह फूल जाए। इसके पश्चात् फसल की बुवाई करें।

जिप्सम प्रयोग से लाभ

- जिप्सम एक अच्छा भू–सुधारक है। यह क्षारीय भूमि को सुधारने एवं कैल्शियम और सल्फर की आवश्यकता की पूर्ति से फसल संरक्षण करता है।
- फसलों में जड़ों की सामान्य वृद्धि एवं विकास में सहायता देता है।
- तिलहनी फसलों में जिप्सम डालने से सल्फर की पूर्ति होती है, जो बीज उत्पादन तथा पौधे व तेल से आने वाली विशेष गंध के लिए मुख्यतयाः उत्तरदायी होता है।
- जिप्सम देने से मृदा में पोषक तत्वों सामान्यतः नत्रजन, फॉस्फोरस, पोटेशियम, कैल्शियम तथा सल्फर की उपलब्धता में वृद्धि हो जाती है।
- जिप्सम कैल्शियम का एक मुख्य स्त्रोत है जो कार्बनिक पदार्थों को मृदा के क्ले कणों से बाँधता है जिससे मृदा कणों में स्थिरता प्रदान होती है तथा मृदा में वायु का आवागमन सुगम बना रहता है।
- जिप्सम मृदा में कठोर परत बनने से रोकता है तथा मृदा में जल प्रवेश को बढ़ाता है।

तालिका 1. फसलों की लवण सहनशील प्रजातियाँ

फसल	लवण सहनशील प्रजातियाँ	क्षार सहनशील प्रजातियाँ
धान	सीएसआर 30,सीएसआर 36, सीएसआर 43	सीएसआर 10, सीएसआर 13, सीएसआर 23, सीएसआर 30, सीएसआर 36, सीएसआर 43, सुमाती एवं भूतनाथ
गेहूँ	डब्ल्यूएच 157, राज 2560, राज 3077, राज 2325	केआरएल 1–4, केआरएल 19, केआरएल 210, केआरएल 213, राज 3077
सरसों	सीएस 52, सीएस 54, सीएस 56, सीएस 58, सीएस 60, पूसा बोल्ड, आर एच 30	सीएस 52, सीएस 54, सीएस 56, डीआईआरए 336
चना	करनाल चना 1	करनाल चना 1
बाजरा	एचएचबी 60, एमएच 269, एमएच 331, एमएच 427	एचएचबी 392, एमएच 269, एमएच 280
कपास	डीएचवाई 286, सीपीडी 404, जीडीएच 9, जी 17060	एचवाई 6, सर्वोत्तम, एलआरए 5166
ज्वार	सीएचएस 11, एसपीवी 475, एसपीवी 881 एसपीवी 678, एसपीवी 669	सीएचएस 11, सीएचएस 14, सीएचएस 1, एसपीवी 475, एसपीवी 669
जौ	रत्ना, आरएल 345, आरडी 103, आरडी 137, के 169	डीएल 4, डीएल 106, डीएल 120, डीएचएस 12
कुसुम	एचयूएस 305, भीमा	मजीरा, एपीआरआर 3, ए 300

– कैल्शियम की कमी के कारण ऊपरी बढ़ती पत्तियों के अग्रभाग का सफेद होना, लिपटना तथा संकुचित होना होता है। अत्यधिक कमी की स्थिति में पौधों की वृद्धि अवरूद्ध हो जाती है तथा वर्धन शिखा भी सूख जाती है जो कि जिप्सम ड़ालने से पूरी की जा सकती है।

– जिप्सम अम्लीय मृदा में एल्युमीनियम के हानिकारक प्रभाव को कम करता है।

– जिप्सम का उपयोग फसलों में अधिक उपज तथा उनकी गुणवत्ता बढ़ाने के लिए किया जाता है।

तालिका 2. जिप्सम के प्रयोग से पीएच मान एवं धान उत्पादन में लाभ

प्रयोग स्थान	नियंत्रण		50 प्रतिशत जिप्सम आवश्यकता	
	पीएच मान	उत्पादन (कुंटल प्रति हैक्टर)	पीएच मान	उत्पादन (कुंटल प्रति हैक्टर)
लखनऊ	9.6	8.0	9.5	12.7
इंदौर	8.9	6.1	8.0	18.0
पटियाला	9.2	20.5	8.5	40.0
कैथल	8.2	22.1	7.7	30.1

फसलोत्पादन पर प्रभाव

क्षारीय मृदा सुधार तकनीकी को किसानों के खेतों पर दर्शाने के लिए संस्थान द्वारा समय–समय पर प्रयास किये जाते हैं। शोध में पाया गया कि जहाँ अधिक लवण होने के कारण फसल नहीं होती है और किसान को आर्थिक हानि उठानी पड़ती है, वहाँ जिप्सम के प्रयोग से फसल उत्पादन बढ़ाया जा सकता है। देश के विभिन्न क्षारीय क्षेत्रों में लगाए प्रयोगों के परिणामों में पाया कि 50 प्रतिशत जिप्सम आवश्यता के प्रयोग से मृदा पीएच में गिरावट दर्ज की गयी और धान का उत्पादन करीब दो गुणा बढ़ गया। इसके साथ ही मृदा के भौतिक–रासायनिक गुणों में भी सुधार होता है।

निष्कर्ष

क्षारीय मृदा का सुधार 19 वीं शताब्दी के मध्य से प्रारम्भ हुआ परन्तु तकनीकी और आर्थिक कारणों की वजह से ज्यादा सफलता नहीं मिल पायी। केन्द्रीय मृदा लवणता अनुसंधान संस्थान द्वारा विकसित की गयी तकनीकियाँ मील का पत्थर साबित हुई और वर्तमान में लगभग 10 लाख हैक्टर से अधिक भूमि को सुधारा जा चुका है। धीरे–धीरे विभिन्न तकनीकियों पर होने वाले खर्च को कम करने के लिए नये–नये आयाम विकसित किये गये हैं, जिससे सामाजिक और आर्थिक स्तर के अनुसार किसान अपनी क्षारीय भूमि को आसानी से सुधार सकें।

समाप्त

कठिन परिस्थितियों का हमेशा डटकर मुकाबला करना सफल बनने का एक महत्वपूर्ण गुण है।

विजयता सिंह, जीतेन्द्र सिंह, जोगेन्द्र सिंह, जसवंत सिंह, धीरज कुमार, सतीश कुमार सनवाल एवं पी॰सी॰ शर्मा
भाकृअनुप–केन्द्रीय मृदा लवणता अनुसंधान संस्थान, करनाल–132001 (हरियाणा)
E-mail:vijayatasingh.gpb@gmail.com

सोयाबीन की उन्नत खेती

सोयाबीन एक खरीफ की फसल है तथा इसका वानस्पतिक नाम *ग्लाइसिन मैक्स* है। दलहन की फसल होते हुए भी इसको तिलहन की फसल माना जाता है। खाद्य तेल आपूर्ति और सोया खली निर्यात से सोयाबीन ने भारत देश की अर्थव्यवस्था को दृढ़ता प्रदान की है। सोयाबीन को "शाकाहारी मांस" भी कहा जाता है क्योंकि इसमें बहुत अधिक प्रोटीन होता है। सोयाप्रोटीन के एमीनो अम्ल की संरचना पशु प्रोटीन के समकक्ष होती है। अतः मनुष्य के पोषण के लिए सोयाबीन उच्च गुणवत्ता युक्त प्रोटीन का एक अच्छा स्रोत है। स्वास्थ्य के लिए सोयाबीन एक बहुउपयोगी महत्वपूर्ण खाद्य पदार्थ है। इसमें 36–42 प्रतिशत प्रोटीन, 17–23 प्रतिशत तेल, 21 प्रतिशत कार्बोहाइड्रेट, 12 प्रतिशत नमी तथा 5 प्रतिशत भस्म होती है। कार्बोहाइड्रेट के रूप में आहार रेशा, शर्करा, रैफीनोस एवं स्टाकियोज होता है, जो कि पेट में पाए जाने वाले सूक्ष्मजीवों के लिए लाभप्रद होता है। सोयाबीन तेल में लिनोलिक अम्ल एवं लिनोलेनिक अम्ल प्रचुर मात्रा में होते हैं। ये अम्ल शरीर के लिए आवश्यक वसा अम्ल होते हैं। इसके अलावा सोयाबीन में आइसोफ्लावोन, लेसिथिन और फाइटोस्टेरॉल रूप में कुछ अन्य स्वास्थवर्धक उपयोगी घटक होते हैं। अधिकांश दलहन की तरह सोयाबीन, जीवाणु *ब्रैडीराइजोबियम जेपोनिकम* के साथ सहजीवी संबंध स्थापित करके नाइट्रोजन स्थिरीकरण करते हैं और मिट्टी में लगभग 60–100 किलोग्राम वायुमंडलीय नाइट्रोजन को 30–40 किलोग्राम नाइट्रोजन में बदलने में सक्षम होते हैं।

सोयाबीन के क्षेत्रफल में काफी वृद्धि हुई है परन्तु प्रति क्षेत्रफल उत्पादन बढ़ाना अति आवश्यक है जोकि नवीनतम सस्य क्रियाओं के साथ उन्नतशील और कीट–व्याधि अवरोधी किस्मों के प्रयोग से बढ़ाया जा सकता है। फसल सामान्य तौर पर लगभग 1 मीटर (3.3 फीट) की ऊँचाई तक पहुँचती है और बुवाई से कटाई तक 80–125 दिन लगते हैं। भारत में सोयाबीन का सबसे अधिक उत्पादन मध्य प्रदेश करता है। मध्य प्रदेश के इंदौर में सोयाबीन अनुसंधान संस्थान है।

सोयाबीन की खेती के लिए उपयुक्त जलवायु

सोयाबीन की अच्छी वृद्धि तथा उपज के लिए गर्म और नम जलवायु की आवश्यकता होती है। सोयाबीन के बीजों के अंकुरण के लिए लगभग 25 डिग्री सेल्सियस एवं फसल की बढोत्तरी के लिए 25 से 30 डिग्री सेल्सियस तापमान की आवश्यकता होती है। सोयाबीन की अच्छी फसल के लिए वार्षिक वर्षा 600 से 700 मिमी. होनी चाहिए।

उपयुक्त भूमि : सोयाबीन की खेती के लिए उपजाऊ, अच्छे जलनिकास वाली, नमक रहित, मध्यम से भारी दोमट मिट्टी की आवश्यकता होती है। जिस भूमि पर अधिक पानी ठहरता हो, उसमें सोयाबीन की खेती नहीं करनी चाहिए। अधिक उत्पादन के लिये खेत में जलनिकास की व्यवस्था करना आवश्यक होता है। लवणीय व क्षारीय मिट्टी सोयाबीन की खेती के लिए अनुकूल नहीं होती है। ढ़ेला रहित और भुरभुरी मिट्टी वाले खेत सोयाबीन के लिये उत्तम होते हैं। सोयाबीन की अच्छी पैदावार के लिए मिट्टी का पीएच 6.0 से 7.5 अनूकूल होता है। कम तापमान भी इस फसल को गंभीर रूप से प्रभावित करता है।

खेत की तैयारी

मिट्टी परीक्षणः संतुलित उर्वरक प्रबंधन एवं मृदा स्वास्थ्य हेतु मिट्टी का मुख्य तत्व जैसे नाइट्रोजन, फॉस्फोरस, पोटाश, द्वितीयक पोषक तत्व जैसे सल्फर, कैल्शियम, मैग्नीशियम एवं सूक्ष्म पोषक तत्व जैसे जस्ता, तांबा, लौहा, मैंगनीज, मोलिब्ड़ेनम, बोरॉन के साथ ही पीएच, ई.सी. एवं कार्बनिक पदार्थ का परीक्षण करायें।

ग्रीष्मकालीन जुताईः खाली खेतों की ग्रीष्मकालीन गहरी जुताई मिट्टी पलटने वाले हल से मार्च से 15 मई तक 9 से 12 इंच गहराई तक करें।

बुवाई का समय एवं तरीका

जून के अंतिम सप्ताह से जुलाई के प्रथम सप्ताह तक बुवाई का समय सबसे उपयुक्त है। बुवाई के समय अच्छे अंकुरण हेतु भूमि में 10 सेंमी. गहराई तक उपयुक्त नमी होनी चाहिये। जुलाई के प्रथम सप्ताह के पश्चात् बुवाई की बीज दर 5–10

प्रतिशत बढ़ा देनी चाहिये। कतार से कतार की दूरी 30 सेंमी. (बोनी किस्मों के लिये) तथा 45 सेंमी. बड़ी किस्मों के लिये रखें। पौधे से पौधे की दूरी 5 से 7 सेंमी. होनी चाहिए। बीज 2.5 से 3 सेंमी. गहरा बोयें। अधिक गहराई से अंकुरित बीज को ऊपर आने में अधिक समय लगता है तथा पौधों की वृद्धि पर प्रतिकूल असर पड़ता है। बुवाई के समय तापमान 25–38 डिग्री सेल्सियस होना चाहिए।

उन्नत प्रजातियाँ

उन्नत किस्मों का चयन वर्षा के समय तथा अपने क्षेत्र के अनुसार करना चाहिए। एकल किस्म के बजाय कई किस्मों को अपनाया जा सकता है। क्षेत्रीय अनुकूलता के आधार पर सोयाबीन की प्रमुख उन्नत किस्में तालिका 1 में दी गई है।

बीज दरः बुवाई हेतु दानों के आकार के अनुसार बीज की मात्रा का निर्धारण करें। पौध संख्या 4–4.5 लाख प्रति हैक्टर रखें। छोटे दाने वाली किस्मों को 28 कि॰ग्रा॰ प्रति एकड, मध्यम दाने वाली 32 कि॰ग्रा॰ प्रति एकड़ एवं बड़े दाने वाली 40 कि॰ग्रा॰ प्रति एकड़ की बीज दर से बोएं।

तालिका 1. क्षेत्रीय अनुकूलता के आधार पर उन्नत किस्में

उन्नत किस्में	पकने की अवधि (दिन)	औसत उपज (कुंटल/हैक्टर)	राज्य	अनुमोदन वर्ष	तेल प्रतिशत	प्रोटीन प्रतिशत
जे.एस. 335	95–100	25–30	मध्य क्षेत्र	1994	18	36.9
एम.ए.यू.एस. 47	85–90	20–25	मध्य प्रदेश, राजस्थान, महाराष्ट्र	2000	20	40.2
एनआरसी 7 (अहिल्या–3)	100–105	25–30	मध्य प्रदेश	1997	19	37.16
एनआरसी 37	95–100	30–35	मध्य प्रदेश, राजस्थान, महाराष्ट्र, उत्तर प्रदेश (बुंदेलखंड क्षेत्र)	2001	18	37.9
एम.ए.यू.एस.81	93–96	22–30	मध्य क्षेत्र	2004	21	41.5
जे.एस. 93–05	95–95	25	महाराष्ट्र, मध्य प्रदेश, राजस्थान, गुजरात उत्तर प्रदेश (बुंदेलखंड क्षेत्र)	2002	18–19	41–42
जे.एस. 95–60	80–85	20–25	मध्य प्रदेश	2007	18–21	38–40
जे.एस. 97–52	100–110	25–30	मध्य क्षेत्र, उत्तर पूर्वी क्षेत्र	2008	20–21	39–41
जे.एस. 20–29	90–95	25–30	मध्य क्षेत्र	2014	21	41.1
जे.एस. 20–34	87–88	22–25	मध्य क्षेत्र	2014	21	40.8
एन.आर.सी.–12	96–99	22–30	मध्य प्रदेश	1997	17	40.4
एन.आर.सी.–86	90–95	20–25	मध्य क्षेत्र	2015	20	40.6
अंकुर	115–120	20–25	पंजाब, हरियाणा, दिल्ली, उत्तर प्रदेश के मैदानी इलाके व पश्चिमी बिहार	1976	21–23	41–43
पी.के. 262	115–120	25–30	– उपरोक्त –	1983	22	39.21
पी.के. 308	110	20–25	– उपरोक्त –	1985	21	40.32
पी.के. 416	115–120	30–35	– उपरोक्त –	1986	23	41.56
पूसा–12	124–131	22–23	पंजाब, हरियाणा, दिल्ली, उत्तराखंड, बिहार और उत्तरप्रदेश	2015	20	37.8

बीजोपचार : सोयाबीन के अंकुरण को बीज तथा मृदा जनित रोग प्रभावित करते हैं। इसकी रोकथाम हेतु बीज को थायरम या कैप्टान 2 ग्राम, कार्बेंडाजिम या थायोफिनेट मिथाइल 1 ग्राम मिश्रण प्रति कि॰ग्रा॰ बीज दर से उपचारित करना चाहिये अथवा ट्राईकोडरमा 4 ग्राम प्रति कि॰ग्रा॰ बीज दर से उपचारित करके बोएं।

सिंचाई : खरीफ की फसल होने के कारण सामान्यतः सोयाबीन को सिंचाई की आवश्यकता नहीं होती है। फलियों में दाना भरते समय अर्थात् सितम्बर माह में यदि खेत में पर्याप्त नमी न हो तो आवश्यकतानुसार एक या दो हल्की सिंचाई करना सोयाबीन के अधिक उत्पादन लेने हेतु लाभदायक है।

पोषक तत्व प्रबंधन

तालिका 2. नत्रजनःफॉस्फोरसःपोटाशःसल्फर की क्षेत्रवार संस्तुत मात्रा

क्षेत्र	नत्रजनःफॉस्फोरसःपोटाशःसल्फर की संस्तुत मात्रा (कि.ग्रा. प्रति हैक्टर)	उर्वरक स्रोत (कि.ग्रा. प्रति हैक्टर)
उत्तर पूर्व	25:100:50:50	56 किग्रा यूरिया, 625 किग्रा एस एस पी, 84 किग्रा एम ओ पी
उत्तरी मैदान	25:75:25:37.50	56 किग्रा यूरिया, 470 किग्रा एस एस पी,42 किग्रा एम ओ पी
मध्य क्षेत्र	25:60:40:20	56 किग्रा यूरिया, 375 किग्रा एस एस पी,67 किग्रा एम ओ पी
दक्षिण क्षेत्र	25:80:20:30	56 किग्रा यूरिया, 500 किग्रा एस एस पी, 34 किग्रा एम ओ पी

खरपतवार प्रबंधन : खेत से खरपतवार को नष्ट करने के लिए समय के अनुकूल खरपतवारनाशी दवाओं का चयन कर उपयोग करें। सोयाबीन के लिए निम्नलिखित खरपतवारनाशक दवाओं की सिफारिश की गई है।

तालिका 3. खरपतवारनाशक रासायनिक दवाईयां

खरपतवार नाशक	दवा का रासायनिक नाम	मात्रा प्रति हैक्टर
बुवाई पूर्व उपयोगी (पीपीआई)	फ्लुक्लोरेलीन	2.22 ली.
	ट्राईफ्लूरेलीन	2.00 ली.
बुवाई के तुरंत बाद (पीआई)	मेटालोक्लोर	2.00 ली.
	क्लोमेझोन	2.00 ली.
	पेन्डीमिथालीन	3.25 ली.
	डाइक्लोसुलभ	26 ग्राम
15–20 दिन के बाद उपयोगी	इमोजाथायपर	1.00 ली.
	किव्जालोफॉप इथाइल	1.00 ली.
	फेनाक्सीफॉप पी–इथाइल	0.75 ली.
	हेलाक्सीफॉप	1.35 ली.
10–15 दिन के बाद उपयोगी	क्लोरिम्युरान इथाइल	0.36 ली.

फसल की कीटों से सुरक्षा : एकीकृत कीट नियंत्रण के उपाय अपनाएं जैसे नीम तेल व प्रकाश पाश का उपयोग तथा प्रभावित एवं क्षतिग्रस्त पौधों को निकालकर खेत के बाहर मिट्टी में दबा दें। कीटनाशकों के छिड़काव हेतु 500 लीटर प्रति हैक्टर पानी का उपयोग करना अति आवश्यक है।

जैविक नियंत्रण

- खेत में "टी" आकार की खूंटी 20–25 प्रति हैक्टर लगाएं।
- फेरोमोन ट्रैप का 10–12 प्रति हैक्टर उपयोग करें।
- प्रकाश पाश कीटों के प्रकोप की जानकारी के लिए लगायें।

रासायनिक नियंत्रण

तालिका 4. सोयाबीन में कीटों का नियंत्रण

कीट	नियंत्रण (मात्रा प्रति हैक्टर)
ब्लू बीटल	क्लोरपायरीफास + क्यूनालफॉस 1.5 लीटर, जरूरत पडने पर पहले छिडकाव के 10 दिन बाद दूसरा छिडकाव करें
गर्डल बीटल	ट्राईएजोफास 0.8 लीटर या थायोक्लोप्रीड 0.75 लीटर
तम्बाकू की इल्ली एवं रोयेंदार इल्ली	क्लोरपायरीफास 20 ई.सी. 1.5 लीटर या इंडोक्साकार्ब 14.5 एस.पी. 0.5 लीटर या स्पेनेक्सीपायर 20 एस.पी. 0.10 लीटर
सेमिलुपर इल्ली	जैविक नियंत्रण हेतु बेसिलस थुरिंजिएंसिस + ब्यूवेरिया बेसियाना 1 लीटर
चने एवं तम्बाकू की इल्ली	जैविक नियंत्रण चने की इल्ली एच.ए.एन.पी.पी 250 एल.ई. लीटर या बेसिलस थुरिजिएंसिस +ब्यूवेरिया बेसियाना 1 लीटर
तना मक्खी या सफेद मक्खी	थाइमैथोक्सम 40 ग्राम या ट्राइएजोफोस 300 मिली. छिडकाव/एकड़ जरूरत पडने पर पहले छिडकाव के 10 दिन बाद दूसरा छिडकाव करें

रोग प्रबंधन

– पत्तों पर कई तरह के धब्बे वाले फफुंदजनित रोगों को नियंत्रित करने के लिये कार्बेंडाजिम 50 डब्ल्यू.पी. या थायोफेनेट मिथाइल 70 डब्ल्यू.पी. 0.05–0.1 प्रतिशत से 1 ग्राम दवा प्रति लीटर पानी का छिड़काव करना चाहिये। पहला छिड़काव 30–35 दिन तथा दूसरा 40–45 दिन की अवस्था पर करना चाहिये।

– बैक्टीरियल पश्ट्यूल रोग के नियंत्रण के लिये स्ट्रेप्टोसाइक्लीन या कासूगामाइसिन की 200 मिग्रा दवा प्रति लीटर पानी और कॉपर आक्सीक्लोराइड 0.2 (2 ग्राम प्रति लीटर पानी) के घोल में मिश्रण करना चाहिये। इसके लिये 10 लीटर पानी में 1 ग्राम स्ट्रेप्टोसाइक्लीन एवं 20 ग्राम कॉपर ऑक्सीक्लोराइड दवा का घोल बनाकर उपयोग कर सकते हैं।

– विषाणु जनित पीला मौजेक वायरस रोग व बड़ ब्लाइट रोग प्रायः एफिड, सफेद मक्खी, थ्रिप्स आदि द्वारा फैलता है। रोग रहित स्वस्थ बीज का उपयोग करना चाहिये एवं रोग फेलाने वाले कीड़ों के लिये थायोमेथेक्जाम 70 डब्ल्यू.एस. से 3 ग्राम प्रति कि॰ग्रा॰ की दर से उपचारित कर 30 दिनों के अंतराल पर दोहराते रहें। रोगी पौधों को खेत से निकाल देना चाहिए। इथोफेनप्राक्स 10 ईसी 400 मिली., मिथाइल डेमेटान 25 ईसी 300 मिली., डायमिथोएट 30 ईसी 300 मिली., थायोमेथेक्जाम 25 डब्ल्यू जी 400 ग्राम प्रति एकड़ उपयोग करना चाहिए।

फसल की कटाई एवं गहाई : अधिकांश पत्तियों के सूख कर झड़ जाने और 10 प्रतिशत फलियों के सूख कर भूरी हो जाने पर फसल की कटाई कर लेनी चाहिये। कटाई के समय तापमान 18–25 डिग्री सेल्सियस होना चाहिए। पकने के 4–5 दिन बाद, पंजाब 1, जे.एस. 335, जे.एस.76–205 एवं जे.एस. 72–44, जे.एस. 75–46 आदि किस्मों की फलियां सूखने के लगभग 10 दिन बाद चटकने लगती है। कटाई के बाद गट्ठों को 2–3 दिन तक सुखाना चाहिये। जब कटी फसल अच्छी तरह सूख जाये तो गहाई कर दोनों को अलग कर देना चाहिये। फसल गहाई थ्रेसर, ट्रैक्टर, बैलों तथा हाथ द्वारा लकड़ी से पीटकर करनी चाहिये।

उपजः वर्षा आधारित फसल में सोयाबीन की पैदावार 16–20 कुंटल प्रति हैक्टर और सिंचित अवस्था में 20–30 कुंटल प्रति हैक्टर होती है।

समाप्त

मदद करने के लिए केवल धन की जरुरत नहीं होती,
उसके लिए अच्छे मन की जरुरत होती है।

जीतेन्द्र सिंह, विजयता सिंह, जोगेन्द्र सिंह, जसवंत सिंह, धीरज कुमार, सतीश कुमार सनवाल एवं पी॰सी॰ शर्मा
भाकृअनुप–केन्द्रीय मृदा लवणता अनुसंधान संस्थान, करनाल–132001 (हरियाणा)
E-mail: jogendra.singh@icar.gov.in

चने की उन्नत खेती

चना रबी में उगायी जाने वाली महत्वपूर्ण दलहन फसल है। विश्व के कुल चना उत्पादन का 70 प्रतिशत भारत में होता है। चने में 21 प्रतिशत प्रोटीन, 61.5 प्रतिशत कार्बोहाइड्रेट तथा 4.5 प्रतिशत वसा होती है। इसमें कैल्शियम व लौहा की अच्छी मात्रा होती है। अनाज पर आधारित भोजन में दलहन सम्मिलित करने पर पोषकयुक्त संतुलित आहार उपलब्ध होने की अपार संभावनाएं है। औसत रूप से दालों में 20–25 प्रतिशत तक प्रोटीन पाई जाती है, जोकि अनाज वाली फसलों की तुलना में 2.5–3.0 गुना अधिक होती है। प्रति व्यक्ति दालों की उपलब्धता बढ़ाने हेतु अन्य दलहनों के साथ–साथ चने की उत्पादकता एवं उत्पादन बढ़ाने के लिए एकीकृत प्रयास करने की आवश्यकता है जिससे पोषण सुरक्षा को सुनिश्चित किया जा सके। चने से मानव के लिए प्रोटीन एवं पशुओं हेतु उच्च गुणवत्ता युक्त चारे की उपलब्धता होती है। चना उगाने से भूमि की उर्वराशक्ति बनी रहती है एवं यह टिकाऊ कृषि में सहायक होती है। चना या अन्य दलहन उगाने से भूमि की भौतिक, रासायनिक एवं जैविक गुणवत्ता में वृद्धि होती है, साथ ही चने की जड़ों में पाई जाने वाली ग्रंथियों में राइजोबियम जीवाणु वायुमण्डलीय नाइट्रोजन का स्थिरीकरण करके पौधों को उपलब्ध कराता है, जो एक लघु नाइट्रोजन फैक्ट्री के रूप में कार्य करता है। चने की जड़ें भूमि में वायुवीय संचार को बढ़ाने में भी सहायक होती है। अधिक पैदावार एवं सूखा सहन करने वाली किस्में आने से चना अनाज के साथ तिलहन फसल प्रणाली में संगत रूप से उपयुक्त है। जिससे किसानों की कुल आय एवं उत्पादकता में वृद्धि संभव है। चना फसल को पानी की कम आवश्यकता होती है, अतः यह फसल किसानों के लिए अधिक लाभकारी है।

मृदा स्वास्थ्य में चना का महत्व

चना एक वर्षीय शाकीय पौधा है। इसकी ऊँचाई सामान्यतः 30–70 सेंमी. तक होती है। इसकी जड़ें मूसला जड़ होती हैं जो सामान्यतः भूमि में अधिक गहराई तक जाती है एवं मजबूत होती है। चना की जड़ ग्रंथियों में राईजोबियम नामक जीवाणु पाया जाता है, जो वायुमण्डलीय नाइट्रोजन का स्थिरीकरण करके पौधे को नत्रजन उपलब्ध कराता है एवं मृदा की उर्वरता में सुधार करता है। चना अपनी कुल नाइट्रोजन आवश्यकता की 80 प्रतिशत पूर्ति सहजीवी नाइट्रोजन स्थिरीकरण प्रक्रिया द्वारा कर लेता है। चना अपने जीवन काल में 140 कि॰ग्रा॰ नाइट्रोजन प्रति हैक्टर तक स्थिरीकरण कर सकता है। इस प्रकार आगामी फसल के लिए अवशिष्ट नाइट्रोजन की संतोषप्रद मात्रा मृदा में रह जाती है। दूसरी ओर फसल अवशेष के रूप में कार्बनिक पदार्थ भी अच्छी मात्रा में मिल जाता है, जिससे मृदा उर्वरता एवं मृदा स्वास्थ्य में सुधार होता है। चने की जड़ों का अधिक विकास होता है एवं मृदा में जैविक हलचल बढ़ने से पोषक तत्वों की उपलब्धता भी बढ़ती है। चना की जड़ें गहरी होने के कारण मृदा की गहराई से नमी को ग्रहण करती है, जिससे पौधे की सूखा सहन करने की क्षमता बढ़ती है।

उपयोग एवं पोषक गुणवत्ता

चना का उपयोग कई तरह से किया जाता है, जैसे हरी पत्तियाँ एवं कोमल शाखाएँ हरी सब्जी के रूप में प्रयोग में लाई जाती है। कच्चे बीज या दाने सलाद या सब्जी के रूप में उपयोग किये जाते हैं। इसी तरह पके हुए दानों को दाल बनाने, भुना हुआ दाना बनाने इत्यादि प्रयोग में लाया जाता है। चने के आटे से बेसन बनाकर कई तरह की मिठाइयाँ एवं विभिन्न प्रकार की नमकीन बनाने में प्रयुक्त होता है। चना की पत्तियाँ, तना एवं चारा पशुओं को खिलाने के काम में लिया जाता है। चना का चारा प्रोटीन युक्त एवं स्वादिष्ट होता है इसी कारण इसे पशु बड़े चाव से खाते हैं।

चने के दाने प्रोटीन एवं कार्बोहाइड्रेट का एक अच्छा स्रोत है। चना के दानों में सभी आवश्यक अमीनो अम्लों की मात्रा बहुतायत में पाई जाती है। चना का मुख्य संग्राही कार्बोहाइड्रेट स्टार्च है, तत्पश्चात आहार रेशा, ओलिगोसेकेराइड एवं सामान्य शर्करा जैसे ग्लूकोज एवं सूक्रोज पाई जाती है। चना के दानों में कैल्शियम, मैग्नीशियम, फॉस्फोरस एवं पोटाश भी पाया जाता है। कुछ महत्वपूर्ण विटामिन जैसे राइबोफ्लेविन, नियासिन, थायमिन, फोलेट, बीटा केरोटिन (विटामिन ए) इत्यादि का भी अच्छा स्रोत है।

तालिका 1.चना के दानों के 100 ग्राम शुष्कभार की पोषक गुणवत्ता

घटक	मात्रा (ग्राम)	घटक	मात्रा
प्रोटीन	17.0–22.0	लौहा	4.6–7.0 मिग्रा.
स्टार्च	33.1–40.4	कुल शर्करा	10.7–11.3 ग्राम
सूक्रोज	1.56–2.85	कुल तेल	5.88–6.57 ग्राम
रेफिनोज	0.46–0.77	ऊर्जा	368 किलोकैलोरी
स्टेकायोज	1.25–1.98	विटामिन सी	1.65–1.73 मिग्रा.
कार्बोहाइड्रेट	60.7–63.3	विटामिन बी	1.72–1.81 मिग्रा.
वसा	6.0–6.5	कुल आहार रेशा	18.0–22.0 ग्राम

राज्यवार उत्पादन

देश में दलहन फसलों का उत्पादन लगभग 17 मिलियन टन प्रति वर्ष होता है। चने का उत्पादन कुल दलहन फसलों के उत्पादन का लगभग 45 प्रतिशत होता है। देश में चने का सबसे अधिक उत्पादन मध्य प्रदेश में होता है। जो कुल चना उत्पादन का 25.3 प्रतिशत पैदा करता है। इसके पश्चात आन्ध्र प्रदेश (15.4 प्रतिशत), राजस्थान (9.7 प्रतिशत), कर्नाटक (9. 6 प्रतिशत) तथा उत्तर प्रदेश (6.4 प्रतिशत) का स्थान आता है।

जलवायु : चना रबी मौसम की दलहनी फसल है। उष्णकटिबंधीय जलवायु में इसे शरद ऋतु में उगाया जाता है। जबकि समशीतोष्ण जलवायु क्षेत्र में चना की खेती ग्रीष्म या बसंत काल में की जाती है। सामान्यतः चना की बुवाई रबी में, बारानी एवं असिंचित दोनों क्षेत्रों में की जाती है। चना में पुष्पावस्था को वहाँ का तापमान, प्रकाश अवधि एवं नमी की उपलब्धता इत्यादि अजैविक कारक प्रभावित करते हैं। सामान्यतः कम तापक्रम एवं लघु प्रकाश अवधि में पुष्प देरी से निकलते हैं। चना में आनुवंशिक भिन्नता पाई जाती है, इसलिए पौधा प्रकाश अवधि सहिष्णु होता है। प्रजनन अवस्था में चना की फसल अत्यधिक (अधिकतम दैनिक तापमान 35 डिग्री सेल्सियस) एवं निम्न तापमान से ज्यादा प्रभावित होती है। चना की अच्छी वृद्धि एवं पैदावार हेतु बुवाई से लेकर कटाई तक 30–35 डिग्री सेल्सियस तापमान अच्छा माना जाता है। पुष्पावस्था में उच्च तापमान एवं निम्न तापमान होने से फूल झड़ जाते हैं एवं फलियाँ नहीं बनती है।

भूमि एवं तैयारी : चने की खेती के लिए हल्की दोमट या दोमट मिट्टी अच्छी होती है। जिसका पीएच मान 5.5–6.0 हो तो चना की खेती के लिए उपयुक्त है। भूमि में जल निकास की उपयुक्त व्यवस्था होनी चाहिये। भूमि में अधिक क्षारीयता नहीं होनी चाहिये। प्रथम जुताई मिट्टी पलटने वाले हल या डिस्क हैरो से करनी चाहिये। इसके पश्चात एक क्रास जुताई हैरो से करके पाटा लगाकर भूमि समतल कर देनी चाहिये। फसल को दीमक एवं कटवर्म के प्रकोप से बचाने के लिए अन्तिम जुताई के समय हैप्टाक्लोर (4 प्रतिशत) या क्यूनालफॉस (1.5 प्रतिशत) या मिथाइल पैराथियोन (2 प्रतिशत) या एन्डोसल्फॉन (1.5 प्रतिशत) चूर्ण की 25 कि॰ग्रा॰ मात्रा को प्रति हैक्टर की दर से मिट्टी में अच्छी प्रकार मिला देना चाहिये।

उन्नतशील प्रजातियाँ : किस्मों का चयन क्षेत्र की फसल पद्धति, बुवाई का समय, सिंचाई जल की उपलब्धता इत्यादि कारकों पर निर्भर करता है।

खेत में खड़ी चने की फसल

चने की हरी फलियाँ

तालिका 2. चना की उन्नतशील प्रजातियाँ एवं उनकी विशेषताएँ

उन्नत किस्में	पकने की अवधि (दिन)	औसत उपज (कुंटल/है.)	100 दानों का भार	क्षेत्र	विशेषताएं
देशी चना					
डी.सी.पी. 92–3	145–150	19–20	17 ग्राम	सिंचित	मध्यम फैलने वाली, पीले दाने, दाने माध्यम–बड़े आकार के
विजय	105–110	19–21	15 ग्राम	बारानी	फैलने वाली, बीज का आकार छोटा
जे.जी 16 (एस.ए.के आई. 1916)	110–140	20–22	19 ग्राम	समय पर बुवाई	बीजों का रंग हल्का भूरा, अर्द्ध फैलावादार, अत्याधिक शाखाएँ, पत्तियों का रंग गहरा हरा, बीजों का आकार मध्यम
जे.जी 130	115–120	18–20	24 ग्राम	बरानी एवं सिंचित	अर्ध फैलावादर, मध्यम ऊंचाई, बीजों का आकार बड़ा, बीजों की आकृति गोलाकार
पूसा 391 (बी. जी. 391)	110–120	20–25	25 ग्राम	बारानी एवं सिंचित	मध्यम ऊँचाई, उर्ध्व पौधा, बीजों का रंग गहरा भूरा एवं बीज का आकार बड़ा
काबुली चना					
शुभ्रा (आई.आ.पी.सी.के. 2002–29)	110–115	20–22	35 ग्राम	सिंचित	उर्ध्व, हल्की हरी पत्तियाँ, बीज का आकार बड़ा एवं रंग सफेद
पूसा शुभ्रा (बी.डी.जी. 128)	115–120	18–19	28 ग्राम	सिंचित	अर्ध उर्ध्व, पत्तियों का रंग हल्का हरा, बीज का आकार बड़ा एवं रंग बिस्कुटी
उज्ज्वल(आई.पी.सी.के. 2004–29)	108–115	18–20	35 ग्राम	सिंचित	पौधा उर्ध्व, पत्तियों का रंग हल्का हरा बीज के आकार बड़ा
जवाहर काबुली चना 1	100–110	14–15	38 ग्राम	बारानी	उकठा के प्रति मध्यम अवरोधी एवं सिंचित

उपचार एवं संवर्धन : बीज जनित रोगों से बचाव हेतु फफूंदीनाशक द्वारा बीजोपचार अति आवश्यक है। चना को उकठा एवं जड़ गलन बीमारी से बचाव हेतु 2.5 ग्राम थायरम या 1 ग्राम बाविस्टिन या 1.5 ग्राम थायरम 0.5 ग्राम बाविस्टिन प्रति कि॰ग्रा॰ बीज के हिसाब से उपचारित करना लाभकारी है। यदि दीमक का प्रकोप अधिक हो तो क्लोरपायरीफास (1.0 लीटर प्रति कुंटल बीज) द्वारा बीजोपचार उपयोगी है।

दलहनी फसलों में जड़ ग्रंथियों की संख्या एवं नाइट्रोजन स्थिरीकरण बढ़ाने हेतु उचित राइजोबियम जीवाणु द्वारा बीजोपचार करना चाहिए। नाइट्रोजन स्थिरीकरण एवं फॉस्फोरस उपलब्धता बढ़ाने हेतु क्रमशः राइजोबियम एवं फॉस्फेट विलेयक जीवाणु (पी.एस.बी) या वेसिकूलर आर्बस्कूलर माइकोराइजा (20–25 ग्राम प्रति कि॰ग्रा॰ बीज) से उपचारित करने से उपज बढ़ती है।

बोने का समय एवं बुवाई : असिचिंत क्षेत्रों में चने की बुवाई अक्टूबर के प्रथम पखवाड़े में कर देनी चाहिये। जिन क्षेत्रों में सिंचाई की सुविधा हो वहाँ बुवाई 30 अक्टूबर तक अवश्य कर देनी चाहिये। फसल से अधिक पैदावार प्राप्त करने के लिए खेत में प्रति इकाई पौधों की उचित संख्या होना बहुत आवश्यक है। पौधों की उचित संख्या के लिए आवश्यक बीज दर व पंक्ति से पंक्ति एवं पौधे से पौधे की उचित दूरी की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। बारानी खेती के लिए 80 कि॰ग्रा॰ तथा सिंचित क्षेत्र के लिए 60 कि॰ग्रा॰ बीज की मात्रा प्रति हैक्टर पर्याप्त होती है। बारानी फसल के लिए बीज की गहराई 7 से 10 सेंमी. तथा सिंचित क्षेत्र के लिए बीज की बुवाई 5 से 7 सेंमी. गहराई पर करनी चाहिये। फसल की बुवाई पंक्ति से पंक्ति की दूरी 45 से 50 सेंमी. पर करनी चाहिये।

खाद एवं उर्वरक प्रबंधन : चना की अधिक उत्पादकता लेने हेतु पर्याप्त एवं संतुलित मात्रा में पोषक तत्वों की आपूर्ति करना आवश्यक है। चना हेतु उर्वरकों की आवश्यकता वहाँ की मृदा उर्वरता, मृदा नमी, प्रजातियाँ, पौधों के वृद्धिकाल, उपज एवं अवशेष निस्ताकरण इत्यादि कारकों पर निर्भर करती है। इसके अलावा पूर्ववर्ती फसल द्वारा पोषक तत्वों के दोहन

द्वारा पोषक तत्वों की आवश्यकता प्रभावित होती है। सामान्यतः रबी दलहन का एक टन जैवभार पैदा करने पर 30–50 कि॰ग्रा॰ नाइट्रोजन, 2–7 कि॰ग्रा॰ फॉस्फोरस, 12–30 कि॰ग्रा॰ पोटाश, 3–10 कि॰ग्रा॰ कैल्शियम, 1–5 कि॰ग्रा॰ मैग्नीशियम 1–3 कि॰ग्रा॰ सल्फर, 200–500 ग्राम मैंग्नीज, 5 ग्राम बोरॉन, 1 ग्राम कॉपर एवं 0.5 ग्राम मोलिब्डेनम का दोहन होता है। यह औसत मात्रा प्रयोगों पर आधारित है। चना के दानों में प्रोटीन की भरपूर मात्रा पाई जाती है। अतः नाइट्रोजन का मृदा से ह्रास अधिक होता है, जिसकी आपूर्ति वायुमंडलीय नाइट्रोजन के स्थिरीकरण द्वारा पूरी कर लेता है। अतः बाह्य स्रोत द्वारा प्रारंभिक अवस्था में 15–20 कि॰ग्रा॰ प्रति हैक्टर नाइट्रोजन की आवश्यकता होती है।

उपरोक्त उर्वरकों की संस्तुत नाइट्रोजन, फॉस्फोरस एवं पोटाश की सम्पूर्ण मात्रा बुवाई के समय प्रयोग की जानी चाहिए। भारतीय दलहन अनुसंधान संस्थान, कानपुर में परीक्षणों से पाया गया है कि लगातार पोटाश एवं सूक्ष्म तत्व (जिंक, लौह, मॉलिब्डेनम, बोरॉन इत्यादि) उर्वरक मिट्टी में नहीं मिलाने से पोटाश एवं सूक्ष्म तत्वों की कमी आ रही है। जिनके लक्षण दलहनी फसलों की पत्तियों पर देखे जा सकते हैं। इनकी आपूर्ति हेतु 40 कि॰ग्रा॰ पोटाश, 20–25 कि॰ग्रा॰ जिंक सल्फेट, 15–20 कि॰ग्रा॰ आयरन सल्फेट, 10 कि॰ग्रा॰ बौरेक्स, 1.5 कि॰ग्रा॰ प्रति हैक्टर अमोनियम मोलिब्डेनम इत्यादि उर्वरक देने से पैदावार में वृद्धि होती है। इसके अलावा सूक्ष्म तत्वों की कमी के लक्षण दिखाई देने पर सूक्ष्म तत्वों का छिड़काव करना भी लाभप्रद रहता है। बीज या दाने में सूक्ष्म तत्वों, विशेष रूप से जिंक एवं लौह तत्व की मात्रा बढ़ाने हेतु 0.5 प्रतिशत जिंक सल्फेट एवं 0.3 प्रतिशत आयरन सल्फेट का छिड़काव कर सकते हैं।

तालिका 3. चना की अच्छी फसल लेने हेतु संस्तुत उर्वरकों की मात्रा

फसल	पारिस्थितिकी	बुवाई का समय	एनःपीःकेःएस की मात्रा (कि॰ग्रा॰ प्रति हैक्टेयर)
चना (देशी)	बारानी	सामान्य	20–40–0–20
	सिंचित	सामान्य	20–60–20–20
		देरी से	40–40–20–20
चना (काबुली)	सिंचित	सामान्य	30–60–30–20
		देरी से	40–60–30–20

सिंचाई : चने की अधिकतर खेती बारानी क्षेत्रों में संचित नमी में की जाती है। यदि सिंचाई की सुविधा उपलब्ध हो तो नमी की कमी होने की स्थिति में एक या दो सिंचाई की जा सकती है। पहली सिंचाई 40 से 50 दिनों बाद तथा दूसरी सिंचाई फलियां आने पर की जानी चाहिये। सिचिंत क्षेत्रों में चने की खेती के लिए 3 से 4 सिंचाई पर्याप्त होती है। बुवाई से पहले पलेवा करके फसल की बुवाई करनी चाहिये। इसके पश्चात फसल की गुड़ाई करने के पश्चात बुवाई के 35–40 दिन बाद प्रथम 70–80 दिन बाद दूसरी एवं 105–110 दिनों बाद अन्तिम सिंचाई करनी चाहिये। यदि बुवाई के बाद दो ही सिंचाई की सुविधा उपलब्ध हो तो प्रथम बुवाई के 40–50 दिनों बाद तथा द्वितीय 80–85 दिनों बाद करनी चाहिये। यदि बुवाई के बाद एक ही सिंचाई करने योग्य पानी उपलब्ध हो तो बुवाई के 60–65 दिनों बाद सिंचाई करने को प्राथमिकता देनी चाहिये। ध्यान रहे खेत में अधिक समय तक पानी भरा नहीं रहना चाहिये इससे फसल को नुकसान हो सकता है।

खरपतवार प्रबंधन : फसल उत्पादन में खरपतवार बहुत बड़ी जैविक बाधा है। खरपतवार फसल उत्पादकता घटाने के साथ ही उसकी गुणवत्ता में भी कमी लाता है। जैविक कारकों द्वारा कुल नुकसान का लगभग 37 प्रतिशत केवल खरपतवारों के कारण होता है। खरपतवार से दलहन फसलों की पैदावार में औसतन 50–60 प्रतिशत तक की कमी देखी गई है, जोकि दलहन जाति एवं वंश तथा प्रबंधन प्रणलियों पर निर्भर है। इसी प्रकार प्रभावी खरपतवार नियंत्रण से चना में 22–63 प्रतिशत तक पैदावार में वृद्धि अर्जित की गई है। चना की फसल में बथुआ, जंगली जई, मोथा, दूब घास, गेहूँ का मामा एवं जंगली गाजर प्रमुख खरपतवार है।

खरपतवार प्रबंधन की विधियाँ

खरपतवार नियंत्रण का मुख्य उद्देश्य अवांछनीय पौधों की वृद्धि को रोकना एवं लाभदायक या उपयोगी पौधों की वृद्धि को बढ़ाना है। खरपतवार प्रबंधन के प्रमुख तरीके निम्नांकित हैं :

खरपतवार रोकथामः खरपतवारों का प्रवेश एवं स्थापना को रोकना, खरपतवार रोकथाम के लिए कारगर है। जैसे खरपतवार मुक्त बीज की क्यारी बनाना, खाद को संदूषण मुक्त रखना, अजोत क्षेत्र को साफ रखना, मशीन और औजारों को साफ रखना इत्यादि।

सस्य क्रियाएँ: इसमें कम लागत एवं पर्यावरण अनुकूल तरीके, फसल चक्र, उचित पौध संख्या, अंतः फसल, संरक्षित जुताई इत्यादि तरीके अपनाए जा सकते है।

कृषि यांत्रिकी: इस विधि द्वारा खरपतवार नाशी यंत्र का प्रयोग करके खरपतवारों को निकाला जा सकता है। जैसे कुदाली, निराई, शुष्क भूमि हेतु खूँटीनुमा निराई उपकरण, एकल पहिया यंत्र, जुड़वाँ पहिया यंत्र, शक्ति चालित झाड़ूनूमा जुताई यंत्र इत्यादि।

खरपतवारनाशक: हाथों या खुरपी द्वारा खेत से खरपतवार निकालना एक साधारण तरीका है, परन्तु इसके लिए कृषि श्रमिकों की संख्या घटती जा रही है। इसकी कमी सबसे पहले पंजाब, हरियाणा, उत्तराखंड, पश्चिमी उत्तर प्रदेश में देखी गई। अतः शाकनाशी या खरपतवारनाशी की मांग बढ़ती जा रही है।

तालिका 4. चने हेतु संस्तुत खरपतवारनाशी

खरपतवारनाशी	मिली. प्रति है.	प्रयोग का समय	विशेष
पेंडीमेथालिन	2500–3000	बुवाई के बाद से अंकुरण पूर्व	अधिकतर एकवर्षीय घास एवं कुछ चौड़ी पट्टी वाले खरपतवार भी मारता है।
फ्लूक्लोरेलिन	1500–2000	बुवाई पूर्व	सतह की मिट्टी में अच्छी तरह मिलाएं। कई तरह के एकवर्षीय संकरी एवं चौड़ी पत्ती वाले खरपतवारों का नियंत्रण करता है।
मेटेलाक्लोर	2000–3000	बुवाई के बाद परंतु अंकुरण से पहले	कई तरह के वार्षिक चौड़ी एवं संकरी पत्ती वाले खरपतवार नियंत्रण करता है।
क्विजेलोफौप इथाइल	1000–2000	बुवाई के 15–20 दिन के मध्य	एकवर्षीय घासों को मारने हेतु कारगर है।

कीट एवं रोग नियंत्रण: चने की फसल में अनेक प्रकार के कीटों एवं बीमारियों का प्रकोप होता है जिनका उचित समय पर नियंत्रण करना बहुत आवश्यक है।

दीमक, कटवर्म एवं आर्मी वर्म : यदि बुवाई से पहले एन्डोसल्फॉन व क्यूनालफॉस या क्लोरपाइरीफॉस से भूमि तथा बीज को क्लोराइरीफॉस कीटनाशी द्वारा उपचारित किया गया है तो भूमिगत कीटों द्वारा हानि की रोकथाम की जा सकती है। यदि खड़ी फसल में दीमक का प्रकोप हो तो क्लोरपाइरीफोस 20 ईसी या एन्डोसल्फान 35 ईसी 2 से 3 लीटर प्रति हैक्टर सिंचाई के साथ देनी चाहिये। ध्यान रहे दीमक के नियंत्रण हेतु कीटनाशी का जड़ों तक पहुँचना बहुत आवश्यक है। कटवर्म की लटें ढेलों के नीचे छिपी होती है तथा रात में पौधों को जड़ों के पास काटकर फसल को नुकसान पहुँचाती है। कटवर्म के नियंत्रण हेतु मिथाइल पैराथियॉन 2 प्रतिशत या क्यूनालफॉस 1.50 प्रतिशत या एन्डोसल्फॉन 4 प्रतिशत चूर्ण 25 कि॰ग्रा॰ प्रति हैक्टर का भुरकाव शाम के समय करना चाहिये। ट्राईक्लोरोफॉन 5 प्रतिशत चूर्ण 25 कि॰ग्रा॰ प्रति हैक्टर की दर से भुरकाव किया जा सकता है।

फली छेदक : यह कीट आरंभिक अवस्था में पत्तियों को खाकर फसल को हानि पहुँचाता है। फली आने पर उसमें छेद बनाकर अन्दर घुस जाता है तथा दाने को खाकर फली को खोखला बना देता है। इस कीट के नियंत्रण हेतु फसल में फूल आने से पहले तथा फली लगने के बाद एन्डोसल्फान 4 प्रतिशत या क्यूनालफॉस 1.5 प्रतिशत या मिथाइल पैराथियोन 2 प्रतिशत चूर्ण की 20–25 कि.ग्रा. मात्रा को प्रति हैक्टर की दर से भुरकनी चाहिये। पानी की उपलब्धता होने पर मोनोक्रोटोफॉस 35 ईसी या क्यूनालफॉस 25 ईसी की 1.25 लीटर मात्रा को 500 लीटर पानी में घोलकर प्रति हैक्टर की दर से फसल में फूल आने के समय छिड़काव करना चाहिये।

झुलसा रोग (ब्लाइट) : यह बीमारी एक फफूंद के कारण होती है। इस बीमारी के कारण पौधों की जड़ों को छोड़कर तने, पत्तियों एवं फलियों पर छोटे गोल तथा भूरे रंग के धब्बे बन जाते हैं। पौधे की आरंभिक अवस्था में जमीन के पास तने पर इसके लक्षण स्पष्ट रूप से दिखाई देते हैं। पहले प्रभावित पौधे पीले व फिर भूरे रंग के हो जाते हैं और अन्ततः पौधा सूखकर मर जाता है। इस रोग के लक्षण दिखाई देने पर मैन्कोजेब नामक फफूंदनाशी की एक कि॰ग्रा॰ या घुलनशील गंधक की एक कि॰ग्रा॰ या कॉपर ऑक्सीक्लोराइड की 1.30 कि॰ग्रा॰ मात्रा को 500 लीटर पानी में घोलकर छिड़काव व 10 दिनों के अन्तर पर 3–4 छिड़काव करने पर्याप्त होते हैं।

उखटा रोग (विल्ट): इस बीमारी के लक्षण जल्दी बुवाई की गयी फसल में बुवाई के 20–25 दिनों बाद स्पष्ट रूप से दिखाई देने लगते हैं। देरी से बोई गयी फसल में रोग के लक्षण फरवरी व मार्च में दिखाई देते हैं। पहले प्रभावित पौधे पीले रंग के हो जाते हैं तथा नीचे से ऊपर की ओर पत्तियाँ सूखने लगती है अन्ततः पौधा सूखकर मर जाता है। इस रोग के नियंत्रण हेतु भूमि में नमी की कमी नहीं होनी चाहिये। यदि सिंचाई की सुविधा उपलब्ध हो तो बीमारी के लक्षण दिखाई देते ही सिंचाई कर देनी चाहिये। रोगरोधी किस्मों जैसै आरएसजी 888, सी 235 तथा बीजी 256 की बुवाई करनी चाहिये।

रतुआ (रस्ट) : इस बीमारी के लक्षण फरवरी व मार्च में दिखाई देते हैं। पत्तियों की ऊपरी सतह पर, फलियों, पर्णवृतों तथा टहनियों पर हल्के भूरे काले रंग के उभरे हुए चकत्ते बन जाते हैं। इस रोग के लक्षण दिखाई देने पर मैन्कोजेब फफूंदनाशी की एक कि॰ग्रा॰ या घुलनशील गंधक की एक कि॰ग्रा॰ या कॉपर ऑक्सीक्लोराइड की 1.30 कि॰ग्रा॰ मात्रा को 500 लीटर पानी में घोलकर छिड़काव करना चाहिये। 10 दिनों के अन्तर पर 3–4 छिड़काव करने पर्याप्त होते हैं।

पाले से फसल का बचाव: चने की फसल में पाले के प्रभाव के कारण काफी क्षति हो जाती है। पाले के पड़ने की संभावना दिसम्बर–जनवरी में अधिक होती है। पाले के प्रभाव से फसल को बचाने के लिए फसल में गंधक के तेजाब की 0.1 प्रतिशत मात्रा यानि एक लीटर गंधक के तेजाब को 1000 लीटर पानी में घोलकर छिड़काव करना चाहिये। पाला पड़ने की संभावना होने पर खेत के चारों और धुआं करना भी लाभदायक रहता है।

फसल की कटाई एवं गहाई : फसल जब अच्छी प्रकार पक जाये तो कटाई करनी चाहिये। जब पत्तियाँ व फलियाँ पीली व भूरे रंग की हो जाये तथा पत्तियाँ गिरने लगे एवं दाने सख्त हो जाये तो फसल की कटाई कर लेनी चाहिये। कटाई की गई फसल जब अच्छी प्रकार सूख जाये तो थ्रैशर द्वारा दाने को भूसे से अलग कर लेना चाहिये तथा अच्छी प्रकार सुखाकर सुरक्षित स्थान पर भण्डारित कर लेना चाहिये।

उपज एवं आर्थिक लाभ : उन्नत तकनीकियों द्वारा उगायी फसल से 18–22 कुंटल प्रति हैक्टर उपज प्राप्त की जा सकती है। वर्तमान बाजार भाव रुपये 4620 / कुंटल से लगभग 90000 / हैक्टर की आमदनी हो सकती है।

भंडारण : चना का भंडारण दो तरीके से किया जा सकता है। वेयर हाउस या खुली हवा में रखना हो तो बोरों का इस्तेमाल कर सकते हैं, जबकि थोक में भंडारण करना हो तो डिब्बा (बिन) एवं साइलो बेहतर होता है। बोरों में भंडारण करना आसान रहता है क्योंकि यह सस्ता तरीका है। परन्तु इसमें घुन लगने एवं खराब होने का खतरा ज्यादा रहता है। खास किस्म के बोरे जो प्लास्टिक या फाइबर के बने हो तो नुकसान कम होता है। दूसरी तरफ धातु द्वारा निर्मित बिन्स, ड्रम में हवा से बचाया जा सकता है। यदि लंबे समय तक भंडारण करना हो तो साइलो या बिन्स बेहतर तरीका है।

घुन प्रबंधन : चना को भंडारण उपरांत मुख्य रूप से घुन द्वारा सर्वाधिक क्षति होती है। घुन को ढोरा, चिरैया, धनुर और घुन इत्यादि नामों से जाना जाता है। ज्यादातर दलहनी फसलों में घुन का प्रकोप खेत में फलियाँ पकते ही शुरू हो जाता है, जो कटाई उपरांत दानों का उचित उपचार नहीं होने पर भंडारण में निरंतर बढ़ता ही जाता है। चना की फलियों पर रोएँ होने के कारण पकने की अवस्था में संक्रमण नहीं हो पाता है, क्योंकि घुन मादा को फलियों पर उपस्थित रोंए अंडा रोपण करने में बाधा पहुंचाते हैं। अतः चना में घुन का संक्रमण भंडारण से शुरू होता है। उचित एवं सुरक्षित भंडारण के लिए निम्न उपाय अपनाने की संस्तुति की जाती है:

- भंडारण के पूर्व चना को साफ करके धूप में सूखा लेना चाहिए ताकि नमी का स्तर 12 प्रतिशत या इससे भी कम हो।
- छोटे किसान चना को बोरों में भरकर सिलाई करके सीधा रखें।
- बड़े किसान चना को स्टील के बर्तनों में भंडारण करके दानों की ऊपरी सतह 2.5 सेंमी. मोटी रेत व धुल रहित बालू से ढक दें ताकि घुन का पुनः प्रकोप व विकास न हो सके।
- अल्प मात्रा में भंडारण हेतु आयुर्वेदिक कंपनियों द्वारा निर्मित पारद टिकी का प्रयोग करें या एल्यूमिनियम फॉस्फाइड की 1–2 गोली का प्रयोग करें।
- घरेलू प्रयोग हेतु भंडारण करना हो तो चना की दाल बनाकर उसे सरसों के तेल (अन्य खाद्य तेल यथा नारियल, मूंगफली, सोयाबिन, तिल) लगभग 5–6 मिली. एवं हल्दी पाउडर 2 ग्राम प्रति कि॰ग्रा॰ दाल से उपचारित करके स्टील के बर्तन में ढ़ककर भंडारण कर सकते हैं। इस तरह घरेलू उपचार द्वारा 6–8 माह तक घुन की सभी अवस्थाएं खत्म हो जाएगी।

समाप्त

रमन शर्मा, कैलाश प्रजापत एवं प्रवेन्द्र श्योराण
भाकृअनुप–केन्द्रीय मृदा लवणता अनुसंधान संस्थान, करनाल–132001 (हरियाणा)
E-mail: ramansharmakaushik@gmail.com

प्रेसमड – क्षारीय भूमि सुधार हेतु वैकल्पिक जैविक स्त्रोत

जिस मिट्टी में विनिमय योग्य सोडियम या घुलनशील लवण अथवा दोनों ही इतनी मात्रा में हों कि ये पौधे की बढ़वार व विकास को नुकसान पहुंचा सकें, उस मिट्टी को लवण प्रभावित मिट्टी कहा जाता है। लवण प्रभावित मिट्टी वैसे तो हर महाद्वीप में पाई जाती है, लेकिन इनका फैलाव विश्व के शुष्क तथा अर्धशुष्क क्षेत्रों में ज्यादा है। भारत में करीब 6.74 मिलियन हैक्टर क्षेत्र लवण प्रभावित है, जिससे हर साल लगभग 1.12 करोड़ टन अनाज, दलहन एवं तिलहन फसलों का नुकसान होता है जिसकी कीमत लगभग 150.17 अरब रुपए है। इस अनुमानित मौद्रिक घाटे से प्रभावित क्षेत्रों की कम उत्पादकता का अंदाजा लगाया जा सकता है। कम उत्पादकता व बढ़ती लागत के कारण किसान जमीन को खाली छोड़ देते हैं, क्योंकि इसमें खेती करना किसान के लिए घाटे का सौदा बन जाता है। कम उत्पादकता के अलावा इस प्रकार की मिट्टी ना ही देखने में अच्छी लगती है और साथ ही साथ पर्यावरण के लिए भी घातक समस्याएं पैदा करती है। क्षारीय भूमि ऐसी भूमि को कहा जाता है जिनमें मृदा का पीएच मान, विनिमय योग्य सोडियम प्रतिशत (ईएसपी) व सोडियम अवशोषण अनुपात (एसएआर) क्रमशः 8.5, 15 और 13 से ज्यादा हो जबकि सिंचाई के पानी की क्षारीयता को अवशिष्ट सोडियम कार्बोनेट (आरएससी) अर्थात कैल्शियम एवं मैग्नीशियम आयनों को घटाने के बाद बचे हुए कुल कार्बोनेट तथा बाइकार्बोनेट आयनों के हिसाब से आँका जाता है। यदि सिंचाई किए जाने वाले जल की आरएससी 2.5 मिलीतुल्य प्रति लीटर से ज्यादा हो तो वो मिट्टी के प्रकार और फसल की प्रतिरोधक क्षमता के हिसाब से फसलों को नुकसान पहुंचा सकता है।

देश के सिंधु गंगा क्षेत्र के धान–गेहूँ फसल चक्र में बदलने से ना केवल जल संसाधनों के अति उपभोग से भूमिगत जल स्तर नीचे चला गया है बल्कि हर जगह भूमिगत जल स्तर की गुणवत्ता में भी गिरावट आयी है। सिंचित खेती में उत्तम गुणवत्ता जल की कमी बहुत बड़ी दिक्कत बनती जा रही है जिसके चलते किसान निम्न गुणवत्ता का पानी उपयोग करने को मजबूर हैं। खारे पानी के लगातार सिंचाई के लिए उपयोग करने से मिट्टी में लवण की मात्रा तथा क्षारीयता (पीएच 8.5 से अधिक) बढ़ जाती है। ये प्रक्रिया पौधे की बढ़वार और मिट्टी के भौतिक और रासायनिक गुणों को प्रभावित करते हुए फसल की पैदावार पर विपरीत असर डालती है। अन्य रासायनिक विकल्पों की बजाय सरकार द्वारा दी जाने वाली सब्सिडी एवं उपयोग करने में आसानी होने के कारण जिप्सम, क्षारीय क्षेत्रों के लिए सबसे पसंदीदा सुधारक है जहाँ किसान इसे अपनी भूमि के सुधार और प्रबंधन के लिए इस्तेमाल करते हैं। भारत में कुल जिप्सम की उपलब्धता प्रतिवर्ष केवल 60–70 लाख टन तक ही सीमित है। जिप्सम को भूमि सुधारक के रूप में उपयोग करके हरियाणा में क्षारीय मिट्टी के बहुत बड़े क्षेत्र को कृषि योग्य बनाया गया है।

जहाँ एक ओर मानवजनित और प्राकृतिक प्रक्रिया के कारण लगातार बढ़ती क्षारीय भूमि को सुधारने के लिए केवल जिप्सम पर निर्भरता और बोझ, किसानों को अन्य विकल्पों की तरफ देखने को मजबूर कर रही है। वहीं उपलब्ध जिप्सम की शुद्धता एवं गुणवत्ता भी अपेक्षित मानकों के अनुरूप नहीं है। अतः बदलते कृषि और जलवायु परिदृश्य को देखते हुए हमें ऐसे विकल्प की आवश्यकता है जोकि क्षारीय भूमि का सुधार और प्रबंधन करने के साथ–साथ लम्बे समय तक कारगर रहे।

जैविक स्रोत भी क्षारीयता के सुधार के लिए बहुत उपयुक्त होते हैं क्योंकि इनकी सुधार प्रक्रिया के दौरान इनसे कार्बनिक अम्ल निकलते हैं जो क्षारीयता को निष्प्रभावी कर देते हैं। प्रेसमड (गन्ने की मैली) एक ठोस अवशेष है जोकि चीनी के क्रिस्टलीकरण से पहले गन्ने के जूस से प्राप्त होता है। प्रेसमड भी चीनी उद्योगों से उत्पादित जैविक कचरा/अपशिष्ट है, जो चीनी के निर्माण की प्रक्रिया के हिसाब से कुचले हुए गन्ने का 3–8 प्रतिशत तक निकलता है। वैसे भी उत्पादन की मात्रा के लिहाज से गन्ना विश्व की सबसे बड़ी फसल है और वर्ष 2017 में उत्पादित लगभग 184 करोड़ टन गन्ने में से 41, 17, 6 और 6 प्रतिशत उत्पादन क्रमशः ब्राजील, भारत, चीन और थाईलैंड ने किया। 2012 में खाद्य एवं कृषि संगठन के अनुमान के अनुसार विश्व के 90 से अधिक देशों में लगभग 6.4 करोड़ एकड़ जमीन पर गन्ना उगाया गया। इसलिए एक वर्ष में उत्पादित

हो सकने वाले प्रेसमड का अंदाजा इन्हीं बातों से लगाया जा सकता है और चीनी की वैश्विक मांग को देखते हुए निकट भविष्य में गन्ने की खेती में कमी आने के आसार कम ही है। गन्ने की फसल मुख्यतः उष्णकटिबंधीय और उपोष्णकटिबंधीय क्षेत्रों में उगाई जाती है और कुल चीनी का 79 प्रतिशत उत्पादन इन्हीं क्षेत्रों से होता है। गन्ने की खोई, मोलासेस और प्रेसमड, चीनी उद्योग के मुख्य सहउत्पाद है। प्रेसमड को फिल्टर केक और फिल्टर मड नाम से भी जाना जाता है और आम तौर पर इसे भारत में जैविक खाद के तौर पर प्रयोग किया जाता है। यह एक नरम, स्पंजी, हल्का, आकारहीन, गहरे भूरे से काले रंग का होता है। इसमें लगभग 75 प्रतिशत जैविक पदार्थ के अलावा आमतौर पर 50–70 प्रतिशत नमी होती है, जो मिट्टी के सूक्ष्मजीवों, विशेष रूप से केंचुओं के लिए सबसे अधिक अनुकूल है। इसे गन्ना उद्योगों की अस्वीकृत और बेकार सामग्री माना जाता है, जिसका भंडारण चीनी मिलों के लिए एक दिक्कत है और इसका संचय होने पर ये आस–पास के इलाकों में प्रदूषण का कारण बनता है। गन्ना उद्योग से कचरे के रूप में भारी मात्रा में निकले प्रेसमड का निपटान एक प्रमुख चिंता का विषय है और खुले में इसका ढेर पर्यावरण संबंधी चिंताओं को भी जन्म देता है।

खुले में पड़ा प्रेसमड

कई मौकों पर प्रेसमड को ईंट भट्टों में जलाया जाता है, जिसके परिणामस्वरूप लाखों टन पोषक तत्वों का नुकसान और क्षय होता है, जिससे अंततः पर्यावरण को नुकसान पहुँचता है। असंसाधित या संसाधित, दोनों रूप में ही प्रेसमुड का सबसे आम उपयोग उर्वरक के तौर पर होता है। प्रेसमड फाइबर, कच्चे प्रोटीन, चीनी, कच्ची वसा और राख (तालिका 1) में समृद्ध होता है जिसमें सिलिकॉन, कैल्शियम, फॉस्फोरस, मैग्नीशियम और पोटैशियम के ऑक्साइड शामिल हैं। इसकी रासायनिक संरचना गन्ने की किस्म, मृदा की स्थिति, क्षेत्र में प्रयुक्त पोषक तत्वों, इसे निकालने की प्रक्रिया और अन्य पर्यावरणीय कारकों पर निर्भर करती है। प्रेसमड का कार्बनिक पदार्थ अत्यंत घुलनशील होता है तथा सूक्ष्मजीवी गतिविधि और मिट्टी के लिए आसानी से उपलब्ध होता है।

तालिका 1. प्रेसमड की सामान्य संरचना

कारक	मान (%)	कारक	मान (%)
कच्ची वसा	5–14	कैल्शियम ऑक्साइड	1–4
रेशा	15–30	फॉस्फोरस ऑक्साइड	1–3
कच्चा प्रोटीन	5–15	मैग्नीशियम ऑक्साइड	0.5–1.5
चीनी	5–15	कुल राख	9–10
सिलिकॉन ऑक्साइड	4–10		

गन्ना प्रेसमड (गन्ने की मैली) को पौधों के पोषक तत्वों का एक कीमती संसाधन बताया जाता है और यह मिट्टी के भौतिक, रासायनिक और जैविक गुणों को प्रभावित करता है। यह मिट्टी के सूक्ष्मजीवों और मिट्टी में अपघटन के बाद उत्पन्न जैव–रसायनों के लिए एक खाद्य सामग्री के रूप में कार्य करता है। प्रयोगों में पाया गया है कि खोई और प्रेसमड के प्रयोग ने मिट्टी के स्थूल घनत्व को कम करके उसकी भौतिक स्थिति में सुधार किया और एक बेहतर जड़ वृद्धि में मदद की और फसल की उपज को बढ़ाया। इसलिए मिट्टी के कार्बनिक पदार्थों को बढ़ाने, मिट्टी की भौतिक स्थितियों में सुधार करने, एक मिट्टी सुधारक के तौर पर, मुख्य और महत्वपूर्ण सूक्ष्म पोषक तत्वों (जस्ता, ताम्बा, लौहा और मैंगनीज) के लिए मूल्यवान पोषक तत्व स्रोत, जिनकी आमतौर पर क्षारीय मिट्टी में कमी पायी जाती है, के रूप में प्रेसमड एक अच्छे स्रोत के रूप में काम कर सकता है।

जिला कैथल, हरियाणा के पांच गांवों में किसानों के क्षारीय मिट्टी वाले खेतों पर चावल–गेहूँ फसल प्रणाली की उत्पादकता पर प्रेसमड के प्रभाव की जांच के लिए एक प्रयोग किया गया। प्रेसमड, द कैथल को–ऑपरेटिव शुगर मिल्स लिमिटेड, कैथल, हरियाणा से लिया गया था जिसकी रासायनिक संरचना तालिका 2 में दी गई है।

प्रेसमड प्रयोग की गई जमीन में धान की फसल दिखाता किसान

तालिका 2. कैथल जिले में उपलब्ध प्रेसमड की रासायनिक संरचना

कारक	मान	कारक	मान
मृदा का पीएच मान	5-2 ± 0-08	नत्रजन प्रतिशत	2-31 ± 0-5
वैद्युत चालकता (डेसी./मी)	1-1 ± 0-06	सल्फर प्रतिशत	1-44 ± 0-07
नमी प्रतिशत	48-8 ± 1-5	कैल्शियम प्रतिशत	2-17 ± 0-05
कार्बन प्रतिशत	30-7 ± 1-1	मैग्नीशियम प्रतिशत	1-08 ± 0-03

प्रयोग में पाया गया कि क्षारीय मिट्टी में प्रेसमड के उपयोग से चावल और गेहूँ की फसलों में औसत उपज (तालिका 3) में किसानों के अभ्यास (गैर–संशोधित) की तुलना में क्रमशः 11.7 से 17.5 (14.7) प्रतिशत और 9.5 से 18.9 (13.74) प्रतिशत सुधार पाया गया, जोकि उच्च आरएससी जल के निरंतर उपयोग के साथ–साथ मृदा के परिवर्तनशील पीएच मान पर निर्भर करता है। धान–गेहूँ फसल चक्र के दौरान प्रेसमड के प्रयोग के कारण गेहूँ समतुल्य उपज के रूप में प्रणाली उत्पादकता में 14.65 प्रतिशत बढ़ोत्तरी हुई। साथ ही साथ प्रेसमड के उपयोग से बढ़ी लागत (4920 रु./हैक्टर) के बावजूद रुपये 24799 /हैक्टर का अतिरिक्त लाभ हुआ।

तालिका 3. प्रेसमड के उपयोग से चावल व गेहूँ की औसत उपज, गेहूँ समतुल्य उपज, अतिरिक्त लागत तथा अतिरिक्त लाभ पर प्रभाव

घटक	नियंत्रण	प्रेसमड (10 टन/हैक्टर)	बढ़ोत्तरी प्रतिशत
धान उपज (कि॰ग्रा॰/हैक्टर)	2619	3004	14.70
गेहूँ उपज (कि॰ग्रा॰/हैक्टर)	3872	4404	13.74
गेहूँ समतुल्य उपज (कि॰ग्रा॰/हैक्टर)	9747	11176	14.65
अतिरिक्त लागत (रुपये/हैक्टर)	–	4920	–
अतिरिक्त लाभ (रुपये/हैक्टर)	–	24799	–

उच्च आरएससी जल के साथ निरंतर सिंचाई के परिणामस्वरूप, सिंचाई के पानी में अवशिष्ट क्षारीयता के आधार पर मिट्टी के पीएच मान में धीरे–धीरे वृद्धि हुई। प्रेसमड प्रयोग के पूरक प्रभावों को मिट्टी की शुरूआती पीएच और सिंचाई जल क्षारीयता को ध्यान में रखते हुए मिट्टी की क्षारीयता में आयी कमी द्वारा भी देखा जा सकता है। उच्च आरएससी जल के साथ निरंतर सिंचाई के कारण मिट्टी की औसत पीएच 8.70 से बढ़कर 8.87 तक पहुँच गयी जबकि प्रेसमड के उपयोग से पीएच 8.37 तक कम हो गयी।

अध्ययनों से यह भी पता चला है कि 5 से 6 साल तक फसलों के लिए गन्ने के फिल्टर केक का लगातार भूमि में प्रयोग करने से मिट्टी में कार्बनिक पदार्थ में बढ़ोत्तरी एवं मृदा स्वास्थ्य में भी सुधार हुआ। इसलिए, लागत, उपज में वृद्धि, मिट्टी और पर्यावरणीय स्वास्थ्य में सुधार को ध्यान में रखते हुए, खेतों में इसका उपयोग (मिट्टी सुधारक के रूप में) आने वाले समय में बढ़ेगा और प्रेसमड, भूमि की क्षारीयता को सुधारने के लिए एक अहम् विकल्प साबित होगा।

समाप्त

भास्कर नरजरी, राम किशोर फगोडिया, मुरलीधर मीना[1], गजेन्द्र एवं सत्येन्द्र कुमार
भाकृअनुप–केन्द्रीय मृदा लवणता अनुसंधान संस्थान, करनाल–132001 (हरियाणा)
[1]भाकृअनुप–सरसों अनुसंधान निदेशालय, भरतपुर–321303 (राजस्थान)
E-mail: bhaskar.narjary@icar.gov.in

आधुनिक उपकरणों का मृदा लवणता के शीघ्र सर्वेक्षण में उपयोग

मृदा लवणता प्रमुख समस्याओं में से एक है जो फसल की उपज और मिट्टी के स्वास्थ्य एवं किसान समुदाय की सामाजिक–आर्थिक स्थिति को प्रभावित करती है। मृदा लवणता और इसकी गंभीरता की लगातार जांच करना फसल उत्पादन और उत्पादकता पर इसके प्रतिकूल प्रभाव को निर्धारित करने के लिए बहुत महत्वपूर्ण है। वर्तमान में मिट्टी लवणता की जांच पारंपरिक तरीकों जैसे देखकर अनुमान लगाना और प्रयोगशाला में नमूनों का विश्लेषण करने पर आधारित है। मौसम एवं समय के साथ मृदा लवणता में होने वाले परिवर्तन का लगातार आंकलन करना संभव नहीं होता है। जबकि प्रयोगशाला में नमूनों के विश्लेषण में अधिक समय, पूंजी और परिश्रम की जरूरत होती है। इसलिए बड़े पैमाने पर मृदा नमूनों की सावधिक जांच संभव नहीं है। इसलिए बिना मिट्टी के नमूने लिए हुए तुरंत जांच करने वाली विधियों को विकसित और मानकीकृत करने की आवश्यकता है जो खेत में ही मिट्टी की लवणता को जांच सके। इनमें समय कम लगता है तथा मृदा लवणता माप पर स्थानिक परिवर्तनशीलता का सीमित प्रभाव होता है और इनको सूखी, गीली, पथरीली और फसली मृदा परिस्थितियों में उपयोग किया जा सकता है। इस प्रकार की शीघ्र सर्वेक्षण विधियों को नीचे दर्शाया गया है।

विद्युत चुम्बकीय (इलेक्ट्रोमैग्नेटिक) इंडक्शन

आजकल मृदा लवणता और भूजल गुणवत्ता के तुरंत आंकलन के लिए इलेक्ट्रोमैग्नेटिक (विद्युत चुम्बकीय) आधारित भू–भौतिकीय उपकरण अधिक लोकप्रिय हो गए हैं। इलेक्ट्रोमैग्नेटिक उपकरण कम इंडक्शन रेंज में काम करते हैं जहाँ जांच की गहराई को परिचालित आवृत्ति के बजाय मुख्य रूप से ट्रांसमीटर कुंडली और रिसीवर कुंडली के बीच पृथक्करण दूरी तथा उनके अभिविन्यास द्वारा नियंत्रित किया जाता है। जाँच की गहराई द्विध्रुव कुंडली (ऊर्ध्वाधर और क्षैतिज) द्वारा भी नियंत्रित की जाती है। क्षैतिज और ऊर्ध्वाधर कुंडली में माप से खेत और नहर कमांड में गहराई के साथ लवणता की भिन्नता को जानना भी संभव है। मृदा लवणता के मात्रात्मक मूल्यांकन के लिए ईएम–38 उपकरण का सबसे व्यापक रूप से उपयोग किया जाता है। ईएम–38 के एक छोर पर ट्रांसमीटर कुंडली और दूसरी तरफ रिसीवर कुंडली होती है। ट्रांसमीटर कुंडली एक प्राथमिक चुंबकीय क्षेत्र उत्पन्न करता है और मृदा में भंवर धारा बनाता है और समय के साथ परिवर्तित होती यह भंवर धाराएं अपने स्वयं के चुंबकीय क्षेत्र (प्रेरित चुंबकीय क्षेत्र) का निर्माण करती है। इस प्रेरित क्षेत्र के एक अंश को प्राथमिक क्षेत्र के ऊपर आरोपित किया जाता है तथा इन दोनों क्षेत्रों के एक अंश का मार्ग रिसीवर कुंडली द्वारा बाधित किया जाता है। इसके फलस्वरूप संकेत को प्रवर्धित किया जाता है और आउटपुट वोल्टेज बनता है जो आभासी वैद्युत चालकता (ईसी) से रैखिक रूप से संबंधित होता है (चित्र 1)। ईएम–38 ऊर्ध्वाधर और क्षैतिज द्विध्रुवीय माध्यम में काम करता है और ऊर्ध्वाधर और क्षैतिज माध्यम में क्रमशः अधिकतम 1.5 और 0.75 मीटर की गहराई की वैद्युत चालकता को मापता है (चित्र 2.1 व 2.2)।

एक अलग जीपीएस वाला डेटा संग्राहक जीपीएस बिंदु निर्देशांक के साथ अलग–अलग गहराई की स्पष्ट चालकता पर डेटा को रिकॉर्ड करता रहता है। ईएम–38 उपकरण के सही उपयोग के लिए आभासी वैद्युत चालकता को मिट्टी की वास्तविक लवणता में परिवर्तित करने के लिए सहसंबंध समीकरण का निर्माण किया जाता है जिससे मृदा की वास्तविक लवणता का पता लगाया जा सके। जीपीएस निर्देशांक के साथ अलग–अलग गहराई के लवणता डेटा को विश्लेषण के लिए आर्क जीआईएस सॉफ्टवेयर में लेकर विभिन्न गहराइयों के साथ स्थानिक लवणता नक्शे बनाये जाते हैं। ये नक्शे फसल उत्पादकता बढ़ाने हेतु सुधारात्मक उपाय करने के लिए किसानों एवं विभिन्न एजेंसियों को मृदा लवणता के साथ उपज में विभिन्नता को समझने में मदद करते हैं।

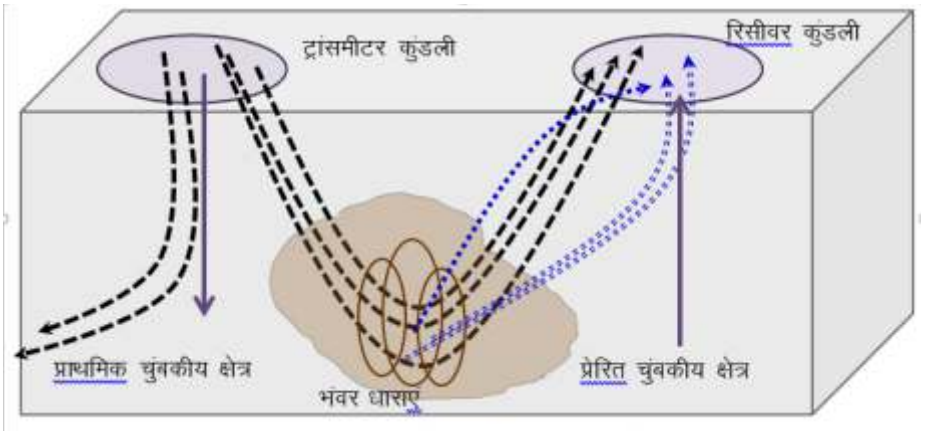

चित्र 1. ईएम–38 उपकरण का कार्य सिद्धांत

चित्र 2.1: ऊर्ध्वाधर माध्यम में ईएम–38 माप

चित्र 2.2: क्षैतिज माध्यम में ईएम–38 माप

टाइम डोमेन रिफ्लेक्टोमेट्री (टीडीआर)

टाइम डोमेन रिफ्लेक्टोमेट्री (टीडीआर) एक इन–सीटू तकनीक है जो खेत में ही बड़े पैमाने पर मृदा जल की मात्रा, मिट्टी तापमान और मृदा की वैद्युत चालकता को मापने में लोकप्रियता प्राप्त कर रही है। जब 250 डिग्री सेल्सियस तापमान पर टीडीआर को विभिन्न वैद्युत चालकता के विलयनों में डुबोया जाता है तब टीडीआर विद्युत चुम्बकीय तरंगों का आकार बदल जाता है और एक टीडीआर सिग्नल दिखाई देता है। तरंग में होने वाले इस परिवर्तन का उपयोग माध्यम की वैद्युत चालकता का अनुमान लगाने के लिए किया जाता है। जब मिट्टी में टीडीआर प्रोब डाली जाती है तो जल–मिट्टी मिश्रित मैट्रिक्स की आभासी वैद्युत चालकता का मान प्राप्त होता है। टीडीआर संकेत आभासी वैद्युत चालकता का अनुमान लगाना मिट्टी की विभिन्न विशेषताओं पर निर्भर करता है इसलिए यह मिट्टी की वास्तविक वैद्युत चालकता के साथ रैखिक रूप से संबंधित नहीं होती है। टीडीआर तकनीक का उपयोग करके आभासी वैद्युत चालकता के आंकलन के लिए विभिन्न संख्यात्मक समीकरण विकसित किए गए हैं जो निम्न प्रकार है :

$$EC_a = \frac{\sqrt{\varepsilon_c}}{120\,\pi L}\left(\frac{2\,V_0}{V_f} - 1\right) \qquad (1)$$

$$EC_a = \frac{\sqrt{\varepsilon_c}}{120\,\pi L}\left(\frac{V_1}{V_2 - V_1}\right) \qquad (2)$$

$$EC_a = \frac{\sqrt{\varepsilon_c}}{120\,\pi L} ln\left(\frac{V_1(2V_0 - V_1)}{V_0(V_2 - V_1)}\right) \quad (3)$$

$$EC_a = \frac{\sqrt{\varepsilon_c}}{120\,\pi L}\frac{V_1}{V_f}\left(\frac{(2V_0 - V_f)}{(2V_0 - V_1)}\right) \quad (4)$$

यहाँ,

ECa = मृदा की आभासी विद्युत चालकता

εc = मिट्टी का परा वैद्युतांक या आपेक्षिक विद्युतशीलता

L = टीडीआर उपकरण (रॉड) की लंबाई

V0 = टीडीआर तरंग का प्रारंभिक आयाम

V1 = शुरुआत में वोल्टेज

V2 = प्रतिबिंब के अंत में वोल्टेज

Vf = पर्याप्त समय के बाद वोल्टेज

प्रतिरोधकता सर्वेक्षण

भूभौतिकीय जांच में तेजी से प्रगति के कारण मृदा लवणता का आंकलन करने के लिए भू–लवणता प्रतिरोधकता सर्वेक्षण का उपयोग भी तेजी से बढ़ा है। विद्युत प्रतिरोधकता विधियों के अंतर्गत मिट्टी में विद्युत धारा इलेक्ट्रोड के माध्यम से विद्युत धारा का प्रवाह किया जाता हैं और विद्युत धारा के विभव में अंतर को विभव इलेक्ट्रोड पर मापा जाता है जो विद्युत प्रवाह के आसपास के क्षेत्र में रखा जाता है। जब चार इलेक्ट्रोड समान रूप से मिट्टी की सतह पर एक सीधी रेखा में होते हैं तो इस इलेक्ट्रोड विन्यास को वेनर सारणी के रूप में जाना जाता है। वेनर सारणी में बाहरी दो इलेक्ट्रोड विद्युत धारा या ट्रांसमिशन इलेक्ट्रोड जबकि आंतरिक दो इलेक्ट्रोड विभव या प्राप्ति इलेक्ट्रोड के रूप में कार्य करते है। प्रोब को मिट्टी में डालने के बाद बाहरी दो इलेक्ट्रोड के बीच विद्युत धारा (ए) का प्रवाह किया जाता है और इससे होने वाले विभव में कमी को (म) आंतरिक दो इलेक्ट्रोड के बीच मापा जाता है। प्रतिरोध (त) = विभव (म)/धारा (ए) अनुपात को एक प्रतिरोध के रूप में दर्ज किया जाता है, जिसे मिट्टी की आभासी वैद्युत चालकता में परिवर्तित किया जाता है (चित्र 3)।

चित्र 3. प्रतिरोधकता सिद्धांत के आधार पर वैद्युत चालकता जांच उपकरण

निष्कर्ष

मृदा लवणता एक प्रमुख समस्या है जो फसल उत्पादन पर विपरीत प्रभाव डालती है। लवण प्रभावित मृदाओं में अधिक फसल उत्पादन के लिए मृदाओं की तीव्र जांच करना बहुत जरूरी है। जिससे कम समय में अधिक से अधिक क्षेत्र की मृदाओं को जांचा जा सके और इनका उपयुक्त उपचार एवं प्रबंधन कर अधिक पैदावार ली जा सके। मृदा लवणता का पारंपरिक जांच तरीका प्रयोगशाला में नमूनों के विश्लेषण पर आधारित है जिसमें अधिक समय और परिश्रम लगता है। इससे बड़े पैमाने पर मृदा की जांच संभव नहीं है। वर्तमान में तेजी से जांच करने वाली विधियाँ विकसित की गयी है जो खेत में ही कम समय में मृदा लवणता की जांच कर सकती है। इलेक्ट्रोमैग्नेटिक इंडक्शन, टाइम डोमेन रिफ्लेक्टोमेट्री और प्रतिरोधकता सर्वेक्षण ऐसी ही आधुनिक तकनीकियाँ है जिनका उपयोग सूखी, गीली, पथरीली और फसली मृदा में लवणता के आंकलन के लिए खेतों में ही किया जा सकता है।

समाप्त

राम किशोर फगोडिया, कैलाश प्रजापत, भास्कर नरजरी, राज मुखोपाध्याय, डार जाफर युसुफ एवं बाबूलाल मीना
भाकृअनुप–केन्द्रीय मृदा लवणता अनुसंधान संस्थान, करनाल–132001 (हरियाणा)
E-mail: ram.iari4874@gmail.com

जलवायु परिवर्तन का कृषि पर प्रभाव और अनुकूलन के लिए विभिन्न प्रौद्योगिकियाँ

जलवायु की औसत स्थिति और इसके मापदंडों में दीर्घ अवधि में होने वाले बदलाव को जलवायु परिवर्तन कहते हैं। इसमें वैश्विक तपन, वैश्विक शीतलन, समुद्र तल में वृद्धि, वर्षा एवं बर्फबारी की आवृत्ति और तीव्रता में परिवर्तन और बाढ़, सूखा एवं चक्रवात आदि मौसमी घटनाओं की आवृत्ति में वृद्धि इत्यादि सम्मिलित हैं। जलवायु परिवर्तन समय के साथ जलवायु और इसके मापदंडों में विशिष्ट प्रकार का परिवर्तन दर्शाता है। जलवायु की दशाओं में होने वाला यह बदलाव प्राकृतिक जैसे पृथ्वी की गतिकी और प्रकाश की तीव्रता में बदलाव और मानवजनित हो सकता है। ग्रीनहाउस प्रभाव और वैश्विक तपन को मनुष्य की क्रियाओं का परिणाम माना जा रहा है जो औद्योगिक क्रांति के बाद मनुष्य द्वारा उद्योगों से लगातार कार्बन डाईऑक्साइड़ और अन्य गैसों के वायुमण्डल में अधिक मात्रा में बढ़ जाने का परिणाम है। वैश्विक तपन मुख्य रूप से ग्रीनहाउस गैसों के कारण जबकि वैश्विक शीतलन वायु प्रदूषकों की उपस्थिति के कारण होता है।

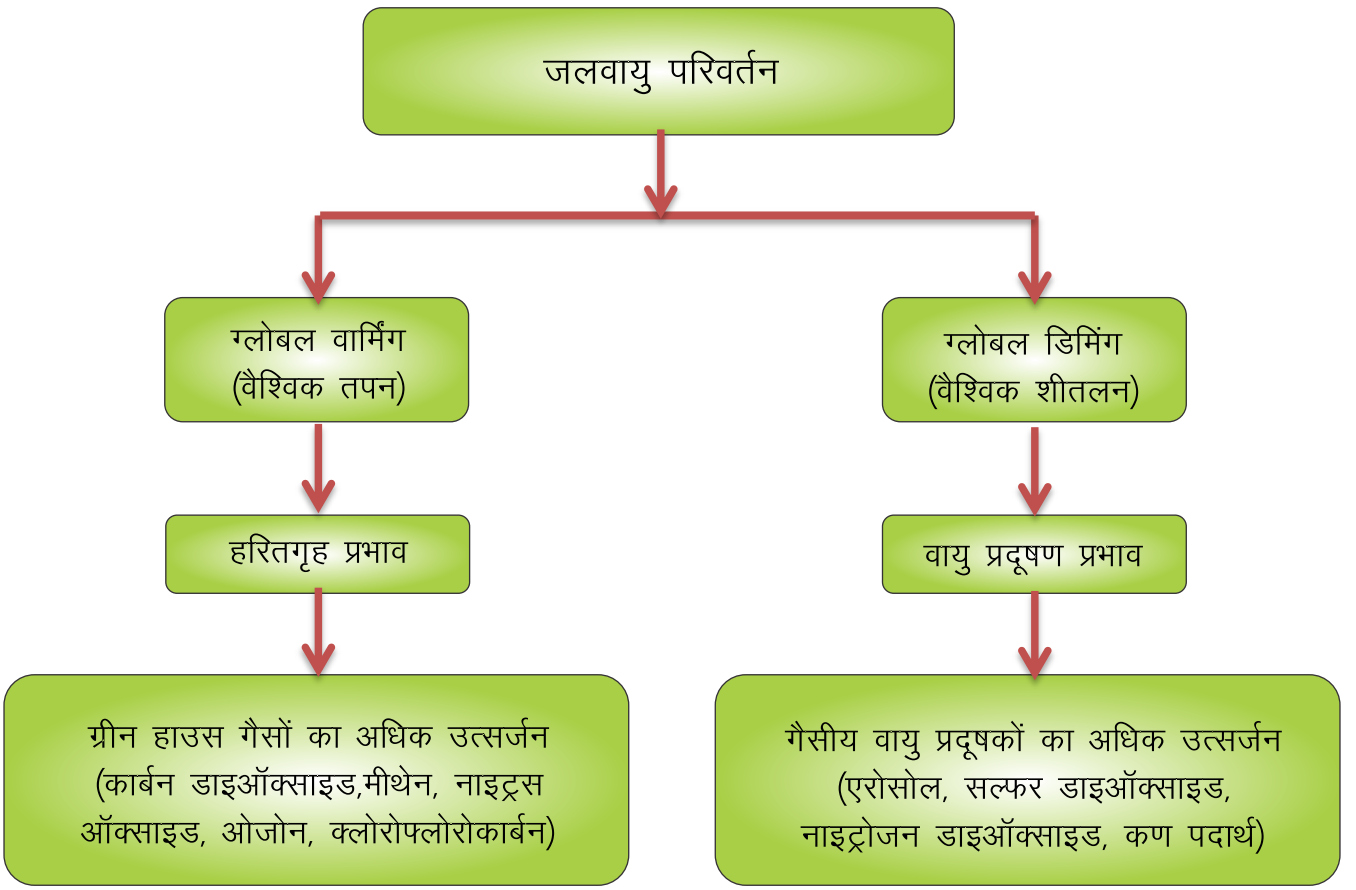

1. हरितगृह प्रभाव

हरितगृह या ग्रीनहाउस प्रभाव एक प्राकृतिक प्रक्रिया है जो पृथ्वी के तापमान को सामान्य बनाए रखने में मदद करती है। जब सूर्य की किरणें पृथ्वी के वातावरण तक पहुँचती है तो इसका कुछ भाग अंतरिक्ष में लौट जाता है और बाकी हरितगृह गैसों द्वारा अवशोषित कर लिया जाता है। यदि ग्रीनहाउस प्रभाव नहीं होता तो पृथ्वी का औसत तापमान वर्तमान 15 डिग्री सेल्सियस की बजाय –18 डिग्री सेल्सियस होता और शायद ही पृथ्वी पर जीवन संभव होता। यह हरितगृह प्रभाव वातावरण में उपस्थित हरितगृह गैसों के कारण होता है। कार्बन डाईऑक्साइड़, मिथेन, नाइट्रस डाइऑक्साइड़, जलवाष्प इत्यादि हरितगृह गैसें हैं। हरितगृह गैसें सामान्य रूप से पृथ्वी के वातावरण में पायी जाती है। लेकिन हाल ही के वर्षों में हरितगृह गैसों की मात्रा बहुत तेजी से बढ़ी है जिसके परिणामस्वरूप पूरे विश्व के औसत तापमान में लगातार वृद्धि दर्ज की गयी है। तापमान में यह बढ़ोत्तरी मानव गतिविधियों द्वारा उत्पादित अतिरिक्त ग्रीनहाउस गैसों के कारण हो रही है। इसलिए इसे मानवजनित हरीतगृह प्रभाव भी कहा जाता है। औद्योगिक प्रक्रिया, कृषि संबंधी गतिविधियाँ (उर्वरकों का उपयोग, पशुधन में होने वाली आंतरिक किण्वन क्रिया, खाद प्रबंधन, धान की खेती आदि), वनों की अत्यधिक कटाई, भूमि उपयोग में बदलाव, बायोमास जलाना, तेजी से बढ़ती मानव आबादी, जीवाश्म ईंधन का जलाना, परिवहन और अपशिष्ट पदार्थों का उपचार इत्यादि हरितगृह गैसों के उत्सर्जन का कारण है।

तालिका 1: हरितगृह गैसों के विशिष्ट गुण एवं उत्सर्जन

विशेषताएं	कार्बन डाइऑक्साइड़	मीथेन	नाइट्रस ऑक्साइड़
वायुमंडलीय जीवनकाल (वर्ष)	50–200	12–17	120
पूर्व औद्योगिक (1860) सांद्रता	288 पीपीएम	848 पीपीबी	285 पीपीबी
वर्तमान वायुमंडलीय सांद्रता	402 पीपीएम	1800 पीपीबी	328 पीपीब
ग्लोबल वार्मिंग क्षमता (100 साल)	1	28	265
भारत में कुल वार्षिक उत्सर्जन (लाख टन)	2015.10	20.05	0.47
भारत में कृषि से कुल वार्षिक उत्सर्जन (लाख टन)	0	1.47	0.34

वर्ष 2014 में भारत में ग्रीनहाउस गैसों का कुल उत्सर्जन 2607.48 लाख टन कार्बन डाइऑक्साइड़ के बराबर था। इसमें कृषि क्षेत्र का कुल योगदान 417.21 लाख टन था जो उस वर्ष के लिए भारत के उत्सर्जन का लगभग 16 प्रतिशत है। इनमें से 74 प्रतिशत मीथेन और 26 प्रतिशत नाइट्रस ऑक्साइड़ है। कृषि से मीथेन का उत्सर्जन मुख्य रूप से पशुधन पालन (आंतरिक किण्वन), खाद प्रबंधन और चावल की खेती के कारण होता है। जबकि नाइट्रस ऑक्साइड़ का उत्सर्जन मुख्य रूप से कृषि में उर्वरकों के उपयोग के कारण होता है।

2. जलवायु परिवर्तन का कृषि पर प्रभाव

भारतीय कृषि विशेष रूप से वर्षा आधारित कृषि जलवायु परिवर्तन के जोखिम से अधिक ग्रस्त है। देश में दो तिहाई कृषि भूमि वर्षा आधारित है और सिंचित कृषि भी मानसून पर निर्भर है। देश का पूर्वी भाग लगातार आने वाली बाढ़, उत्तर–पश्चिम में ठंड (पाला) की घटनाएं, मध्य और उत्तरी भागों में गर्म हवा (लू) और पूर्वी तटीय भाग में चक्रवात की घटनाएँ आदि फसलों, संपत्ति और मनुष्यों की तबाही का कारण बनते हैं। हाल के वर्षों में बढ़ते वायुमंडलीय तापमान के कारण जलवायु की इन चरम सीमाओं की घटनाओं की आवृत्ति बढ़ रही है, जिसके परिणामस्वरूप कृषि उत्पादन में नुकसान हो रहा है। जलवायु परिवर्तन कृषि को प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष रूप से प्रभावित करता है। कार्बन डाइऑक्साइड़ की सांद्रता एवं तापमान बढ़ोत्तरी से कृषि प्रत्यक्ष रूप से प्रभावित होती है। कार्बन डाइऑक्साइड़ की बढ़ती सांद्रता से फसलों में प्रकाश संश्लेषण की क्रिया प्रभावित होती है। वातावरण में तापमान बढ़ने से फसल की अवधि में कमी, फसल श्वसन दर में वृद्धि, कीटों की आबादी में बढ़ोत्तरी, मिट्टी में पोषक तत्वों की कमी, वाष्पीकरण एवं वाष्पोत्सर्जन दर में वृद्धि इत्यादि होती है। इसके अलावा सिंचाई जल उपलब्धता में कमी, सूखे और बाढ़ की अधिक आवृत्ति और तीव्रता, अधिक मृदा अपरदन, कीट प्रोफाइल में परिवर्तन, जलमग्न तटीय भूमि में बढ़ोत्तरी इत्यादि जलवायु परिवर्तन के कृषि पर अप्रत्यक्ष प्रभाव है। भारतीय कृषि के विभिन्न क्षेत्रों पर जलवायु परिवर्तन के प्रभावों को नीचे प्रस्तुत किया गया है।

2.1 फसलों पर प्रभाव

- वायुमंडलीय कार्बन डाइऑक्साइड़ की सांद्रता में वृद्धि होना फसलों के लिये फायदेमंद है क्योंकि इससे कई फसलों में प्रकाश संश्लेषण में वृद्धि होती है, विशेषकर गेहूँ और चावल जैसे सी 3 चक्र (केल्विन चक्र) वाली फसलों में उच्च कार्बन डाइऑक्साइड़ सांद्रता के कारण फसल उत्पादकता में लगभग 25 प्रतिशत की बढ़ोत्तरी संभव है। इसके बावजूद, तापमान में वृद्धि के नकारात्मक प्रभाव जैसे फसल अवधि में कमी, श्वसन में वृद्धि और सिंचाई जल की कम उपलब्धता के कारण प्रमुख अनाज फसलों, विशेष रूप से गेहूँ की पैदावार कम होने की संभावना है। सी 3 तंत्र वाली फसलों में उच्च तापमान के कारण फसल उत्पादकता में लगभग 20 प्रतिशत की कमी संभव है। इस प्रकार सी 3 तंत्र वाली फसलों में जलवायु परिवर्तन के कारण फसल उत्पादकता में 5 प्रतिशत का शुद्ध लाभ होने की संभावना है।
- ग्लोबल वार्मिंग के कृषि पर पड़ने वाले प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष प्रभावों को चित्र 1 में दर्शाया गया है ।
- बाढ़, सूखा, चक्रवात और गर्म हवा (लू) जैसे मौसम की चरम घटनाओं की बढ़ी हुई आवृत्ति और अवधि कृषि उत्पादकता को प्रतिकूल रूप से प्रभावित करती है।
- वर्षा आधारित खेती में मानसून के दौरान वर्षा पैटर्न में बदलाव के कारण पानी की मांग बढ़ने से फसलों की उपज में कमी।
- फलों, सब्जियों, चाय, कॉफी, सुगंधित और औषधीय पौधों की गुणवत्ता में गिरावट।
- अधिक रोगजनक और वेक्टर विकास, तीव्र रोगजनक संचरण और फसलों की उच्च संवेदनशीलता के कारण कृषि संबंधित कीटों और रोगों के संक्रमण में परिवर्तन।
- वर्षा की अनिश्चितता, तापमान में वृद्धि, समुद्र स्तर में वृद्धि, सूखे, चक्रवात और बाढ़ की अधिक आवृत्ति से कृषि जैव विविधता को खतरा।
- उपरोक्त सभी नकारात्मक प्रभावों के विपरीत वायुमंडलीय तापमान में वृद्धि के कारण भविष्य में ठंडी लहरों और ठंड में कमी होने की संभावना है, जिससे उत्तर भारत में ठंड से सरसों और विभिन्न सब्जियों में होने वाले नुकसान की संभावना कम हो जाएगी।

2.2 स्वास्थ्य पर प्रभाव

- जलवायु परिवर्तन के मृदा स्वास्थ्य पर पड़ने वाले विभिन्न प्रभावों को चित्र 2 में दर्शाया गया है।
- तापमान में वृद्धि से मिट्टी में कार्बनिक पदार्थों (जो भारतीय मिट्टी में पहले से ही काफी कम है) की मात्रा और गुणवत्ता में गिरावट होगी।
- उच्च कार्बन डाइऑक्साइड़ स्तर से फसलों के कार्बन : नाइट्रोजन अनुपात में वृद्धि होगी। इससे फसल अवशेषों के विघटन और पोषक तत्वों की आपूर्ति में कमी आएगी।
- मिट्टी के तापमान में वृद्धि से नाइट्रोजन खनिजकरण की दर में वृद्धि होगी। इसके परिणामस्वरूप नाइट्रीकरण और वाष्पीकरण के माध्यम से गैसीय नाइट्रोजन का ज्यादा नुकसान होगा तथा नाइट्रोजन की उपलब्धता में कमी आएगी।
- वर्षा की मात्रा और आवृत्ति में परिवर्तन और हवा की अधिक तीव्रता से मृदा अपरदन की आवृत्ति और सीमाओं में बदलाव होगा।
- समुद्र तल के स्तर में वृद्धि से तटीय भूमि में खारे पानी का प्रवेश होने की अधिक संभावनाएं है जिससे तटीय क्षेत्रों में खेती पारंपरिक तरीकों से कम उपयुक्त हो जाएगी।

3. जलवायु परिवर्तन प्रबंधन के लिए प्रौद्योगिकियाँ

जलवायु परिवर्तन द्वारा कृषि पर प्रतिकूल प्रभावों का प्रबंधन करने के लिए निम्नलिखित तकनीकियाँ हैं, जैसे ग्रीष्म और लवण सहिष्णु किस्मों बाढ़ और सूखा सहिष्णु किस्मों का विकास, फसल प्रबंधन क्रियाओं में संशोधन, जल प्रबंधन में सुधार, उन्नत एवं नई कृषि तकनीकों जैसे संसाधन संरक्षण तकनीक, फसल विविधीकरण, कीट प्रबंधन में सुधार, मौसम का बेहतर पूर्वानुमान, किसान–अनुकूल फसल बीमा योजनाओं की शुरुआत करना आदि है। इनमें से कुछ रणनीतियों के बारे में नीचे चर्चा की गई है।

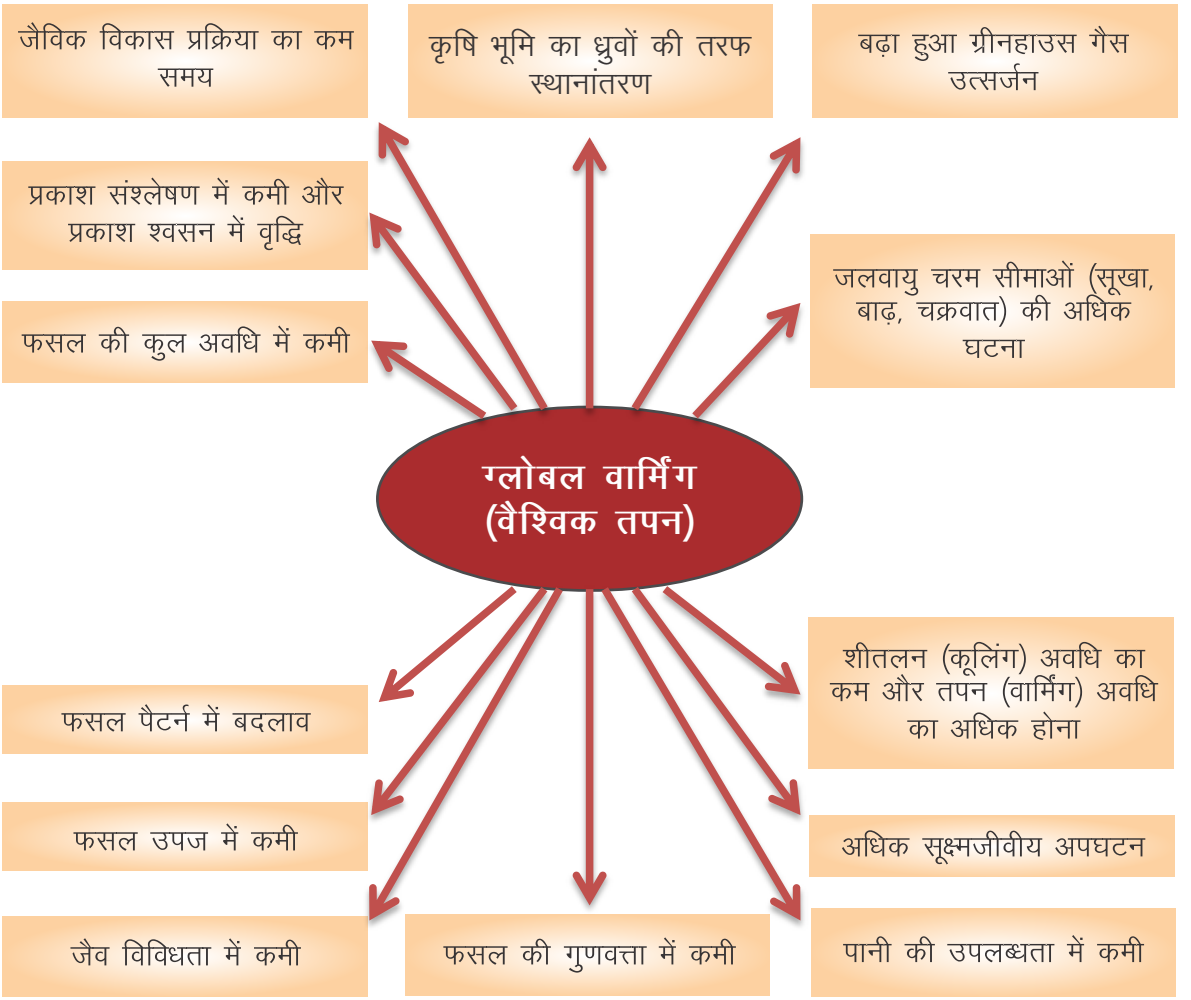

चित्र 1. ग्लोबल वार्मिंग के कृषि पर प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष प्रभाव

3.1 जलवायु–सहिष्णु किस्में : जलवायु परिवर्तन को देखते हुए अधिक उपज क्षमता वाली किस्मों के साथ–साथ एक से अधिक जलवायु तनाव जैसे सूखा, बाढ़, लवण प्रतिरोधी किस्मों का विकास करना ही प्रमुख लक्ष्य होना चाहिए। ऐसा करके ही हम उपज की स्थिरता को बनाए रख सकते है। ग्रीष्म सहिष्णुता के लिए महत्वपूर्ण फसलों के जर्मप्लाज्म का संरक्षण करके इनका फसल प्रजनन कार्यक्रमों में उपयोग करना ही एक प्रमुख लक्ष्य होना चाहिए। कई अजैविक तनावों के प्रति सहिष्णुता विकसित करना और मिट्टी से पानी और पोषक तत्वों के बेहतर उत्थान के लिए पौधों की जड़ों की दक्षता में सुधार करना भी आवश्यक है।

3.2 जल प्रबंधन तकनीकियाँ : उच्च तापमान और बदलते वर्षा पैटर्न के कारण आने वाले समय में जल एक अत्यधिक दुर्लभ संसाधन बन जाएगा। जलवायु परिवर्तन के अनुकूलन के लिए पानी का कुशल उपयोग अत्यधिक महत्वपूर्ण है। इसलिए आने वाले समय में फसल उत्पादन बढ़ाने के लिए जल संरक्षण, जल संचयन और जल उपयोग दक्षता में सुधार के लिए गंभीर प्रयास करने होंगे। किसानों के खेतों में जल संरक्षण करना, सूक्ष्म सिंचाई प्रणालियों का उपयोग करना और जरूरत आधारित सिंचाई के चयन को बढ़ावा देना होगा। गैर सिंचित क्षेत्रों में जल संरक्षण और जल संचयन तकनीकों को किसानों के लिए एक विकल्प के रूप में प्रचारित किया जाना चाहिए। बूंद–बूंद, फव्वारा सिंचाई और लेजर लेवलिंग का उपयोग करके जल उपयोग दक्षता को बढ़ाना होगा। ग्रामीण क्षेत्रों में वर्षा जल संचयन कार्यक्रमों के माध्यम से छोटे–छोटे बांधों का निर्माण, गैबियन संरचना, छिद्र टैंक और रिचार्ज शाफ्ट के निर्माण से जल रिचार्ज को बढ़ाना होगा।

चित्र 2. जलवायु परिवर्तन का मृदा स्वास्थ्य पर प्रभाव

3.3 रोपण और बुवाई की तिथियों को समायोजित करना : गेहूँ में उच्च तापमान से प्रेरित स्पाइकलेट बाँझपन के प्रभाव को कम करने के लिए फसल बुवाई की तिथियों को इस तरह समायोजित करना चाहिए जिससे फसल की फूल आने की अवधि को अधिक गर्मी और तापमान से बचाया जा सके। शुष्क और अर्धशुष्क उष्णकटिबंधीय क्षेत्रों में फसल की बुवाई को इस तरह से समायोजित करना चाहिए जिससे मिट्टी की नमी का अधिक से अधिक लाभ उठाया जा सके और फसल को मौसम की चरम घटनाओं जैसे आंधी तूफान से बचाया जा सके। हरियाणा और पंजाब में धान और गेहूँ के विविधीकरण की तत्काल आवश्यकता है और धान–गेहूँ की जगह अन्य फसल प्रणालियाँ जैसे मक्का–गेहूँ, दाल–गेहूँ, मक्का–दाल, तिलहन–गेहूँ और सीधी बीजाई धान–गेहूँ आदि अपनाई जा सकती है।

3.4 एकीकृत कृषि प्रणाली : छोटे और सीमांत किसानों की आय बढ़ाने और जलवायु परिवर्तन के दुष्प्रभाव से बचाने के लिए फसलों, पशुधन, कृषि वानिकी और मत्स्य पालन के बीच एकीकरण किया जाना अति आवश्यक है।

3.5 फसल विविधीकरण : फसल विविधीकरण के अनेक फायदे हैं। इससे किसान परिवार को साल भर लगातार आय प्राप्त होती है। इससे वर्षा जल का संरक्षण होता है और सिंचाई जल की भी बचत होती है। खरपतवार और नाइट्रोजन के प्रबंधन में भी आसानी रहती है। फसल विविधीकरण, फसलों पर मानसून के उतार–चढ़ाव की जोखिम को कम करता है और बेहतर उपज प्राप्त होती है। सिन्धु–गंगा के मैदानी इलाकों में धान की कटाई के बाद खेतों में पर्याप्त नमी होती है जिसका उपयोग करके दलहनों और अन्य फसलों के साथ फसल विविधीकरण किया जा सकता है।

3.6 संरक्षण कृषि : संरक्षण कृषि अपनाने से कम उत्पादन लागत, सिंचाई जल की बचत, ईंधन और श्रम की कम आवश्यकता तथा फसलों के समय पर बुवाई के परिणामस्वरूप बेहतर पैदावार होती है। गर्म और कम सिंचाई जल वाले वातावरण में गेहूँ की उपज को संसाधन संरक्षण प्रौद्योगिकियों को अपनाकर बढ़ाया जा सकता है जो प्रतिकूल पर्यावरणीय प्रभावों को कम करती है। इससे जीरो–टिलेज चावल की फसल के तुरंत बाद किसानों को गेहूँ की बुवाई करने में मदद मिलती है, ताकि गेहूँ में बाली निकलने एवं दाना भराव गर्म मौसम की शुरुआत से पहले हो सके।

3.7 पोषक तत्वों का बेहतर प्रबंधन : पोषक तत्वों के अधिक और कुशल प्रबंधन से फसलों की उपज पर जलवायु परिवर्तन के प्रतिकूल प्रभाव को कम किया जा सकता है। उदाहरण के लिए मानसून में देरी के कारण धान की देरी से बुवाई करने से उपज में हुई कमी को नाइट्रोजन का अधिक मात्रा में उपयोग करके कम किया जा सकता है। नाइट्रोजन का बेहतर प्रबंधन हरितगृह गैसों के उत्सर्जन को कम करने के लिए आशाजनक अवसर प्रदान करता है। फसल की मांग के साथ नाइट्रोजन की आपूर्ति, उर्वरक उपयोग की सही विधि, नाइट्रोजन परिवर्तन अवरोधकों के उपयोग, सिंचाई और जलनिकास

के सही प्रबंधन से फसल की उपज में बढ़ोतरी के साथ नाइट्रोजन डाइऑक्साइड़ उत्सर्जन को कम करने में भी मदद मिलती है। पौधों में नाइट्रोजन की स्थिति का सही से निर्धारण करने के लिए लीफ कलर चार्ट का उपयोग करके पौधों को मांग आधारित नाइट्रोजन दिया जा सकता है।

3.8 फसल बीमा : चरम जलवायु घटनाओं के कारण फसल खराब होने की स्थिति में किसानों की मदद के लिए निजी और सार्वजनिक दोनों क्षेत्रों के अंतर्गत फसल बीमा योजनाएँ शुरू की जानी चाहिए। सूक्ष्म वित्तपोषण योजनाएं ग्रामीण महिलाओं और गरीब किसानों के बीच काफी सफल रही है। कम लागत पर वित्तीय सहायता कमजोर किसानों के लिए एक वरदान साबित हो सकती है। टिकाऊ फसल बीमा प्रणाली विकसित करने से ग्रामीण गरीबों को ऐसे अवसरों का लाभ उठाने के बारे में शिक्षित किया जाना चाहिए। मोबाइल संदेश आधारित बैंकिंग सेवाओं से किसानों को वित्तीय संस्थानों के साथ बेहतर संपर्क बनाने में मदद मिल सकती है।

3.9 मौसम आधारित कृषि सलाह : मौसम संबंधित घटनाओं का सटीक पूर्वानुमान, कृषि में जलवायु संबंधी जोखिमों के प्रभाव को कम करने में अत्यधिक उपयोगी हो सकता है। किसानों द्वारा उपयुक्त फसल प्रबंधन अपनाने और फसल नुकसान को कम करने के लिए जलवायु की चरम घटनाओं का पूर्वानुमान अग्रिम रूप से किया जाना चाहिए। मौसम आधारित कृषि सूचना को ऑडियो–विजुअल और मोबाइल फोन नेटवर्क के माध्यम से प्रभावी ढंग से किसानों तक पहुंचाया जाना चाहिए।

3.10 विपणन और आपूर्ति श्रृंखलाएँ : जलवायु परिवर्तन अनुकूलन के लिए उन्नत कटाई, प्रसंस्करण, भंडारण, वितरण और रसद प्रौद्योगिकी में निवेश और इनसे संबंधित प्रशिक्षण से फसल की बेहतर पैदावार के साथ–साथ उपभोक्ताओं को भी लाभ होता है। जैसे–जैसे जलवायु गर्म होती है वर्षा की अनिश्चितता भी बढ़ती है तथा इन परिस्थितियों में फसल कटाई के बाद नुकसान की संभावना भी अधिक होती है। इसलिए परिवहन और भंडारण में सुधार अधिक महत्वपूर्ण हो जाता है।

निष्कर्ष

वैश्विक जलवायु परिवर्तन का फसलों, मिट्टी, कीट और पशुधन पर प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष प्रभाव से देश की खाद्य आपूर्ति प्रभावित हो रही है। इसलिए जलवायु परिवर्तन के भारतीय कृषि पर प्रतिकूल प्रभावों को कम करने, कृषि को अधिक अनुकूल बनाने तथा कृषि के सतत् विकास के लिए ठोस प्रयासों की आवश्यकता है। अनुकूलन और शमन विकल्पों को लागू करने के लिए नीतिगत ढांचे को विकसित करने की आवश्यकता है ताकि किसानों को जलवायु परिवर्तन के प्रतिकूल प्रभावों से बचाया जा सके। अनुकूलन रणनीतियों का विकास और संचालन, अनुकूलन प्रथाओं से संबंधित ज्ञान और कौशल प्राप्त करने के लिए क्षमता विकास के अलावा किसानों के सामाजिक और मनोवैज्ञानिक सशक्तिकरण की भी आवश्यकता है। क्षेत्रीय और राष्ट्रीय स्तर पर कृषि की दक्षता, उत्पादकता और लचीलापन बढ़ाने के लिए सूचनाओं का आदान–प्रदान और तकनीकी सलाह प्रदान की जानी चाहिए। जलवायु–स्मार्ट, टिकाऊ कृषि प्रौद्योगिकियों के लाभों पर उत्पादकों की क्षमता निर्माण और जागरूकता सृजन को बढ़ावा दिया जाना चाहिए।

समाप्त

संकल्प, बल और बुद्धि का सम्मिलित रूप
ही सफलता प्राप्त कर सकता है।

हरसिमरत कौर बोंस एवं गुरप्रीत कौर ढिल्लों[1]
फल विज्ञान विभाग, पंजाब कृषि विश्वविद्यालय, लुधियाना (पंजाब)
[1]क्षेत्रीय अनुसंधान केन्द्र, बठिंडा (पंजाब)
E-mail: harsimratpau@pau.edu

करौंदे के स्वास्थ्य लाभ व प्रसंस्करण

करौंदा भारतीय मूल का छोटे आकार का खट्टा फल है जो शुष्क व अर्धशुष्क जलवायु वाले स्थानों पर पाया जाता है। यह हिमालय और पश्चिमी घाट में 300 से 1800 मीटर की ऊँचाई पर प्राकृतिक रूप से उगता है। भारत में पंजाब, राजस्थान, उत्तर प्रदेश, गुजरात, पश्चिम बंगाल, केरल में इसकी खेती की जाती है। इसके अलावा इसकी खेती दक्षिण अफ्रीका व मलेशिया में भी की जाती है। इसका पौधा झाड़ीनुमा होता है जिसकी लंबाई 3–7 मीटर होती है। पौधे में कांटे होने के कारण इसका उपयोग बगीचे के आसपास कुदरती बाड़ के रूप में किया जाता है। इसका पौधा सदा हरा रहता है जिसकी पत्तियाँ गोलाकार व चपटी होती है। विश्व में करौंदे की लगभग तीस प्रजातियाँ पाई जाती है जिसमें *कैरिसा कैरोंडस* को लेकर चार प्रजातियों की उत्पत्ति भारत में हुई है। पौष्टिकता की दृष्टि से करौंदा स्वास्थ्य के लिए गुणकारी होता है। लौहे की अच्छी मात्रा होने के कारण एनीमिया (रक्त की कमी) रोग में उपचार के लिए करौंदा एक अत्यन्त लाभकारी फल है। विटामिन सी का अच्छा स्रोत होने के कारण स्कर्वी रोग से लड़ने में सहायक है। विटामिन सी एक एंटी–ऑक्सीडेंट की तरह भी काम करता है जो हृदय रोग में बचाव का काम करता है। इसके इलावा करौंदे में कैल्शियम, पोटैशियम आदि भी अच्छी मात्रा में पाये जाते हैं।

करौंदे के फल बहुत खट्टे होते हैं, इस कारण इन्हें कच्चा नहीं खाया जा सकता। आमतौर पर करौंदे का इस्तेमाल सब्जी, आचार, चटनी, मुरब्बा बनाने के लिए किया जाता है। फल के उचित प्रसंस्करण एवं परिरक्षण द्वारा इसे साल भर उपयोग में लाया जा सकता है। करौंदे से निर्मित पदार्थ जैसे आचार, चटनी, मुरब्बे में उपयोग होने वाले सामग्री एवं निर्माण विधि का संक्षिप्त वर्णन निम्नलिखित है :

करौंदे के ताजे फलों की पोष्टिक संरचनाः

तत्व	मात्रा
नमी (प्रतिशत)	85–90
कुल ठोस पदार्थ (प्रतिशत)	3.0–4.50
खटास (प्रतिशत)	2.8–4.6
कुल शक्कर (प्रतिशत)	1.50–3.75
प्रोटीन (प्रतिशत)	0.15–2.20
कुल खनिज पदार्थ (प्रतिशत)	0.16–1.13
लौहा (मिग्रा./100 ग्राम)	0.46–4.95
विटामिन सी (मिग्रा./100 ग्राम)	1.6–17.90

करौंदे का आचार के लिए आवश्यक सामग्री

सामग्री	मात्रा
करौंदा	1 किलोग्राम
नमक	200 ग्राम
हल्दी	25 ग्राम
मैथी	10 ग्राम
कलौंजी	10 ग्राम
तेल	250 मिली
अजवायन	10 ग्राम
पीली सरसों	10 ग्राम
लाल मिर्च	2 ग्राम
जीरा	10 ग्राम

विधि

- ताजा फलों को साफ पानी से धोकर पोंछ लें।
- चाकू की सहायता से फलों को दो भाग में काटकर बीज निकाल लें।
- पीली सरसों, मैथी, अजवायन और जीरा को कढ़ाई में डालकर हल्का सा (1–2 मिनिट) भून लें, इससे मसालों की नमी निकल जाती है और वह आसानी से पिस जाते हैं।
- भूने हुए मसालों को दरदरा पीस लें।
- कढ़ाई में तेल डालें व अच्छा धुआं उठने तक गरम करें, फिर गैस बंद कर दें।
- गरम तेल में कटे हुए करौंदे, व हल्दी पाउडर डाल कर मिला दें।
- अब इन फलों में दरदरे पिसे मसाले, नमक और लाल मिर्च डालकर अच्छी तरह मिला लें।
- आचार ठंडा होने के बाद कांच के साफ मर्तबान में रख लें।
- चार–पाँच दिन के लिए आचार को धूप में रखें और रोजाना एक बार हिला दीजिए।
- तीन–चार दिन बाद करौंदे के टुकड़े मुलायम हो जायेंगे और करौंदे में सारे मसाले जब्त हो जायेंगे।

करौंदे की चटनी

करौंदे की चटनी के लिए आवश्यक सामग्री

सामग्री	मात्रा
करौंदा	1 किलोग्राम
चीनी	750 ग्राम
इलायची पाउडर	5 ग्राम
लौंग पाउडर	5 ग्राम
दाल चीनी	5 ग्राम
काली मिर्च	5 ग्राम
लाल मिर्च पाउडर	2 ग्राम
नमक	10 ग्राम

करौंदे की चटनी

विधि

- साफ फलों को पानी में 2–3 मिनिट के लिए उबालें।
- फिर फलों को पानी से निकाल कर 1 मिनट तक सूखने के लिए रख दें। उसके दो हिस्से करके, बीज निकाल दें।
- करौंदे के टुकड़ों को मिक्सी में पीस कर कड़ाई में डाल कर पकायें, साथ ही साथ चीनी भी डाल लें।
- पाँच मिनट बाद सारे मसाले डालकर फिर पाँच मिनट तक और पकायें और नीचे उतार लें।
- चटनी को कांच के साफ मर्तबान में रख लें।

करौंदे का मुरब्बा

करौंदे के मुरब्बा की आवश्यक साम्रमी

करौंदाः 1 किलोग्राम, चीनीः 1 किलोग्राम

करौंदे का मुरब्बा

विधि

- फलों को काटकर दो हिस्सों में बांट लें व बीज निकाल दें।
- कटे हुए फलों को चार–पाँच मिनट तक भाप देकर पकायें ताकि करोंदे थोड़े नरम हो जायें।
- चीनी में पानी डालकर 1 तार की चाशनी तैयार कर लें।
- तैयार चाशनी में कटे हुए करौंदे के टुकडे डालने के बाद लगातार चलाते रहें।
- 10–15 मिनिट में करौंदे अपना रंग छोडने लगेंगे और चाशनी का रंग बदलने लगेगा।
- जब चाशनी गाढ़ी होने लगे और उसमें दो तार आने लगे तो समझिये करौंदे का मुरब्बा तैयार है।
- ठंडा होने पर साफ मर्तबान में भरकर रख लें।

समाप्त

देश, समाज और परिवार की उन्नति के लिए
सदैव ही परोपकारी व्यक्ति की आवश्यकता होती है।

नेहा[1] एवं गजेन्द्र[2]
[1]चौधरी चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार–124001 (हरियाणा)
[2]भाकृअनुप–केन्द्रीय मृदा लवणता अनुसंधान संस्थान, करनाल–132001 (हरियाणा)
E-mail: scneha07@gmail.com

गाय आधारित प्राकृतिक खेती के लाभ एवं महत्त्व

जैविक खेती – एक परिचय

जैविक खेती एक प्राचीन कृषि पद्धति है, जो भूमि के प्राकृतिक स्वरूप व पर्यावरण की शुद्धता को बनाए रखती है, मिट्टी की जल धारण क्षमता को बढ़ाती है, इसमें रसायनों का प्रयोग कम होता है और कम लागत में गुणवत्तापूर्ण पैदावार होती है। जैविक खेती में रासायनिक उर्वरकों, कीटनाशकों तथा खरपतवारनाशकों की बजाय गोबर की खाद, कम्पोस्ट खाद, हरी खाद, बैक्टीरिया कल्चर, जैविक खाद और जैविक कीटनाशकों का उपयोग खेती में किया जाता है। वैज्ञानिकों के अनुसार मिट्टी में असंख्य सूक्ष्मजीव रहते हैं, जो एक दुसरे के पूरक तो होते ही हैं, साथ ही पौधों के विकास के लिए पोषक तत्व भी उपलब्ध करवाते हैं। जैविक खेती का मूल उद्देश्य तेजी से बढ़ती जनसंख्या को मद्देनजर रखते हुए मृदा संरक्षण की प्रक्रियाएं अपनाते हुए जैविक तरीकों से कीट व रोगों पर नियंत्रण रखते हुए फसलों के उत्पादन को बढ़ाना है ताकि लोगों को स्वस्थ कृषि उत्पाद उपलब्ध हो सके, साथ ही कृषि क्रियाओं में पर्यावरण और प्राकृतिक संसाधनों की कम से कम क्षति हो।

बढ़ती हुई जनसंख्या के साथ भोजन की आपूर्ति के लिए हरित क्रांति के समय से 1960 से 1990 तक कृषि उत्पादन को बढ़ाने के लिए जिस तेजी से रासायनिक खादों और कीटनाशकों का इस्तेमाल किया गया, उसमें हमारे खेतों व जीवन दोनों को संकट में डाल दिया। तब पर्यावरण की अनदेखी की गयी थी, जिसकी कीमत आज हम चूका रहे हैं। 1990 के बाद प्राकृतिक खाद की ओर खेती को लौटाने का अभियान शुरू हुआ, जो अब भी जारी है। द्वितीय हरित क्रांति में प्राकृतिक खेती को बढ़ावा दिया जा रहा है और किसानों को इसके लिए जागरूक किया जा रहा है। किसानों को पता होगा कि प्राचीन काल में मानव स्वास्थ्य के अनुकूल तथा प्राकृतिक वातावरण के अनुरूप खेती की जाती थी। भारत वर्ष में प्राचीन काल में कृषि के साथ–साथ गौ पालन किया जाता था, जिसके प्रमाण हमारे ग्रंथों में कृषि एवं गौ पालन संयुक्त रूप से लाभदायक था जो कि प्राणीमात्र व वातावरण के लिए अत्यंत उपयोगी था। बदलते परिवेश में गौ पालन धीरे–धीरे कम हो गया तथा कृषि में कीटनाशकों का प्रयोग हो रहा है, जिसके फलस्वरूप प्राकृतिक व अप्राकृतिक पदार्थों का संतुलन बिगड़ता जा रहा है और वातावरण प्रदूषित होकर मानव जाति के स्वास्थ्य को प्रभावित कर रहा है। प्राकृतिक खेती सस्ती होने के साथ–साथ जीवन और जमीन को बचाने के लिए भी बेहद जरूरी है।

प्राकृतिक खेती का अर्थ

इसमें किसी भी फसल या बागवानी की फसल की लागत बहुत कम होगी, मुख्य फसल का लागत मूल्य अंतरवर्तीय फसलों या मिश्र फसलों के उत्पादन से निकाल लेना और मुख्य फसल बोनस रूप में लेना यह आध्यात्मिक कृषि की प्राकृतिक खेती है। फसलों को बढ़ने और उपज लेने के लिए जिन संसाधनों की आवश्यकता होती है, वे सभी घर में ही उपलब्ध कराना, किसी भी हालत में मंडी या बाजार से खरीदकर नहीं लाना, यही प्राकृतिक खेती है। फसलों को बढ़ने के लिए जो संसाधन चाहिए वह उनकी जड़ों के पास भूमि में और पत्तों के पास वातावरण में ही पर्याप्त मात्रा में मौजूद है, बाहर से कुछ भी देने की जरूरत नहीं, क्योंकि हमारी भूमि अन्नपूर्णा है। हमारी फसलें भूमि में से केवल 1.5 से 2.0 प्रतिशत तत्व लेती है, बाकि 98 से 98.5 प्रतिशत हवा, सूरज की रोशनी और पानी से लेती है।

प्राचीन कृषि विधि एवं कीट प्रबंधन

प्राकृतिक खेती में जैविक खाद और कीटनाशकों का इस्तेमाल होता है। भारतीय किसानों के लिए प्राकृतिक खेती कोई नया विषय नहीं है। यह जरूर है कि रासायनिक खाद और कीटनाशकों के प्रयोग को लेकर चले अभियान ने हमारे किसानों को कुछ समय के लिए अपने ऊपर निर्भर बना लिया। अब, जबकि एक बार हम सस्ती और कम नुकसानदेह वाली खेती की और बढ़ रहे हैं, तब एक बार हम पुरानी कृषि विधि और कीट प्रबंधन की और लौटना चाहते हैं। इस अंतराल में प्राकृतिक खेती को लेकर कई नये प्रयोग हुए हैं, जो खेती के लाभ के दायरे को बढ़ाते हैं। रासायनिक और महंगी खाद की जगह हम इन खादों का इस्तेमाल कर सस्ती, टिकाऊ और स्वस्थ खेती का लाभ ले सकते हैं।

गाय का कृषि में सांझा योगदान

यदि किसान प्राकृतिक खेती अपनाते हैं तो महंगे खाद, कीटनाशक आदि से मुक्त होकर बेहतर समृद्धि की ओर बढ़ सकते हैं, क्योंकि कृषि में आने वाला खर्चा 50 प्रतिशत कम हो जाता है, इसके लिए किसान को अपनी भूमि के संवर्धन के उपाय व आधुनिक प्राकृतिक कृषि सूत्रों का उपयोग करना होगा, आज यूरिया, फॉस्फेट आदि के लम्बे समय तक उपयोग से भूमि अम्लीय/क्षारीय हो रही है एवं भूमि में कार्बनिक तत्वों व सूक्ष्म जीवाणुओं के समाप्त होने से लाखों एकड़ भूमि बंजर हो चुकी है।

शास्त्रों में कहा गया है कि गाय का गोबर सम्पूर्ण पोषण है, आज विज्ञान से यह सिद्ध हो चूका है, क्योंकि गाय के गोबर की सहायता से भूमि की अम्लीयता खत्म हो जाती है। भूमि के कणिक तत्वों की पूर्ति होती है, जिससे जमीन के अंदर अंडे, केंचुएं आदि लाभदायक जीवों का पोषण होता है व असंख्य संख्या में कृषि के सर्वोपरि सूक्ष्म जीवाणुओं को बढ़ाते हैं। गाय के गोबर व गौमूत्र में भूमि के लिए आवश्यक सभी पोषक तत्व मौजूद है। वर्तमान में अज्ञानतावश इनका सही ढंग से उपयोग नहीं हो रहा है। गोबर व गौमूत्र से किसान अत्यंत लाभ कमा सकते हैं व यूरिया से मुक्ति पा सकते हैं। अतः गाय–बैल को कृषि में अपना लाभदायक साझेदार समझें, बिना दूध देने वाली गाय भी गोबर और गौमूत्र के आधार पर एक लाभदायक भागीदार है, अपने खेत पर प्रति बीघा कम से कम एक गौ वंश जरूर पालें।

प्राकृतिक खेती के उद्देश्य : खेती की लागत कम करके अधिक लाभ लेना, मिट्टी की उर्वराशक्ति को बढ़ाना, रासायनिक खाद/कीटनाशकों के प्रयोग में कमी लाना, कम पानी से अधिक उत्पादन लेना, किसानों की बाजार निर्भरता में कमी लाना।

गौ आधारित प्राकृतिक खेती से होने वाले लाभ : प्राकृतिक खेती के कई लाभ हैं, इससे खेत और किसान दोनों आत्मनिर्भर होते हैं। कुछ ही सालों में खेत की उत्पादन क्षमता का स्वभाविक विकास हो जाता है जिससे बहुत अधिक पानी और खाद की जरूरत नहीं रह जाती है।

कम लागत पर अधिक उत्पादन : किसानों की रासायनिक खाद पर निर्भरता घट जाती है। किसान खुद खाद तैयार कर सकते हैं। इसके लिए उन्हें सरकार और खाद आपूर्तिकर्ताओं की ओर नहीं ताकना पड़ता, चूँकि प्राकृतिक खेती सस्ती है, इसलिए किसान को कम लागत पर अधिक उत्पादन का भरपूर अवसर मिलता है। प्राकृतिक खेती से भूमि की उपजाऊ क्षमता बढ़ती है। कम लागत में बेहतर उपज मिलती है। प्राकृतिक खेती पर्यावरण और जैव विविधता के लिए अनुकुल है।

भूमि के जल स्तर में वृद्धि : प्राकृतिक खेती से भूमि के जल स्तर में वृद्धि होती है। यह जल और मिट्टी के माध्यम से होने वाले प्रदूषण में कमी लाती है, इसमें खाद बनाने के लिए कचरे का उपयोग होता है। इससे कचरा प्रबंधन में भी हमें मदद मिलती है। प्राकृतिक खेती सिंचाई संकट में भी निकलने का बड़ा रास्ता देती है, कम अंतराल पर सिंचाई नहीं करनी पड़ती है।

मृदा की जलधारण क्षमता में बढोत्तरी : प्राकृतिक खाद से खेतों में जलधारण की क्षमता बढ़ती है तथा प्राकृतिक खेती से खेत का पानी भाप बनकर उड़ने की प्रक्रिया कम होती है। इससे खेतों में लम्बे समय तक नमी बनी रहती है और सिंचाई के खर्च को कम करती है। प्राकृतिक खेती से उत्पादित फसलों में सड़ने और गलने की दर रासायनिक खाद के मुकाबले धीमी होती है। इससे किसानों को अपनी फसल बचाने के लिए ज्यादा समय मिलता है। प्राकृतिक खेती का दीर्घकालीन सकारात्मक प्रभाव भी है।

खेती की गुणवत्ता में सुधार : खेती की गुणवत्ता को बनाये रखने में ये कारगर है। प्राकृतिक खादें व प्राकृतिक कीट व खरपतवार नियंत्रक रासायनिक उर्वरकों की तुलना में कम खर्च (लगभग 75–85 प्रतिशत) में तैयार कर सकते हैं। प्राकृतिक कृषि उत्पादों की उपलब्धता ग्राम स्तर पर ही हो सकती है, स्थानीय संसाधनों के विवेकपूर्ण प्रयोग से उत्पादित पदार्थों की गुणवत्ता, पोष्टिकता एवं उत्पादन क्षमता में निरंतर वृद्धि होती है। प्राकृतिक खादों के संतुलित प्रयोग से मृदा की भौतिक, रासायनिक व प्राकृतिक संरचना में गुणोत्तर वृद्धि होती है। प्राकृतिक उत्पाद अधिक स्वास्थ्यवर्धक होते हैं।

संतुलित विकास : प्राकृतिक तकनीक व स्थानीय कृषि तकनीक से समन्वित कृषि का विकास होता है। प्राकृतिक खेती विभिन्नता व विविधता के कारण संतुलित विकास में सहायक होती है। कम लागत, स्थानिक निर्माण व उपयोगिता के विभिन्न गुण प्राकृतिक खादों को किसान के लिए मित्रवत बनाते हैं। प्राकृतिक खाद से मृदा में जल धारण क्षमता, पीएच मान, जीवाश्म का अनुपात आदि में वृद्धि होती है। प्राकृतिक खेती में कम लागत व गुणोत्तर उत्पादन से सकल आय में बढ़ोत्तरी होती है। प्राकृतिक कृषि उत्पादों की बिक्री व निर्यात में 30–40 प्रतिशत अधिक मूल्य भी मिलता है।

खरपतवार व कीटों के प्रकोप में कमी : प्राकृतिक खादों के निरंतर प्रयोग से रासायनिक खेती–बाड़ी की तुलना में खरपतवार व कीड़ों के प्रकोप में कमी आती है। फलतः रासायनिक खरपतवार व कीटनाशी पर खर्च तथा उनके विभिन्न हानिकारक आयाम जैसे मित्र कीटों में कमी, प्रदूषण, खाद्य श्रृंखला में विष प्रकोप आदि से बचा जा सकता है। प्राकृतिक खादों के प्रयोग से उत्पादित कृषि उत्पादनों में भंडारण क्षमता तुलनात्मक रूप से लगभग 30–40 प्रतिशत अधिक होती है।

प्राकृतिक खेती के मुख्य अवयव

मटका खाद

विधि

- 15 कि॰ग्रा॰ ताजा गोबर, देशी गाय का 15 लीटर गौमूत्र तथा 15 लीटर पानी मिट्टी के घड़े में घोल लें। उसमें 250 ग्राम गुड़ भी मिला दें।
- इस घोल को मिट्टी के बर्तन में ऊपर से कपड़ा या टाट व मिट्टी से पैक कर दें।
- 7 से 8 दिन बाद इस घोल में 200 लीटर पानी मिलाकर 1 एकड़ खेत में समान रूप से छिड़क दें।
- पुनः 7 दिन बाद दूसरा छिड़काव करें।
- सामान्य फसल में 3 से 4 बार और लम्बी अवधि की फसल में 8–9 बार छिड़काव करें।

लाभ

- पौधों की वानस्पतिक वृद्धि में सहायक।
- भूमि में मित्र जीवाणुओं की संख्या में वृद्धि।
- भूमि की उर्वराशक्ति में वृद्धि।

बीजामृत (बीज शोधन) : 100 कि॰ग्रा॰ बीज के लिए 5 कि॰ग्रा॰ गाय का गोबर, 5 लीटर गौमूत्र, 20 लीटर पानी, 50 ग्राम चुना, 50 ग्राम मेड़ की मिट्टी।

बनाने की विधि : उपरोक्त सामग्री को 24 घंटे एक साथ पानी में डालकर रखें, दिन में दो बार लकड़ी से घोलें, बाद में बीज पर बनाए हुए बीजामृत का छिड़काव करें, बीज को मिलाकर छाया में सुखाएं और बाद में बोएं। बीज शोधन से बीज जल्दी और ज्यादा मात्रा में उग आते हैं, जड़ें गति से बढ़ती हैं और भूमि से पेड़ों पर जो बीमारियों का प्रादुर्भाव होता है वह नहीं हो पाता है।

घन जीवामृत (एक एकड़ हेतु)

सामग्री : 100 कि॰ग्रा॰ गाय का गोबर, 1 कि॰ग्रा॰ गुड़/फलों के गूदे की चटनी, 2 कि॰ग्रा॰ बेसन (चना, उड़द, अरहर, मुंग), 50 ग्राम मेड़ या जंगल की मिट्टी, 1 लीटर गौमूत्र।

बनाने की विधि : सर्वप्रथम 100 कि॰ग्रा॰ गाय के गोबर को किसी पक्के फर्श व पॉलीथिन पर फैलाएं फिर इसके बाद 1 कि॰ग्रा॰ गुड़ या फलों के गुदों की चटनी व 1 कि॰ग्रा॰ बेसन को डालें, इसके बाद 50 ग्राम मेड़ या जंगल की मिट्टी तथा 1 लीटर गौमूत्र डालकर सभी सामग्री को फावडे से मिलाएं और 48 घंटे छायादार स्थान पर एकत्र कर जुट के बोरे से ढक दें। 48 घंटे बाद छाया में सुखाकर चूर्ण बनाकर भंडारण करें। इस घन जीवामृत का प्रयोग छः माह तक कर सकते हैं। एक बार जुताई के बाद घन जीवामृत का छिड़काव कर खेत तैयार करें।

जीवामृत (एक एकड़ हेतु)

सामग्री : 10 कि॰ग्रा॰ देशी गाय का गोबर, 5–10 लीटर गौमूत्र, 2 कि॰ग्रा॰ गुड़ या फलों के गुदों की चटनी, 2 कि॰ग्रा॰ बेसन (चना, उड़द, मुंग), 200 लीटर पानी, 50 ग्राम मिट्टी।

बनाने की विधि : सर्वप्रथम कोई प्लास्टिक या सीमेंट की टंकी लें फिर उसमें 200 लीटर पानी डालें। पानी में 10 कि॰ग्रा॰

गाय का गोबर व 5–10 लीटर गौमूत्र एवं 2 कि॰ग्रा॰ गुड़ या फलों के गुदो की चटनी मिलाएं। इसके बाद 2 कि॰ग्रा॰ बेसन, 50 ग्राम मेड़ की मिट्टी या जंगल की मिट्टी डालें और सभी को डंडे से मिलाएं। इसके बाद प्लास्टिक या सीमेंट की टंकी को जालीदार कपड़े से बंद कर दें। 48 घंटे में चार बार डंडे से चलाएं और 48 घंटे बाद जीवामृत तैयार हो जाएगा। इस जीवामृत का प्रयोग केवल सात दिनों तक कर सकते हैं। जीवामृत को तालिका 1 अनुसार छिड़काव करें।

तालिका 1. जीवामृत का पानी की सिंचाई के साथ खेत में छिड़काव का विवरण।

छिडकाव	फसल की बुवाई के दिन बाद	छने जीवामृत की मात्रा (लीटर)	पानी की मात्रा (लीटर)
पहला	15 से 21	5	100
दूसरा	30 से 45	5	100
तीसरा	45 से 60	10	150
चौथा	60 से 75	20	200
पांचवां	75 से 90	20	200
छठा	90 से 105	25	200
सातवां	105 से 120	25	200
आठवां	120 से 135	25	200
नौवां	135 से 150	25	200
दसवां	150 से 200	30	200

कीटनाशक दवाएं

नीमास्त्र (रस चूसने वाले कीट एवं छोटी सुंडी इल्लियों के नियंत्रण हेतु)

सामग्री : 5 कि॰ग्रा॰ नीम की टहनियां, 5 कि॰ग्रा॰ नीम फल/खली, 5 लीटर गौमूत्र, 1 कि॰ग्रा॰ गाय का गोबर।

बनाने की विधि

सर्वप्रथम प्लास्टिक के बर्तन पर 5 किलोग्राम नीम की पत्तियों की चटनी और 5 किलोग्राम नीम के फल पीस व कूट कर डालें एवं 5 लीटर गौमूत्र व 1 किलोग्राम गाय का गोबर डालें। इन सभी सामग्री को डंडे से मिलाकर जालीदार कपड़े से ढक दें। यह 48 घंटे में तैयार हो जाएगा। 48 घंटे में चार बार डंडे से हिलाएं।

छिड़काव : 100 लीटर पानी में तैयार नीमास्त्र को छान कर मिलाएं और स्प्रे मशीन से छिड़काव करें।

ब्रह्मास्त्र (बड़ी सुंडी/इल्लियों के लिए)

सामग्री : 10 लीटर गौमूत्र, 3 कि॰ग्रा॰ नीम की पत्ती की चटनी, 2 कि॰ग्रा॰ करंज के पत्तों की चटनी, 2 कि॰ग्रा॰ सीताफल के पत्ते की चटनी, 2 कि॰ग्रा॰ बेल के पत्ते, 2 कि॰ग्रा॰ अरंडी के पत्ते की चटनी, 2 कि॰ग्रा॰ धतूरा के पत्ते की चटनी।

बनाने की विधि : इन सभी सामग्री में से कोई भी पांच सामग्री के मिश्रण को गौमूत्र में मिट्टी के बर्तन में डालकर आग में उबालें जैसे चार उबाल आ जाए तो आग से उतारकर 48 घंटे छाया में ठंडा होने दें। इसके बाद कपड़े से छानकर भंडारण करें। ब्रह्मास्त्र का प्रयोग छः माह तक कर सकते हैं। एक एकड़ हेतु 100 लीटर पानी में 3 से 4 लीटर ब्रह्मास्त्र मिला कर छिड़काव करें।

अग्नि अस्त्र (तना कीट, फलों की सुंडी एवं इल्लियों के लिए)

सामग्री : 20 लीटर गौमूत्र, 5 कि॰ग्रा॰ नीम पत्ते की चटनी, 500 ग्राम तम्बाकू का पाउडर, 500 ग्राम हरी मिर्च, 500 ग्राम देशी लहसुन की चटनी।

बनाने की विधि : उपयुक्त सामग्री को एक मिट्टी के बर्तन में डालें और आग पर चार बार उबाल आने दें। फिर 48 घंटे छाया में रखें। 48 घंटे में चार बार डंडे से हिलाएं। अग्नि अस्त्र का प्रयोग केवल तीन माह तक कर सकते हैं। 5 लीटर अग्नि अस्त्र को छानकर 200 लीटर पानी में मिलाकर स्प्रे मशीन या नीम के लेवचा से छिड़काव करें।

फफूंदनाशक दवा

100 लीटर पानी में 3 लीटर खट्टी छाछ (मट्ठा) का खूब अच्छी तरह मिलाकर फसल में छिड़काव करें।

दशपर्णी अर्क (सभी तरह के रस चूसक कीट और इल्लियों के नियंत्रण के लिए)

सामग्री : 200 लीटर पानी, 2 कि॰ग्रा॰ करंज के पत्ते, 2 कि॰ग्रा॰ सीताफल के पत्ते, 2 कि॰ग्रा॰ धतूरा के पत्ते, 2 कि॰ग्रा॰ तुलसी के पत्ते, 2 कि॰ग्रा॰ पपीता के पत्ते, 2 कि॰ग्रा॰ गेंदा के पत्ते, 2 कि॰ग्रा॰ गाय का गोबर, 500 ग्राम तीखी हरी मिर्च, 200 ग्राम अदरक या सोंठ, 5 कि॰ग्रा॰ नीम के पत्ते, 2 कि॰ग्रा॰ बेल के पत्ते, 2 कि॰ग्रा॰ कनेर के पत्ते, 10 लीटर गौमूत्र, 500 ग्राम तम्बाकू पीस या काटकर, 500 ग्राम हल्दी पिसी हुई।

बनाने की विधि : सर्वप्रथम एक प्लास्टिक के ड्रम में 200 लीटर पानी डालकर नीम, करंज, सीताफल, धतूरा, बेल, तुलसी, आम, पपीता, गैंदा पत्ती की चटनी डालें और डंडे से चलाएं, फिर दूसरे दिन तम्बाकू, मिर्च, लहसुन, सौंठ, हल्दी डालें, फिर डंडे से चलाकर जालीदार कपड़े से बंद कर दें और 40 दिन छाया में रखा रहने दें, परन्तु सुबह शाम चलाएं। इसको छः माह तक प्रयोग कर सकते हैं। इस दशपर्णी अर्क को छाया में रखें। सुबह शाम हिलाना न भूलें। 200 लीटर पानी में 5 से 8 लीटर दशपर्णी अर्क मिलाकर छिड़काव करें।

समाप्त

चाही गई वस्तुओं में से कुछ के बिना रहना भी सुख का अनिवार्य हिस्सा है।

प्रवीण जाखड़[1], कर्मबीर, धुर्व चरण साहू, ज्योतिप्रभा दास, अंजित कुमार एवं जी॰बी॰ नायक

[1]भाकृअनुप–केन्द्रीय कृषिरत महिला अनुसंधान संस्थान, भुवनेश्वर (ओडिशा)

भाकृअनुप–भारतीय मृदा एवं जल संरक्षण संस्थान, अनुसंधान केन्द्र, कोरापुट–763002 (ओडिशा)

E-mail: praveen.jakhar@icar.gov.in

जैव अभियांत्रिकी द्वारा मिट्टी एवं जल संरक्षण

जैव अभियांत्रिकी (बायोइंजीनियरिंग) एक आधुनिक मिट्टी व जल संरक्षण पद्धति है। जैव अभियांत्रिकी का अनुप्रयोग प्राणी जीवन के लाभ हेतु इंजीनियरिंग डिजाइन और प्रौद्योगिकी प्रणालियों के लिए किया जाता है। बाढ़ के न्यूनीकरण के संदर्भ में यह जैविक, यांत्रिक और पारिस्थितिकी अवधारणाओं के संयोजन को संदर्भित करता है, जो क्षरण को कम या नियंत्रित करने के साथ ही साथ मृदा संरक्षण भी करता है, इस पद्धति में वनस्पति या निर्माण सामग्री के संयोजन से भूमि ढ़लानों को स्थिर किया जाता है। जैव अभियांत्रिकी तकनीकों का सामाजिक इंजीनियरिंग उपायों के साथ संयोजन करके भूस्खलन जैसी समस्या को कम लागत में काफी कम किया जा सकता है। जैव अभियांत्रिकी पर्वतीय और पहाड़ी क्षेत्रों में अस्थिरता की समस्याओं को हल करने के लिए पर्यावरण अनुकूल और कम लागत के साथ समय प्रभावी समाधान और मिट्टी को नियंत्रित करने के लिए उपयोगी तकनीक है। यह मिट्टी के कटाव, ढलान की विफलता, भूस्खलन, मलबे का प्रवाह और अंततः बाढ़ की घटना को कम करने में लाभदायक सिद्ध हुई है। भौतिक निर्माण तकनीकों और जैव अभियांत्रिकी के बीच एक बड़ा अंतर यह है कि भौतिक संरचनाएं तत्काल सुरक्षा प्रदान करती है, जबकि जैव अभियांत्रिकी वनस्पति को अधिकतम क्षमता (पूर्णतः बढ़वार) तक पहुँचने के लिए समय लगता है। इस प्रकार भौतिक और वनस्पति उपायों के संयोजन से तत्काल और दीर्घकालिक संरक्षण के साथ पारिस्थितिकी रूप से हानिकारक प्रभावों को काफी कम किया जा सकता है। यांत्रिक विधियों का उपयोग ढ़लान वाली भूमि की सतह से मिट्टी के कटाव के नियंत्रण के लिए किया जाता है। मेडबंदी व सीढ़ीनुमा (बेंच टेरेस) यांत्रिक संरचनाएं हैं जिनका उपयोग मिट्टी क्षरण नियंत्रण में किया जाता है। यांत्रिक संरचनाओं के निर्माण का उद्देश्य है:

– पानी के भूमि में स्त्रावण समय को बढ़ाने के लिए अपवाह जल के ठहराव समय को बढ़ाना,

– भूमि ढलान को तोड़कर अपवाह जल के वेग को कम करना,

सीढ़ीनुमा (बेंच टेरेस) खेत ढलान को विभाजित करने का कार्य करते हैं। सीढीदार बंधों को दो समूहों में वर्गीकृत किया जा सकता है। बेंच मेड़ भूमि के ढलान को कम करती है जबकि समतल भाग ढलान वाली भूमि पर पानी का ठहराव बनाए रखती है। बेंच बंध प्रणाली में समतल सीढीनुमा खेत जैसे क्षेत्रों की एक श्रृंखला शामिल होती है जो 20 से 30 प्रतिशत की खड़ी ढलान को एक समान स्तर की श्रृंखला में बदल देती है। प्राथमिक कार्य के आधार पर समतल भाग को ग्रेडेड या नाली के प्रकार में वर्गीकृत किया जाता है। वर्गीकृत भू–भाग का प्राथमिक कार्य अतिरिक्त पानी को सुरक्षित तरीके से निकालकर कटाव को कम करना है। कटाव की लंबाई कम करने और एक गैर–कटाव वाले वेग पर एक सुरक्षित निकास के लिए अवरोधक अपवाह का संचालन करके कटाव को नियंत्रित किया जाता है। निम्न से मध्यम वर्षा वाले क्षेत्रों के बीच आकर मृदा स्तर में जल अवशोषण के लिए वर्षा जल को रोकते हैं। यदि मिट्टी पारगम्य हैं तो अवरोधक का उपयोग उच्च वर्षा वाले क्षेत्रों में भी किया जा सकता है।

मेडबंदी

मेडबंदी कार्यात्मक आवश्यकताओं के आधार पर, मेडबंदी को दो प्रकारों में विभाजित किया जा सकता है:

– समोच्च बेड (कंटूर बंड) – पानी का भंडारण और

– क्रमिक बेड (ग्रेडेड बंड) – अतिरिक्त पानी का सुरक्षित निष्कासन

क्रमिक मेड़ का उपयोग बहुत अधिक वर्षा वाले क्षेत्रों में किया जाता है और कम वर्षा वाले भागों में समोच्च मेड का उपयोग किया जाता है। मेड़ के प्रकार की पसंद ढ़लान, वर्षा, मिट्टी के प्रकार और क्षेत्र में बंड बनाने के उद्देश्य पर निर्भर करती है। समोच्च के बाद क्रमिक मेड़ का निर्माण किया जाता है। इस तरह के बंड की एक श्रृंखला क्षेत्र को पट्टियों में विभाजित करती है और पानी के प्रवाह के लिए बाधा के रूप में कार्य करती है, इस प्रकार अपवाह की मात्रा और वेग को कम करती है। क्रमिक मेड़ का उपयोग उच्च वर्षा वाले क्षेत्रों तथा अपेक्षाकृत अपारगम्य मिट्टी वाले क्षेत्रों में अतिरिक्त अपवाह के सुरक्षित निकास के लिए किया जाता है।

जैव अभियांत्रिकी विधि

अभियांत्रिकी तकनीकों को जैविक ज्ञान के साथ जोड़कर भू–तकनीकी और दवचालित (हाइड्रोलिक) संरचनाओं का निर्माण अस्थिर ढलानों और किनारों को सुरक्षित करने के लिए भी किया जाता है। संपूर्ण पौधों या उनके भागों का उपयोग अन्य निर्माण सामग्री के संयोजन में, अस्थिर क्षेत्रों को सुरक्षित करने के लिए किया जाता है। अनेक प्रकार के नाले छिद्रों और अन्य लकड़ी के वृक्षों का उपयोग करने वाले जैव तकनीकी तरीके कई मिट्टी संरक्षण संरचनाओं के निर्माण के लिए विशेष रूप से उपयुक्त है। यह संरचना मिट्टी को स्थिर करने के साथ बहते पानी की गति को कम करती है जिससे सतह का कटाव कम होता है। मृदा संरक्षण के अन्य तरीकों की तुलना में इन संरचनाओं का रखरखाव एक बहुत महत्वपूर्ण पहलू है। शुरुआत में जैव अभियांत्रिकी संरचनाओं की रखरखाव लागत कुछ अधिक है और बाद में यह बहुत कम हो जाती है। मृदा संरक्षण की जैव अभियांत्रिकी विधियों के निम्नलिखित लाभ है :

– स्थापना के तुरंत बाद प्रभावी रूप से सक्षम

– संरचनाओं के रूप में आसानी से उपलब्ध सामग्री भी नई पौध सामग्री के लिए नर्सरी का भी कार्य करती है, और

– तैयारी और सुरक्षा में लचीलापन

जैव अभियांत्रिकी द्वारा पूर्वी घाट की ढालू भूमि पर कटाव संरक्षण

पूर्वी घाट क्षेत्र के अंतर्गत छत्तीसगढ़, झारखंड और ओड़िशा राज्यों के पहाड़ी इलाके संभावित रूप से समृद्ध व प्राकृतिक संसाधन संपन्न है। दूसरी ओर लहरदार भूखंड स्थलाकृति और पहाड़ी इलाके होने के कारण निहित समस्याएँ जैसे अनियंत्रित चराई, वनों की कटाई के साथ स्थानान्तरी कृषि और अन्य भूमि आधारित गतिविधियाँ मिट्टी कटाव की समस्या को बढाती है जिसका प्रभाव उत्पादकता में कमी और गरीब किसानों की सामाजिक–आर्थिक स्थिति पर पड़ता है। इस क्षेत्र में आदिवासी समुदायों (22–33 प्रतिशत आबादी) का प्रभुत्व है। उच्च जनसंख्या वृद्धि और निचले भाग में कृषि के विस्तार के लिए सीमित सीमा होने के कारण कृषि खाद्य के लिए ऊँची पहाड़ियों पर उत्पादन दबाव पड़ता है। पूर्वी घाट क्षेत्र उच्च तीव्रता के साथ 1450 मिमी की औसत वर्षा दक्षिण–पश्चिमी मानसून (जून से अक्टूबर) के दौरान प्राप्त करता है। स्थानिक वर्षा जल संरक्षण फसल उत्पादकता बढ़ाने, फसल तनाव की अवधि और सूखा स्थितियों को कम करने के लिए महत्वपूर्ण है। संरक्षण क्षमता में सुधार के लिए जैव अभियांत्रिकी सबसे अच्छा संरक्षण उपाय है। यह यांत्रिक उपायों और स्थानीय रूप से उपलब्ध वनस्पति का एक संयोजन है। झाड़ू घास के साथ जैव अभियांत्रिकी उपाय मंडुआ फसल की उपज और यथास्थान नमी बनाये रखने में पूर्वी घाट उच्च क्षेत्र के लिए उपयुक्त पाया गया है।

जैव अभियांत्रिकी संरक्षण उपाय का महत्त्व

जैव अभियांत्रिकी उपाय न केवल स्थानिक वर्षा जल संरक्षण में वृद्धि, अपवाह को कम करने और कटाव को नियंत्रित करने में प्रभावी है अपितु लागत प्रभावी, पर्यावरण अनुकूल और आदिवासी क्षेत्रों में सामाजिक रूप से स्वीकार्य है। यह संरक्षण मूल्यों से अलग चारा और कुछ आर्थिक लाभ भी प्रदान करता है। इसके अलावा यह अल्प और दीर्घ समय तक संरक्षण और पैदावार के रूप में उत्पादन प्रणालियों के लिए योगदान करता है।

जैव अभियांत्रिकी उपाय के लिए उपयुक्त घास का चयन

जैव अभियांत्रिकी उपाय के लिए घास का चयन कुछ बिन्दुओं पर निर्भर करता है जैसे कि घास की उपयोगिता, किसानों के लाभ में वृद्धि और हितधारकों के लिए इसकी स्वीकृति। घास जिसमें उपयुक्त चारा और अधिक संरक्षण मान हो उसे आम तौर पर पसंद किया जाता है। यदि किसान के पास मवेशी और सुरक्षित खेत उपलब्ध हैं तो उसके लिए घास जिसमें उपयुक्त चारा हो, पसंद है अन्यथा उस खेत में जहाँ अनियंत्रित खुली चराई की समस्या है गैर–चारा घास प्रजाति उपयुक्त विकल्प है। सबसे अच्छा अनुकूल स्थानीय घास झाड़ू (*थीसांवलेना मेक्सिमा*) और सेमबूटा घास (*सेकेरम स्पीशीज*) हैं।

सेमबूटा घास को इसकी गैर–चारा मान, मेडबंदी को मजबूत बनाने और फसलों पर कोई प्रतिकूल प्रभाव ना होने के कारण प्रयोग किया जाता है। झाड़ू घास भी अपने गैर–चारा मान और स्थानीय समुदायों द्वारा स्वीकृति, मेडबंदी को मजबूत बनाने और फसल पर कोई प्रतिकूल प्रभाव ना होने के कारण उपयुक्त जैव अभियांत्रिकी उपाय है। इसको झाड़ू बनाने के लिए भी उपयोग किया जाता है।

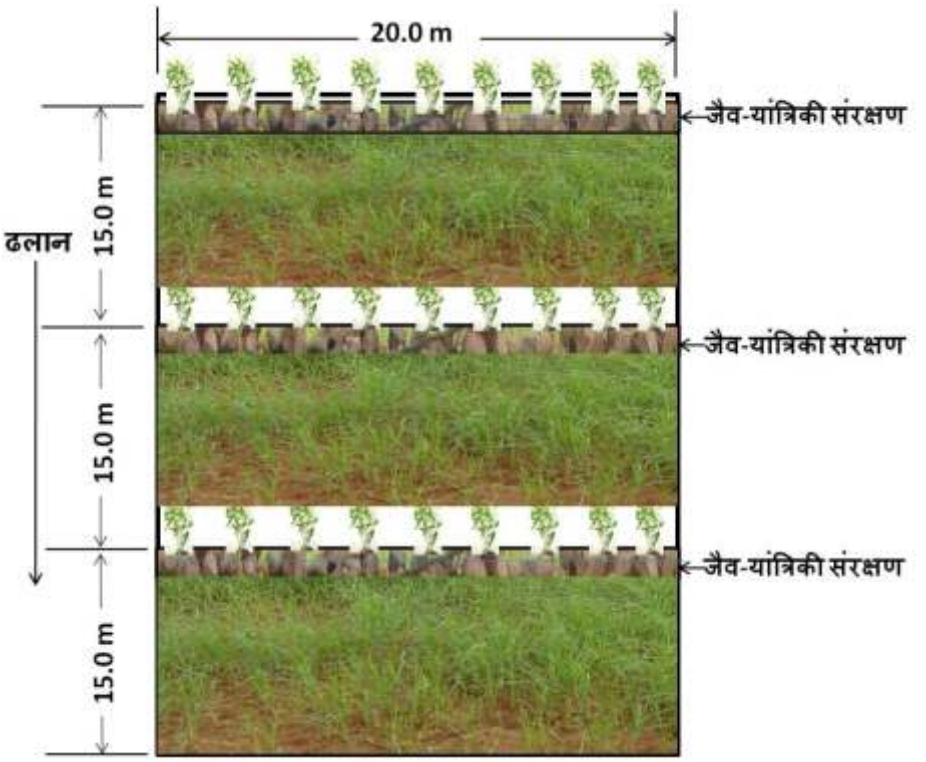

क्षेत्र में फसल के साथ जैव अभियांत्रिकी उपायों का चित्र

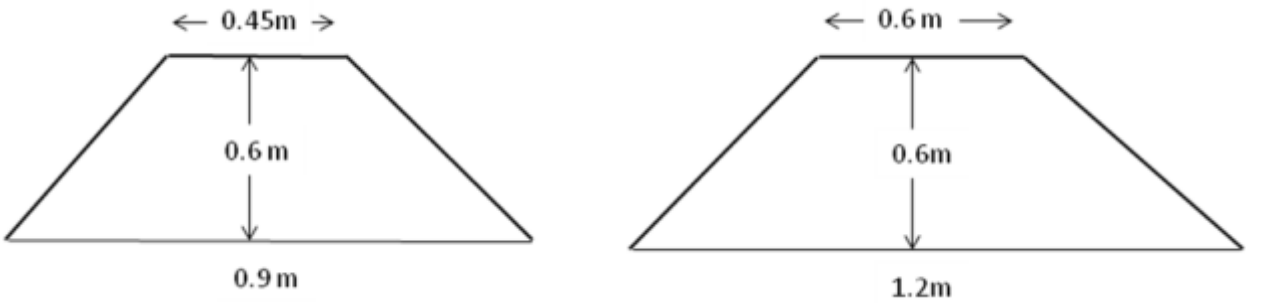

: मिट्टी के बांध और पत्थर बांध के क्रॉस अनुभागीय दृश्य

घास रोपण एवं रखरखाव

- झाड़ू घास का रोपण सिर्फ मिट्टी के बांध पर मानसून के आगमन से पहले किया जाना चाहिए (15–20 सेंमी. पौधों की दूरी, 40–50 सेंमी. पंक्ति की दूरी)।
- रोपण क्रमबद्ध तरीके से किया जाना चाहिए। पत्थर मेडबंदी के साथ घास रोपण ऊपरी भाग पर मिट्टी की मेडबंदी कर एक ही तरीके से किया जाना चाहिए।
- मानसून से पहले अन्तराल भराई और घास की पूर्ण स्थापना के बाद छंटाई का कार्य नियमित अंतराल पर किया जाना चाहिए।

झाड़ू घास बागान का चित्रण

जैव अभियांत्रिकी उपायों के लाभ

झाड़ू घास के साथ मिट्टी और पत्थर मेडबंदी

- झाड़ू घास के साथ जैव अभियांत्रिकी उपाय अत्यधिक लागत प्रभावी, दीर्घ जीवन काल और झाड़ू बनाने के अतिरिक्त लाभ होने के कारण किसानों द्वारा स्वीकार्य है।
- इस उपाय को अपनाने से यह अपवाह को कम करके बांध के ऊपरी ओर उपजाऊ क्षरण मिट्टी को बनाये रखकर मिट्टी की नमी को बढ़ाता है।
- यह तकनीक 4 व 8 प्रतिशत ढलान पर मंडुए की उपज को क्रमशः 25–45 प्रतिशत और 20–52 प्रतिशत बढ़ा देता है।
- जैव अभियांत्रिकी उपाय अपनाने से लाभःलागत अनुपात 1.8 आता है (10 प्रतिशत की छूट और 10 वर्ष जीवन काल)। ऋण वापसी की अवधि 8 वर्ष और वापसी की आंतरिक दर 46 प्रतिशत है।

किसानों के लिए युक्तियाँ

जैव अभियांत्रिकी के साथ मंडुए की फसल

- क्षेत्र अभिन्यास (लेआउट) ऊपरी क्षेत्र से निचले क्षेत्र की तरफ करने के लिए किया जाना चाहिए व कंटूर पर करने को प्राथमिकता दें।
- पत्थर मेडबंदी को वहाँ प्राथमिकता देनी है जहाँ आसपास पत्थर खूब उपलब्ध हों ताकि पत्थर एकत्र करके उसे मेडबंदी के लिए इस्तेमाल किया जा सके अन्यथा मिट्टी बांध, झाड़ू घास के साथ संयोजन में बनायें।
- पत्थर या मिट्टी का बांध 15–30 मीटर की क्षैतिज दूरी पर (2–10 प्रतिशत) ढलान में किया जाना चाहिए।
- घास का रोपण मानसून के दौरान किया जाना चाहिए और अंतराल को एक ही मौसम या अगले वर्ष पुनःरोपण द्वारा भरा जा सकता है।
- मुख्य क्षेत्र में फसलों के साथ प्रतिस्पर्धा से बचाने के लिए घास को समय–समय पर काटकर अनुरक्षित करना चाहिए।
- क्षेत्र में खेती करते समय बांध के साथ ही घास को नुकसान ना पहुँचाएं। यदि कोई मामूली क्षति हो तो हर साल मानसून से पहले रखरखाव और मरम्मत कर जैव अभियांत्रिकी के उपाय का कुशल संचालन करके जमीन को दुरस्त कर लेना चाहिए।

समाप्त

दिनेश कुमार, मगन सिंह, तारामणि यादव एवं सौरभ कुमार
भाकृअनुप–राष्ट्रीय डेरी अनुसंधान संस्थान, करनाल–132001 (हरियाणा)
E-mail: sirvidkagro@gmail.com

चारा फसलों में धूरिन एवं नाइट्रेट विषाक्तता प्रतिपोषकों का प्रबंधन

भारतीय कृषि मुख्यतः ग्रामीण क्षेत्रों में पशुधन रोजगार प्रदान करने में प्रमुख भूमिका निभाता है। भारत के लगभग 20.5 मिलियन लोग अपनी आजीविका के लिए पशुधन पर निर्भर हैं। भारत में दुनिया के पशुधन की सबसे बड़ी संख्या (512.05 मिलियन) है। पशुधन के कुल उत्पादन में से अकेले दूध का योगदान 68 प्रतिशत है। भारत दुनिया में दूध का सबसे बड़ा उत्पादक देश है जहाँ 2017–18 के दौरान दूध उत्पादन 176.3 मिलियन टन था। अगर दूध उत्पादकता की बात की जाए तो आज भी इसकी उत्पादकता वैश्विक औसत से कम है। दूध उत्पादकता को बढ़ाने के लिए अच्छी गुणवत्ता वाला हरा चारा पशुओं को खिलाना आवश्यक है। प्रतिपोषक या प्रति गुणवत्ता कारक प्राकृतिक खाद्य पदार्थों में पैदा हुआ वह पदार्थ होता है जो पशुओं के पोषण पर विपरीत प्रभाव डालता है और यह पदार्थ प्रजातियों के सामान्य चयापचय और विभिन्न तंत्र (उदाहरणतः कुछ पोषक तत्वों की निष्क्रियता, पाचन प्रक्रिया में कमी या फीड के चयापचय उपयोग) द्वारा उत्पन्न पदार्थ होते हैं। जैसे धूरिन, नाइट्रेट, ऑक्सोलेट, सेपोनिन, फाइटोस्ट्रोजन, टेनिन और मिमोसाइन इत्यादि। धूरिन एक गैर–जहरीला रसायन है जोकि पौधों में अधिकांशत प्रूसिक अम्ल का हिस्सा है, यह लगभग ज्वार की सभी किस्मों में पाया जाता है। इसके अलावा ज्वार में मौजूद एक पदार्थ जिसे इमल्शन कहा जाता है, जो कुछ परिस्थितियों में धूरिन के साथ क्रिया कर प्रूसिक अम्ल बनाता है जिसे हाइड्रोसायनिक अम्ल भी कहा जाता है। यदि पौधों को ठंड, चबाने या रौंदने से नुकसान होता है तो इमल्शन–धुरिन की प्रतिक्रिया बढ़ जाती है, जिससे संभावित खतरनाक स्थिति पैदा करने के लिए पर्याप्त मात्रा में जहर (साइनाइड) मुक्त होता है।

धूरिन (हाइड्रोसायनिक / प्रूसिक अम्ल) की विषाक्तता

कुछ पौधों में बढ़वार के समय साइनाइड उत्पादन से प्रूसिक अम्ल की विषाक्तता होती है। ज्वार और इसके जैसे अन्य पौधों में उनके अधिचर्म (एपिडर्मल) कोशिकाओं में धुरिन नामक एक साइनोजेनिक अणु होता है। प्रायः स्वस्थ, भरपूर पत्तियों वाले पौधों में यह जहरीले स्तर तक नहीं होता है। हालांकि, अधिचर्म (एपिडर्मिस) के नीचे पर्णमध्यक (मिजोफिल) कोशिकाएं उपस्थित होती हैं। जो हाइड्रोसायनिक अम्ल धूरिन से अलग होती है। अगर पत्तियां क्षतिग्रत हो जाती हैं तो धूरिन और इसको हाइड्रोलाइज करने वाला एंजाइम मिश्रण हो जाता है, जिससे साइनाइड स्त्रावित होता है। यदि पशु एक बार साइनाइड युक्त चारा गलती से खा लेता है तब यह सीधे रक्त प्रवाह में अवशोषित होता है और कोशिकाओं में एंजाइमों से जुड़ जाता है। हीमोग्लोबिन एक कोशिका से दूसरी कोशिका में ऑक्सीजन के आदान–प्रदान में सहायक होता है, किन्तु साइनाइड–हीमोग्लोबिन के जटिल जुड़ाव के कारण ऑक्सीजन अलग–अलग कोशिकाओं में नहीं पहुंच पाता और जानवर की मृत्यु हो जाती है।

धूरिन विषाक्तता के प्रमुख लक्षणः पशुओं में घबराहट, साँस लेने में तकलीफ होना, मुँह से ज्यादा लार गिरना एवं झाग निकलना, कंपकंपी होना और अंततः धड़ाम से नीचे गिर जाता है। इन लक्षणों के संकेत मिलने के एक–दो घंटे बाद ही पशु की मृत्यु हो जाती है। चारे में हाइड्रोसायनिक अम्ल का स्तर (शुष्क पदार्थ का आधार) और पशुओं पर इसका संभावित प्रभाव तालिका 1 में दर्शाया गया है।

चारे वाली फसलों में प्रूसिक अम्ल की अधिकता के कारण

- **पौध प्रजातियाँः** ज्वार, जोनसन घास, सूडान घास, शटरकेन, जंगली काले चेरी के पेड़, बिटर–बेरी में आमतौर पर प्रूसिक अम्ल ज्यादा पाया जाता है। ग्रीष्मकालीन एकवर्षीय चारा फसलों में यह किस्मों पर निर्भर करता है। साइनाइड की मात्रा अनाज वाली ज्वार में चारा ज्वार एवं सूडान घास की तुलना में ज्यादा होती है, जबकि संकर बाजरा एवं कांगनी में साइनाइड की कम मात्रा पाई जाती है।

तालिका 1. चारे में हाइड्रोसायनिक अम्ल का स्तर (शुष्क पदार्थ के आधार पर) और पशुओं पर संभावित प्रभाव

हाइड्रोसायनिक अम्ल प्रति किलोग्राम फीड (पीपीएम)	पशुओं पर हाइड्रोसायनिक अम्ल का प्रभाव
0–500	आमतौर पर सुरक्षित
600–1000	संभावित रूप से विषाक्त
1000 से अधिक	मवेशियों के लिए खतरनाक, आमतौर पर मौत का कारण बनता है

- **पौधे के विभिन्न भाग:** पत्ती की ब्लेड में आमतौर पर पत्ती शीथ एवं तना की तुलना में अधिक प्रूसिक अम्ल पाया जाता है। पुरानी पत्तियों की तुलना में नई पत्तियों में अधिक मात्रा में प्रुसिक अम्ल होता है। मुख्य तना की तुलना में कल्ले और शाखाओं में प्रुसिक अम्ल उच्चतम मात्रा में पाया जाता है।
- **फसल की उम्र एवं स्थिति:** प्रायः तेजी से बढ़ने वाले तरुण पौधों में प्रूसिक अम्ल ज्यादा पाया जाता है। बूट अवस्था से पहले प्रूसिक अम्ल का उच्चतम स्तर पहुंच जाता है। जैसे–जैसे पौधे परिपक्व होते हैं, उनमें प्रूसिक अम्ल की मात्रा कम हो जाती है। किसी भी तनाव की स्थिति जिसमें पौधों की वृद्धि रूकती है, जैसे अकाल एवं पाले के समय इसकी सांद्रता बढ़ जाती है। सामान्यतः शारीरिक रूप से क्षतिग्रस्त पत्तियों, कटे कुचले, चबाये एवं मुरझाये हुए पौधों में हाइड्रोसायनिक अम्ल स्त्रावित होता है।
- **मृदा उर्वरता:** यदि फॉस्फोरस और पोटैशियम की कमी वाली मिट्टी में खाद या उर्वरक के रूप में अत्यधिक नाइट्रोजन की मात्रा मिला ली जाए तो साइनाइड की मात्रा अधिक हो जाती है।
- **अकाल या सूखा:** गंभीर सूखा संभवतः प्रूसिक अम्ल विषाक्तता का सबसे आम कारण है। सूखा से प्रभावित पौधों में स्त्रावित प्रूसिक अम्ल पकने की अवधि तक विद्यमान रहता है।
- **पाला:** पाले की स्थिति में पौधों की कोशिकाएं टूट फुट जाती है जिससे प्रूसिक अम्ल स्त्रावित होता है।
- **शाकनाशी:** 2,4–डी के प्रयोग से चारा फसलों में प्रूसिक अम्ल का स्त्राव होता है जो कुछ सप्ताह तक रहता है।
- **कटाई तकनीक:** प्रूसिक अम्ल की सांद्रता हरे चारे में साईलेज की अपेक्षा अधिक होती है।

सस्य क्रियाओं द्वारा धूरिन विषाक्तता का प्रबंधन

- चारा फसलों को उपयुक्त सिफारिशों के अनुसार ही बुवाई करें जैसे कम धूरिन विषाक्तता वाली किस्मों का चयन, संतुलित उर्वरक उपयोग इत्यादि।
- यदि मृदा में फॉस्फोरस एवं पोटैशियम की कमी हो तो नत्रजन प्रयोग के साथ–साथ फॉस्फोरस एवं पोटैशियम का भी मृदा में प्रयोग करें (यदि मृदा में फॉस्फोरस एवं पोटैशियम की तुलना में नत्रजन की अधिकता हो जाए तो पौधों में धूरिन का अत्यधिक स्त्राव होने लगता है)।
- चारा फसलों में धूरिन स्त्राव का प्रमुख कारण जल तनाव या सूखा या अकाल पड़ना है। यदि सिंचित क्षेत्रों में चारा फसल की बुवाई की गयी हो तो जल तनाव ना होने दें एवं समय पर सिंचाई दें। यदि असिंचित क्षेत्र में बुवाई की गई हो तो ऐसी स्थिति में चारा फसल की कटाई ना करें।
- ऐसी चारा फसलें जिनमें धूरिन पाए जाने की संभावना हो तो इसे गैर धूरिन युक्त चारा के साथ मिलाकर खिलायें।
- जिन चारा फसलों में धूरिन पाया जाता है उनका साइलेज बना सकते हैं जिससे धूरिन विषाक्तता में कमी आती है।

बचाव के उपाय

- यदि चारे में प्रूसिक अम्ल होने का अंदेशा हो तो पशुओं को खिलाने से पहले इसकी जाँच अवश्य करवाएं।
- जहाँ प्रूसिक अम्ल की समस्या हो वहाँ भूखे पशु को नहीं चराना चाहिए।

– अकाल एवं पाले से प्रभावित पौधों पर पशुओं की चराई नहीं करवाएं।

– हमेशा उचित परिपक्वता पर ही फसल की कटाई करें।

– तनाव वाले वातावरण (जहाँ अकाल एवं पाले की संभावना हो) में हरे चारे की फसल (जिनमें प्रूसिक अम्ल ज्यादा पाया जाता है) नहीं लें।

– मृदा उर्वरता बनाये रखने के साथ–साथ नत्रजन को विभाजित मात्रा में उपयोग करें।

– तेज पाला पडने के कम से कम चार दिन बाद चराई कराएं।

उपचार

– पशुओं को सल्फर (नमक सल्फ में 10 प्रतिशत सल्फर) प्रदान किया जाना चाहिए, क्योंकि पाचन प्रक्रिया में जारी साइनाइड के विषहरण में सल्फर महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है।

– 3 ग्राम सोडियम नाइट्राइट एवं 15 ग्राम सोडियम थायोसल्फेट को आसुत जल के 20 मिली में संयोजन करके पशुओं (गायों) का उपचार कर सकते हैं। इस उपचार से पहले यदि संतृप्त तरल गुड़ को देते हैं तो साइनाइड विषाक्तता से पशुओं को तेजी से स्वास्थ्य लाभ मिल सकता है, क्योंकि गुड़ एलोपैथिक उपचार के साथ एक सहक्रियाशीलता की भूमिका निभाता है।

चारा फसलों में नाइट्रेट विषाक्तता: हरे चारे में विभिन्न प्रकार के विषैले पदार्थ जैसे धूरिन, नाइट्रेट, ऑक्सोलेट, सेपोनिन इत्यादि पाए जाते हैं। इनमें नाइट्रेट प्रमुख विषाक्त है, जोकि असामान्य मौसम या फिर खराब नत्रजन प्रबंधन के कारण होता है। नाइट्रेट विषाक्तता कभी–कभी पशुधन के लिए एक घातक समस्या बन जाती है।

अधिक नाइट्रेट संचित करने वाली चारा फसलें: चारे की कुछ फसलें जैसे जई, जौ, ज्वार, सूडान घास, टोना–सूडान संकर, बाजरा, मक्का, राई, सोयाबीन और बरमूडा घास आदि विषैले स्तर पर नाइट्रेट जमा कर सकते हैं।

नाइट्रेट विषाक्तता: भारत में बादल (जुलाई से अगस्त), धुंध और ठंड के मौसम में पाले का पड़ना (दिसंबर से जनवरी) एक सामान्य बात है। जो चारा उपलब्धता की दृष्टि से बहुत कमी का समय होता है, कई बार इन स्थितियों में नाइट्रेट विषाक्तता हो जाती है। नाइट्रेट अमोनिया के टूटने का मध्यवर्ती उत्पाद है। जिससे नाइट्रेट विषाक्तता होती है।

उच्च नाइट्रेट की सांद्रता के कारण: सूर्य की रोशनी की कमी, कम तापमान से प्रकाश संश्लेषण दर में कमी, असामान्य मौसम, शाकनाशी (2,4–डी) और नत्रजन उर्वरकों का अत्यधिक उपयोग किए जाने के कारण पौधों में नाइट्रेट का संचय होता है। प्रतिकूल जलवायु स्थितियां जैसे ओलावृष्टि और पाला पौधे की पत्तियों को नुकसान पहुंचाती है एवं प्रकाश संश्लेषण की दर को कम करती है जिसके फलस्वरूप पौधों में नाइट्रेट जमा होता है।

चारा फसलों में नाइट्रेट की सांद्रता पौधों में वृद्धि अवस्था एवं पौधों के अलग–अलग भाग पर निर्भर करती है। तरुण पौधों में नाइट्रेट की सांद्रता ज्यादा होती है और पौधों की परिपक्वता के साथ–साथ घट जाती है। पौधे के डंठल या तना के निचले तिहाई भाग में नाइट्रेट की उच्चतम सांद्रता जमा होती है। नाइट्रेट संचय का घटता क्रमः (तना–पत्तियां–पुष्प भाग) है।

विषाक्तता का प्रभाव: जब पशुधन चारे का उपभोग करते हैं, तो नाइट्रेट आमतौर पर नाइट्रेट–नाइट्राइट–अमोनिया–अमीनो अम्ल से प्रोटीन में परिवर्तित हो जाता है। जब चारे में नाइट्रेट की असामान्य रूप से उच्च सांद्रता होती है, तो पशु नाइट्रेट से नाइट्राइट और नाइट्राइट से अमोनिया में रूपांतरण को पूरा नहीं कर पाता है और नाइट्राइट आमाशय में जमा हो जाता है। जिसके फलस्वरूप नाइट्राइट रक्तप्रवाह में अवशोषित हो जाता है और हीमोग्लोबिन को मेटहीमोग्लोबिन में बदल देता है, जिससे ऑक्सीजन की कमी के कारण पशु की मौत भी हो सकती है।

पशुओं द्वारा चारे की खपत की दर और मात्रा, चारे का प्रकार, ऊर्जा स्तर या आहार की पर्याप्तता इत्यादि नाइट्रेट विषाक्तता की तीव्रता को प्रभावित करने के प्रमुख कारक हैं। नाइट्रेट (नाइट्राइट) जहर युक्त चारा खाने वाले पशु वास्तव में साँस लेने में तकलीफ (श्वासावरोध), ऑक्सीजन की कमी एवं श्लेष्म झिल्ली नीली होने से मर जाते हैं। रक्त सामान्य चमकीले लाल की बजाय चॉकलेट ब्राउन रंग में बदल जाता है। नाइट्रेट सामग्री के साथ चारा के उपयोग के दिशानिर्देश तालिका 2 में दिए गए हैं।

तालिका 2. नाइट्रेट सामग्री के साथ चारा के उपयोग के लिए दिशानिर्देश

नाइट्रेट–नत्रजन सामग्री (100 प्रतिशत शुष्क पदार्थ आधारित) पीपीएम	टिप्पणी
1000 से कम	सभी परिस्थितियों में नाइट्रेट स्तर सुरक्षित है
1000–1500	गैर–गर्भवती पशुओं के लिए नाइट्रेट स्तर सुरक्षित है। गर्भवती पशुओं के लिए, यह चारा कुल राशन के 50 प्रतिशत तक सीमित होना चाहिए
1500–2000	कुल सुरक्षित पदार्थ के 50 प्रतिशत तक सीमित होने पर चारा सुरक्षित है
2000–3500	चारा कुल सूखे पदार्थ के सेवन के 35–40 प्रतिशत तक सीमित होना चाहिए
3500–4000	25 प्रतिशत शुष्क पदार्थ का सेवन सीमित करें, गर्भवती जानवरों को न खिलाएं
4000 से अधिक	संभावित रूप से विषाक्त, बहुत जोखिम भरा, पशुओं को नहीं खिलाएं

सस्य क्रियाओं द्वारा नाइट्रेट विषाक्तता का प्रबंधन

– चारा फसलों को उपयुक्त सिफारिशों के अनुसार ही बुवाई करें जैसे पंक्ति से पंक्ति की दूरी, बीज दर, कम नाइट्रेट संचय करने वाली किस्म का चयन इत्यादि।

– चारा फसलों में नाइट्रेट का संचय मुख्यतः तनाव की स्थिति में होता है, ये तनाव प्रमुखतः जल की कमी, पाला पड़ना, नत्रजन की अधिकता आदि के कारण होता है। इसलिए आवश्यकतानुसार समय–समय पर सिंचाई करें जिससे नाइट्रेट का संचय कम से कम हो।

– पौधों में नाइट्रेट संचय नत्रजन प्रबंधन पर भी निर्भर करता है। यदि असामान्य मौसम, अधिक बादल, धूप ना निकले, तो नत्रजन का छिड़काव नहीं करें क्योंकि धूप नहीं होने से पौधे में प्रकाश संश्लेषण की क्रिया नहीं होगी जिससे नाइट्रेट का संचय हो जायेगा। इसी प्रकार, नत्रजन की उपयुक्त मात्रा का ही प्रयोग करें। चूँकि, अधिकतर चारा फसलें 60 से 70 दिन में काटी जाती है, इसलिए नत्रजन का पर्णीय छिड़काव बुवाई के 30 दिन में ही पूरा करें।

– चारा फसल में नाइट्रेट संचय का संदेह हो तो इसकी जाँच करवा लें, यदि जाँच संभव ना हो तो फसल की कटाई में 7 से 10 दिन तक विलम्ब करें।

नाइट्रेट विषाक्तता की रोकथाम

– चारे में नाइट्रेट विषाक्तता का अंदेशा होने पर मवेशियों को खिलाने से पहले परीक्षण अवश्य करवाएं।

– सूखे क्षतिग्रस्त चारे से साईलेज बना सकते हैं, साईलेज बनाने से नाइट्रेट की सांद्रता 40 से 60 प्रतिशत कम हो जाती है।

– जब ऐसी स्थिति में फसल उगाई जाती है जो नाइट्रेट संचय का कारण बनती है, तब फसल को देरी से कटाई करें।

– गैर विषैले चारे या मोलासेज या मक्का जैसे ऊर्जा वाले फीड के साथ मिश्रण करके विषाक्त चारे में सांद्रता कम करें।

– निम्न और उच्च नाइट्रेट फीड के संयोजन को खिलाकर कुल राशन की नाइट्रेट सामग्री को पतला करें।

– पशु को प्रति दिन सिर्फ एक बार भोजन के बजाय तीन या चार बार राशन दिया जाना चाहिए।

– राशन की नाइट्रेट सामग्री को बढ़ाने के लिए मवेशियों को धीरे–धीरे नाइट्रेट के साथ संवेदनशील बनाने का प्रयास करें।

– अपेक्षित उत्पादन स्तर के लिए पशुधन को संतुलित राशन खिलाना सुनिश्चित करें।

– रोगग्रस्त मवेशियों और भेड़ों को मेथीलिन–ब्लू 4 प्रतिशत जलीय घोल को देकर इलाज किया जा सकता है।

समाप्त

कविताएँ

मीना लूथरा
भाकृअनुप–केन्द्रीय मृदा लवणता अनुसंधान संस्थान, करनाल–132001 (हरियाणा)
E-mail: meena.luthra@icar.gov.in

वतन के शहीदों को नमन

हिन्द के जाबांज लाडले, भारत के सपूतों महान को,
देशवासियों भूल न जाना, शहीदों के बलिदान को ।
मर कर भी तुम अमर हो गए, शहीदों तुम्हारा अमर नाम है।
वीरों तुम्हारी कुर्बानी को , हमारा नमन शत–शत प्रणाम है।
मिट जाते हैं जो मातृभूमि पर, बन जाते वे इतिहास हैं।
मस्तक धूल चढ़ाने उनकी, झुक जाते आकाश हैं।
मौत है जिंदगी का आखिरी अंजाम, और मरने के हैं कई रास्ते,
मर कर भी जिंदा हैं वे लोग, जो मर गए वतन के वास्ते।
मातृभूमि की रक्षा हेतु , वीरों ने प्राण गँवाए हैं,
अमर शहीद हो गए हैं वो, जो देश के काम आए हैं।
सरहद पे शहीद जवानों की, साँसों में सुगंध समाती है,
खुद ही बुलंद होकर दिल में, जय हिन्द की आवाज आती है।
तुम वतन के सूरमा हो, तुम्ही तन के हो पास्वान,
कांपती तुम से जमीं है, कांपता है वो आसमां।
शहादत का जयनाद हुआ, तुमने कुर्बानी की मशाल जलायी है,
देश तुम्हारे बलिदानों को वीरों, ये मातृभूमि हर्षाई है।
तुम्हारे शोर्य और पराक्रम पर, हर भारतवासी को अभिमान,
धन्य– धन्य है मातृभूमि, धन्य– धन्य है भारत महान।
शहीद हुए हैं इस वतन की खातिर, कैसे भूलें उनका हम नाम,
उन जाबांज शहीदों को नमन, उन रणबांकुरों को हमारा प्रणाम।

समाप्त

मीना लूथरा
भाकृअनुप–केन्द्रीय मृदा लवणता अनुसंधान संस्थान, करनाल–132001 (हरियाणा)
E-mail: meena.luthra@icar.gov.in

छोड़ो लीक पुरानी

छोड़ो लीक पुरानी छोड़ो
युग को नई दिशा में मोड़ो
छोड़ो लीक पुरानी छोड़ो
प्रेरक बने अतीत तुम्हारा
नए क्षितिज की ओर चरण हो,
नए लक्ष्य की ओर तुम्हारे
उन्मुख जीवन और मरण हो
रखे बाँध कर जो जीवन को
ऐसे हर बंधन को तोड़ो
छोड़ो, लीक पुरानी छोड़ो
बीत गया सो बीत गया वह
तुमको वर्तमान गढ़ना है
नया ज्ञान उपलब्ध जिधर हो
तुमको उसी ओर बढ़ना है
तुम जीवन के हर अनुभव से
जितना संभव ज्ञान निचोड़ो
छोड़ो , लीक पुरानी छोड़ो
पास तुम्हारे अपनी संस्कृति
लक्ष्य, नया विज्ञान तुम्हारा,
नया सृजन इस महादेश का
अब यह हो अभियान तुम्हारा
करने पूर्ण नए लक्ष्यों को
सागर लांघों, पर्वत फोड़ो
छोड़ो लीक पुरानी छोड़ो।
ज्ञान तर्क सम्मत शुभ होता
नहीं अंधविश्वास सुखद है,
ग्रहण करो सभी ज्ञान तुम
जो हितकर, जो तुम्हें सुखद है
ज्ञान श्रेष्ठ संपति सभी की
जितना बने, ज्ञान धन जोड़ो
छोड़ो, लीक पुरानी छोड़ो।

समाप्त

अनिल कुमार सिंह
भाकृअनुप–पूर्वी क्षेत्र अनुसंधान परिसर, पटना–800014 (बिहार)
E-mail: anil.icarpat@gmail.com

मिट्टी ही पहचान

पले–बढ़े हैं मिट्टी में ही, मिट्टी ही पहचान।
मिट्टी ही पहचान हमारी, मिट्टी ही वरदान।।
मिट्टी में ही उपजे सोना, मिट्टी बड़ी महान।
मर–मिट जायें इस मिट्टी पर, धरती बने महान।।
मिट्टी ही पहचान ...
मिट्टी से शुरुआत हमारी, मिट्टी ही अंतिम स्थान।
सबमें मैं हूँ मुझमें सब है, जीवन का सच्चा सार।।
माया इसकी अपरम्पार, सब मिल् आवो करे इसका गुणगान।
कभी ना छोडें साथ इसका, तभी होगा जग कल्याण।।
मिट्टी ही पहचान ...
कल–कल नदिया, निर्झर झरने, निर्मल बहता पानी।
अजब इसकी है रवानी, गजब इसकी है कहानी।।
दिन दोपहर का खेल निराला, सूरज ने डेरा है डाला।
शाम हुई तो शशि मुस्काए, चिड़ियों ने कोलाहल डाला।।
मिट्टी ही पहचान ...
मिट्टी की पहचान निराली, जगत जननी की पदवी वाली।
सस्य श्यामला धरती माता, चहुं ओर फैली हरियाली।।
सुख भी बाँटा दुख भी बाँटा, रत्न–गर्भा है धरती माता।
लगा रहा जब–जब भी तांता, निश्चल–निर्मल प्यार ही बाँटा।।
मिट्टी ही पहचान...
धरती के हैं लाल, किसान, धरती पर भगवान किसान।
मिट्टी से हैं नाता इनका, जीवन मरण समाता इनका।।
यहाँ–वहाँ बस नृत्य करते, जीवन लीला यही समझते।
हम तो भैया ता–ता थईया, छोटे–मोटे नाच गवैया।।
मिट्टी ही पहचान हमारी, मिट्टी ही वरदान

समाप्त

राजभाषा कार्यक्रम

संस्थान के कृषि अनुसंधान एवं अन्य क्रियाकलापों में राजभाषा हिन्दी

राजभाषा हिन्दी को बढावा देने एवं कृषि अनुसंधान में वैज्ञानिकों, कर्मचारियों को प्रोत्साहित करने के लिए प्रत्येक वर्ष हिन्दी में अनेक गतिविधियाँ भाकृअनुप–केन्द्रीय मृदा लवणता अनुसंधान संस्थान में आयोजित की जाती है। वर्ष 2019–20 के दौरान आयोजित कुछ विशिष्ट कार्यक्रमों का कृषि किरण के अंक 12 वर्ष 2019–20 में प्रकाशन किया जा रहा है।

हिन्दी पखवाडे का आयोजन

विगत वर्षों की भांति इस वर्ष भी भाकृअनुप–केन्द्रीय मृदा लवणता अनुसंधान संस्थान करनाल में 14 से 28 सितम्बर 2019 के दौरान हिन्द पखवाड़े का आयोजन किया गया। दिनांक 17 सितम्बर 2019 को हिन्दी पखवाड़े का शुभारम्भ मुख्य अतिथि डा॰ रेखा शर्मा, प्राचार्या, पंडित चिरंजीलाल राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, करनाल ने दीप प्रज्जवलित करके किया। हिन्दी पखवाड़ा समिति के अध्यक्ष डा॰ प्रवीण कुमार ने हिन्दी के महत्व को बताते हुए राजभाषा के नियमों व अधिनियमों की विस्तृत जानकारी दी तथा हिन्दी पखवाड़ा के दौरान आयोजित किए जाने वाले कार्यक्रमों व प्रतियोगिताओं का विस्तृत विवरण प्रस्तुत किया।

हिन्दी पखवाड़ा उद्घाटन समारोह की मुख्य अतिथि डा॰ रेखा शर्मा ने इस संस्थान में हिन्दी में किये जा रहे कार्यों की सराहना की और कहा कि हिन्दी पखवाडे के दौरान हिन्दी भाषा का अधिक से अधिक संचार एवं प्रसार होता है। भाषा वह सशक्त माध्यम है जिसके द्वारा हम अपने विचारों को व्यक्त करते हैं। अपनी मातृभाषा में ऐसा करना सहज होता है। भाषा धारा प्रवाह होनी चाहिए। बच्चा पहला शब्द माँ बोलता है हम चाहते हैं कि बच्चा जल्दी–जल्दी अंग्रेजी बोलना सीख लें यह हमारी गलत मानसिकता का प्रतीक है। जर्मनी व इटली इत्यादि देशों में अंग्रेजी का प्रयोग कम होता है तथा वे लोग अपनी मातृभाषा का प्रयोग अधिक करते हैं। आज हम अंग्रेजी के शब्द प्रयोग बिना लिख या बोल नहीं सकते। हमें अपनी भाषा में मुहावरों का प्रयोग भी करना चाहिए। आज हम माता–पिता व शिक्षक अपनी नई पीढ़ी को हिन्दी ठीक से नहीं सीखा पा रहे हैं। आने वाली पीढ़ी को बेहतर बनाने के लिए हमें स्वयं उदाहरण बनना होगा।

उन्होंने आह्वान किया कि हमें भी हिन्दी का प्रयोग अधिक से अधिक करना चाहिए और सरकारी कामकाज में हिन्दी का प्रयोग करना तो हमारी नैतिक जिम्मेदारी है। उन्होंने कार्यक्रम के आयोजन की मुक्तकंठ से प्रशंसा करते हुए कहा कि बहुत दिनों बाद इस तरह के कार्यक्रम में भाग लेने का अवसर मिला जिसमें शुद्ध हिन्दी का प्रयोग व बहुत सुन्दर कविताएं सुनने को मिली। उन्होंने अपनी बात को आगे बढ़ाते हुए कहा कि सच तो यह है कि हम अपने स्नातकोत्तर महाविद्यालय में भी इस स्तर के कार्यक्रम आयोजित नहीं कर पाते।

इससे पूर्व संस्थान के निदेशक डा॰ प्रबोध चन्द्र शर्मा ने मुख्य अतिथि का फूलों से स्वागत किया और बताया कि स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् 14 सितम्बर 1949 को यह निर्णय लिया गया था कि राज–काज में अंग्रेजी भाषा का प्रयोग 15 वर्ष तक होगा, उसके बाद केवल हिंदी राज–काज की भाषा होगी लेकिन विरोध के कारण यह निर्णय लागू नहीं हो पाया। आज गूगल व याहू आदि वेबसाइटों में हिन्दी का प्रयोग बढ़ रहा है। भारतीय नेता विदेशों में जाकर विश्व मंच पर हिन्दी में भाषण देते हैं। हमें अपने सरकारी दैनिक कार्य हिन्दी में अधिक से अधिक करने चाहिए। हिन्दी एक वैज्ञानिक तथा सरल भाषा है इसलिए इसका अधिक से अधिक प्रयोग करना चाहिए।

हिन्दी पखवाड़े के शुभारम्भ के अवसर पर सभा को संबोधित करती मुख्य अतिथि डा. (श्रीमती) रेखा शर्मा

हिन्दी पखवाड़े के शुभारम्भ के अवसर पर सभा को संबोधित करते संस्थान के निदेशक डा. प्रबोध चन्द्र शर्मा

हिन्दी पखवाड़े का समापन व पुरस्कार वितरण समारोह दिनांक 28 सितम्बर को आयोजित किया गया। समापन समारोह के मुख्य अतिथि डा॰ अजय सिंह, कुलसचिव, महाराणा प्रताप बागवानी, विश्वविद्यालय, करनाल ने अपने संबोधन में सरकारी काम–काज में हिन्दी के महत्व पर प्रकाश डालते हुए कहा कि हिन्दी भारत के 11 राज्यों में बोली जाती है। देश के कुछ राज्यों में हिन्दी का विरोध हो रहा है लेकिन वहाँ के अधिकतर लोग भी अपने बच्चों को हिन्दी की शिक्षा विशेष रूप से दे रहे हैं। स्वंत्रतता आंदोलन में हिन्दी का महान योगदान रहा है।

हिन्दी पखवाड़े के समापन के अवसर पर सभा को संबोधित करते मुख्य अतिथि डा॰ अजय सिंह

हिन्दी पखवाड़े के समापन के अवसर पर सभा को संबोधित करते संस्थान के वरिष्ठ प्रशासनिक अधिकारी आलोक कुमार

हमें पूरे विश्व पर अपना प्रभुत्व कायम करना है तो हमें हिन्दी को अपनाना होगा। नई पीढ़ी को विकास के लिए हिन्दी को नहीं भूलना चाहिए। आज इंटरनेट प्रदात्ता कंपनियां भी अपना कार्य हिंदी में कर रही हैं। हमें हिन्दी की प्रतियोगिताओं के माध्यम से हिन्दी का प्रचार–प्रसार बढ़ाना चाहिये। उन्होंने संस्थान में हिन्दी के कार्यों की प्रगति को देखकर प्रसन्नता व संतोष व्यक्त किया और कर्मचारियों से अनुरोध किया कि वे अपना अधिक से अधिक कार्य हिन्दी में करें। संस्थान के निदेशक डा॰ प्रबोध चन्द्र शर्मा ने कहा कि हमें जो विचार आता है वह हमारी मातृभाषा हिन्दी में ही आता है, बाद में उसे हम अंग्रेजी में लिखते हैं। हिन्दी विचार प्रकट करने के लिए एक सरल, सशक्त और समृद्ध माध्यम है। सोशल मीडिया ने हिन्दी को आसान बना दिया है। हमारे देश की 80 प्रतिशत जनता हिन्दी समझ सकती है तथा 65 प्रतिशत जनता इसको बोल व लिख सकती है। विचारों को मूर्त रूप देने के लिए हिन्दी सशक्त माध्यम है। हिन्दी को आगे बढ़ाना हमारा संवैधानिक उत्तरदायित्व है। हिन्दी विश्व के 80 देशों में बोली जाती है और 200 विश्वविद्यालयों में पढ़ाई जाती है।

उन्होंने आह्वान किया कि सभी वैज्ञानिक, अधिकारी, कर्मचारी हिन्दी में ही अपने सरकारी कामकाज निपटाएं। इस पखवाड़े के दौरान संस्थान के स्टाफ के हिन्दी के ज्ञान व उनके द्वारा सरकारी कामकाज में हिन्दी के प्रयोग को बढ़ाने हेतु कई प्रतियोगिताओं का भी आयोजन किया गया जिनमें तत्काल भाषण, निबंध लेखन, आवेदन लेखन, हिन्दी टंकण, टिप्पणी एवं मसौदा लेखन, सरकारी काम–काज में मूल हिन्दी आलेखन, प्रश्नोत्तरी, हिन्दी गीत अन्ताक्षरी, कविता पाठ इत्यादि प्रतियोगिताओं का आयोजन किया गया। प्रतियोगिताओं में वैज्ञानिकों, अधिकारियों, कर्मचारियों ने उत्साहपूर्वक भाग लिया। समापन समारोह के अवसर पर मुख्य अतिथि द्वारा विभिन्न प्रतियोगिताओं के विजेताओं को पुरस्कृत किया गया। इस अवसर पर मुख्य अतिथि तथा निदेशक द्वारा हिन्दी प्रोत्साहन योजना के अंतर्गत वर्षभर हिन्दी में अधिक व उत्कृष्ट कार्य करने वाले कर्मचारियों तथा हिन्दी पखवाड़े के दौरान हुई प्रतियोगिताओं के विजेताओं को पुरस्कार व प्रमाण पत्र प्रदान किये गये।

हिन्दी पखवाड़े के अंतर्गत आयोजित प्रतियोगिताओं व विजेताओं का विवरण

क्र॰ सं॰	दिनांक	प्रतियोगितां का नाम	विजेताओं के नाम			
			प्रथम	द्वितीय	तृतीय	सांत्वना
1.	14 सितम्बर	हिन्दी टंकण	रणजीत सिंह	सुषमा गर्ग	नीरू	रीटा आहूजा
2.	16 सितम्बर	आवेदन पत्र लेखन (चतुर्थ श्रेणी कर्मचारियों हेतु)	फतेह सिंह	सुभाष चन्द	लछमन दास	देस राज
3.	17 सितम्बर	कविता पाठ	कालिन्द्री सिंह	रामेश्वर लाल मीणा	देस राज	जसबीर कौर
4.	18 सितम्बर	हिन्दी गीत अन्ताक्षरी	एस॰के॰ त्यागी, अश्वनी कुमार, ममता रानी	सुनीता ढींगरा, बलवान सिंह, कालिन्द्री सिंह	मीना लूथरा, भव्या, गुरिन्द्र सिंह	दिनेश गुगनानी, सुनीता मल्होत्रा, जसबीर कौर
5.	20 सितम्बर	निबंध लेखन	नीरू	श्रीमती संतरा	फतेह सिंह	रीना रानी
6.	21 सितम्बर	टिप्पणी एवं मसौदा लेखन नगर स्तरीय	शशि पाल	सोनिका यादव	अनिता मेहता	दिनेश कुमार
7.	23 सितम्बर	प्रश्नोत्तरी प्रतियोगिता	आर. राजू, तरूण कुमार, मीना लूथरा, खुशवंत	दिलीप सिंह, अंकुर शर्मा, अमनदीप, रजनी	एस॰के॰ त्यागी, महती प्रकाश, दिनेश गुगनानी, धीरज कुमार, त्रिभुवन	एस॰के॰ दहिया, सुषमा गर्ग, जीतेन्द्र सिंह, संदीप बेडवाल
8.	25 सितम्बर	वाद–विवाद	एस॰के॰ त्यागी,	सुनीता ढींगरा	नरेन्द्र वैद	मधु चौधरी
9.	28 सितम्बर	तत्काल भाषण	देवेन्द्र सिंह बुन्देला	अनीता मेहता	एस॰के॰ त्यागी,	रामेश्वर लाल मीणा

संस्थान राजभाषा कार्यान्वयन समिति की प्रत्येक तिमाही में बैठकें आयोजित की जाती है जिसमें संस्थान में राजभाषा कार्यान्वयन के क्षेत्र में हुई प्रगति का अवलोकन किया जाता है और राजभाषा विभाग, गृह मंत्रालय के वार्षिक कार्यक्रमानुसार व समीक्षा के रूप में प्राप्त सुझावों पर संस्थान में राजभाषा हिन्दी की प्रगति के लिए आवश्यक कदम उठाये जाते हैं।

प्रोत्साहन पुरस्कार योजना के अन्तर्गत पुरस्कृत कर्मचारियों की सूची

क्र॰सं॰	कर्मचारी का नाम	पुरस्कार
1	जसबीर कौर	प्रथम
2	जोगध्यान	द्वितीय
3	अनीता मेहता	द्वितीय
4	अश्वनी कुमार	सांत्वना

संस्थान राजभाषा कार्यान्वयन समिति की तिमाही बैठकें

– दिनांक 04 जून 2019 को संस्थान राजभाषा कार्यान्वयन समिति की चतुर्थ बैठक आयोजित की गई जिसमें पिछली बैठक की पुष्टि तथा अनुवर्ती कार्रवाई की समीक्षा, परिषद से प्राप्त संस्थान राजभाषा कार्यान्वयन समिति के कार्यवृत की समीक्षा पर चर्चा की गई।

– दिनांक 04 सितम्बर 2019 को संस्थान राजभाषा कार्यान्वयन समिति की द्वितीय बैठक आयोजित की गई जिसमें पिछली बैठक की पुष्टि तथा अनुवर्ती कार्रवाई की समीक्षा, परिषद् से प्राप्त संस्थान राजभाषा कार्यान्वयन समिति के कार्यवृत की समीक्षा पर चर्चा की गई।

– दिनांक 28 नवम्बर 2019 को संस्थान राजभाषा कार्यान्वयन समिति की तृतीय बैठक आयोजित की गई जिसमें पिछली बैठक की पुष्टि तथा अनुवर्ती कार्रवाई की समीक्षा, परिषद् से प्राप्त संस्थान राजभाशा कार्यान्वयन समिति के कार्यवृत की समीक्षा पर चर्चा की गई।

– दिनांक 23 मार्च 2020 को संस्थान राजभाषा कार्यान्वयन समिति की चतुर्थ बैठक आयोजित की गई जिसमें पिछली बैठक की पुष्टि तथा अनुवर्ती कार्रवाई की समीक्षा, परिषद् से प्राप्त संस्थान राजभाशा कार्यान्वयन समिति के कार्यवृत की समीक्षा पर चर्चा की गई।

राजभाषा हिन्दी में किए गए अन्य कार्य

– संस्थान में सभी रबड़ की मोहरें, नामपट्ट, बोर्ड, बैनर आदि द्विभाषी बनाये गए।

– संस्थान में सभी प्रशासनिक बैठकें हिन्दी में आयोजित की जाती है।

– संस्थान की तिमाही रिपोर्ट हिन्दी में भेजी जा रही है।

– इस अवधि में संस्थान की पत्रिका 'कृषि किरण 2018–19 प्रकाशित की गई।

– इस अवधि में संस्थान का वार्षिक प्रतिवेदन हिन्दी में प्रकाशित किया गया।

– हिन्दी समाचार पत्रों में संस्थान में सम्पन्न गतिविधियों संबंधी प्रेस विज्ञप्तियाँ हिन्दी में प्रकाशित हुई।

– अधिकारियों/कर्मचारियों की सेवा पुस्तिकाओं में प्रविष्टियाँ हिन्दी में की गई।

– कार्यालय के सभी अनुभागों में फाइलों में अधिकतर टिप्पणियाँ हिन्दी में लिखी गई।

– सभी निविदाएं तथा नीलामी सूचनाएं, विज्ञापन, प्रेस नोट आदि हिन्दी में प्रकाशित किये गये।

– सभी बिलों पर भुगतान आदेश हिन्दी में लगाये गये व रोकड बही भी हिन्दी में लिखी गई।

– संस्थान की निदेशक इकाई को सर्वाधिक कार्य हिन्दी में करने के लिए चल वैजयंती पुरस्कार से सम्मानित किया गया।

समाप्त

अगर आप कल गिर गए थे,
तो आज उठिए और आगे बढ़िए।

हिन्दी पखवाड़ा
हिन्दी पखवाड़ा

हिन्दी पखवाड़ा
हिन्दी पखवाड़ा

हिन्दी पखवाड़ा
14-28 सितम्बर 2019
हिन्दी पखवाड़ा
14-28 सितम्बर 2019

हिन्दी पखवाड़ा

हिन्दी पखवाड़ा
हिन्दी पखवाड़ा

स्वच्छ भारत
एक कदम स्वच्छता की ओर

भाकृअनुप
ICAR

हर कदम, हर डगर
किसानों का हमसफर
भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद

Agrisearch with a human touch